खरतरगच्छ का इतिहास

लेखक

इतिहासप्रेमी मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु. फलौदी (मारवाड़)

क्या ?

मैंने खरतरों के अत्याचारों के सामने पन्द्रह वर्ष तक खूब ही धैर्य रक्खा पर आखिर खरतरों ने मेरे धैर्य को जबरन् तोड़ ही डाला। शायद इसमें भी खरतरों ने अपनी विजय समझी होगी। क्योंकि खरतरों ने मेरे लिये तो जो कुछ भला बुरा लिखा उसको मैंने अपना कर्तव्य समझ कर सहन कर लिया पर मेरी इस सहनशीलता ने खरतरों का होंसला यहाँ तक बढ़ा दिया कि वे लोग परमोपकारी पूर्वाचार्यों की ओर भी अपने हाथों को बढ़ाने लग गये जैसे कि–

''तुम्हारे रत्नप्रभसूरि किस गटर में घुस गये थे ?''

''उनके बनाये अठारह गौत्र क्या करते थे ?''

''न तो रत्नप्रभ आचार्य हुये और न रत्नप्रभ ने ओसवाल ही बनाये थे''

''ओसियों में सवा लक्ष श्रावक जिनदत्तसूरि ने बनाये थे''

''उन पतित आचार वालों ने अपना कँवला-ढीला गच्छ बना लिया'' इत्यादि ऐसी अनेक बातें लिख दी हैं।

भला ! जिनकी नसों में अपने पूर्वजों का थोड़ा भी खून है वह ऐसी अपमानित बातों को कैसे सहन कर सकते हैं? केवल एक मेरे ही क्यों पर इन खरतरों की पूर्वोक्त अघटित बातों से समस्त जैनसमाज के हृदय को आघात पहुँच जाना एक स्वाभाविक ही है। अतः खरतरों की पूर्वोक्त मिथ्या बातों से गलत फहमी न फैल जाय अर्थात् इन झूठी बातों से भद्रिक लोग अपना अहित न कर डालें इस लिये मुझे लाचार होकर लेखनी हाथ में लेनी पड़ी है।

'ज्ञानसुन्दर'

खरतरगच्छ का इतिहास

विषय अनुक्रमणिका

खरतरमतोत्पत्ति-भाग पहला

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	जैन धर्म आज्ञा प्रधान धर्म है	
२.	खरतरों की उत्सूत्र प्ररुपणा	
३.	पाटण के राजाओं की वंशावली	
४.	जावलीपुर में जिनेश्वरसूरि	
५.	जैनाचार्यों को मिले हुये बिरुद	
६.	अभयदेवसूरिकृत स्थानांग आदि सूत्रों की टीका	
७.	जिनेश्वरसूरि आदि चन्द्रकुल के थे	
८.	रुद्रपालीशाखा के आचार्य	
९.	प्रमाणिक शिलालेख	
१०.	खरतरगच्छ मंडन जिनदत्तसूरि	
११.	सं. ११४७ का जाली शिलालेख	
१२.	पल्ह कवि की षट्पदी	
१३.	कँवला खरतर शब्द की उत्पत्ति	

खरतरमतोत्पत्ति-भाग दूसरा

१.	जिनेश्वरसूरि का पाटण जाना	
२.	जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ किस की सभा में	
३.	जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ किस के साथ	
४.	जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का विषय	
५.	जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का समय	
६.	जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद	
७.	क्या जिनेश्वरसूरि के पूर्व भी खरतर थे ?	
८.	चैत्यवासियों का परिचय	
९.	चैत्यवासियों की विशेषता	

१०. प्रभाविक चरित्र में जिनेश्वरसूरि ....

११. दर्शन सप्ततिका में जिनेश्वरसूरि ....

१२. जिनवल्लभीय प्रशस्ति में जिनेश्वरसूरि ....

१३. ऋषभदेव चरित्र में जिनेश्वरसूरि ....

१४. मुनिसुव्रत चारित्र में जिनेश्वरसूरि ....

१५. आबु मन्दिर का शिलालेख ....

१६. संघपट्टक की टीका में जिनेश्वरसूरि ....

१७. वीर चरित्र में जिनेश्वरसूरि ....

१८. गणधर सार्द्धशतक में जिनेश्वरसूरि ....

१९. धन्नाशालिभद्र चरित्र में जिनेश्वरसूरि ....

२०. द्वादश कुलक में जिनेश्वरसूरि ....

२१. श्रावक धर्म प्रकरण में जिनेश्वरसूरि ....

२२. आचार दिनकर की टीका में जिनेश्वरसूरि ....

२३. आचारांगसूत्र की दीपका (जिनहंससूरि) ....

२४. जैसलमेर का शिलालेख १-२ ....

२५. ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह ख. प. ....

२६. खरतर पट्टावली ....

२७. राजा दुर्लभ के राज का समय ....

खरतरमतोत्पत्ति-भाग तीसरा

१. जिनवल्लभ का परिचय (गणधर सार्द्धशतक) ....

२. जिनवल्लभ की दीक्षा और गुरु से कलह ....

३. जिनवल्लभ चैत्यवासी और उनका विरोध ....

४. वल्लभ ने किसी संविग्न के पास दीक्षा नहीं ली थी ....

५. वल्लभ ने छट्ठे कल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा की ....

६. वल्लभ ने छट्ठा कल्याणक प्रगट किया ....

७. वल्लभ ने कंधा ठोक कर छट्ठा कल्याणक प्रगट किया ....

८. ऋषभदेव के छः नक्षत्र ....

९. तीर्थंकर का उग्रकुलादि में जन्म के विषय ....

१०. मरिचि का मद से नीच गौत्रोपार्जन करना ....

११. हरिभद्रसूरि के पंचासक में ५ कल्याणक ....

१२. अभयदेवसूरि की टीका में ५ कल्याणक ....

१३. वल्लभ को संघ बाहर की सजा ....

१४. देवभद्राचार्य का अन्याय ....

१५. वल्लभ के नये मत की वंशावली ....

१६. सोमचन्द्र से जिनदत्तसूरि ....

१७. जिनेश्वरसूरि

१८. जैसलमेर की सं. ११४७ की मूर्ति ....

१९. खरतरों के झूठ लिखने का सिद्धान्त ....

२०. जिनदत्त ने पाटण में स्त्रीजिनपूजा निषेध किया ....

२१. जावलीपुर के संघ का कर्तव्य ....

२२. जिनदत्तसूरि से खरतर शब्द ....

२३. जिनदत्तसूरि का लिखा हुआ कुलक ग्रन्थ ....

२४. जैतारन की मूर्तियों का शिलालेख ....

२५. मत का चलना और उसे मानना ....

२६. दादावाड़ी मूर्तियां और पादुकायें

खरतरमतोत्पत्ति-भाग चौथा

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	खरतरमत	९७	१२.	प्रत्याख्यान	१०४
२.	नवकारमंत्र	९७	१३.	भक्ष्याभक्ष्य	१०४
३.	स्थापना	९७	१४.	श्रावक प्रतिमा	१०४
४.	सामायिक	९८	१५.	मासकल्प विहार	१०५
५.	पौषध	९८	१६.	उपधान	१०५
६.	प्रतिक्रमण	९९	१७.	आंबिल	१०५
७.	असठ आचरण	१००	१८.	वल्लभसूरि	१०५
८.	कल्याणक	१०१	१९.	चैत्यवंदन	१०६
९.	प्रभुपूजा	१०२	२०.	और भी	१०६
१०.	तिथि क्षय वृद्धि	१०२	२१.	खरतर मत	१०६
११.	पर्व	१०३	२२.	पट्टावलियां	१०७

खरतरगच्छोत्पत्ति

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	खरतरगच्छोत्पत्ति	११०

खरतरों की बातें

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	भूमिका	१३७
२.	उद्योतनसूरि की बातें	१३७
३.	वर्धमानसूरि की बातें	१४१
४.	जिनेश्वरसूरि की बातें	१४४
५.	अभयदेवसूरि की बातें	१४९
६.	जिनवल्लभसूरि की बातें	१५२
७.	जिनदत्तसूरि की बातें	१५७
८.	जिनचन्द्रसूरि की बातें	१८१
९.	कल्पित मत के कल्पित चित्र	१९९

खरतरों के हवाई किल्ला की दीवारों

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	दीवार नम्बर १	२०७
२.	दीवार नम्बर ३	२०९
३.	दीवार नम्बर ३	२१२
४.	दीवार नम्बर ४	२१५
५.	दीवार नम्बर ५	२२२
६.	दीवार नम्बर ६	२२३
७.	दीवार नम्बर ७	२२४
८.	दीवार नम्बर ८	२२५
९.	दीवार नम्बर ९	२२५
१०.	दीवार नम्बर १०	२२७
११.	दीवार नम्बर ११	२२८
१२.	दीवार नम्बर १२	२२९
१३.	दीवार नम्बर १३	२३०
१४.	दीवार नम्बर १४	२३०
१५.	दीवार नम्बर १५	२३२

खरतरों का गप्प पुराण – (लेखक–केसरीचन्द चोरडिया)

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	खरतरों का गप्प पुराण	२४१

शास्त्रार्थ में खरतरों का पराजय

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी का जिक्र है कि अजमेर में राजा बीसलदेव चौहान राज करता था। उस समय एक ओर से तो उपकेशगच्छीय वाचनाचार्य पद्मप्रभ का शुभागमन अजमेर में हुआ। आप व्याकरण, न्याय, तर्क, छन्द, काव्य, अलंकार और जैनागमों के प्रखर पण्डित और धुरन्धर विद्वान थे। आपके विद्वतापूर्ण व्याख्यानों से बड़े बड़े राजा एवं पंडित मन्त्रमुग्ध बन जाते थे। यही कारण है कि आपकी विद्वत्ता की सौरभ सर्वत्र फैली हुई थी। दूसरी ओर से खरतराचार्य जिनपतिसूरि का पदार्पण अजमेर में हुआ, आप वाचनाचार्य पद्मप्रभ की प्रशंसा को सहन नहीं कर सके। भला अभिमान के पुतले योग्यता न होने पर भी आप अपने को सर्वोपरि समझने वाले दूसरों की बढ़ती को कब देख सकते हैं? उक्त इन दोनों का शास्त्रार्थ राजा बीसलदेव की सभा के पंडितों के समक्ष हुआ। जिसमें वाचनाचार्य पद्मप्रभ द्वारा जिनपति बुरी तरह से परास्त हुआ जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है।[१]

इस पुरानी बात को चित्र द्वारा प्रकाशित करवाने की इस समय आवश्यकता नहीं थी पर हमारे खरतर भाइयों ने इस प्रकार की प्रेरणा की कि जिससे लाचार होकर इस कार्य में प्रवृत्ति करनी पड़ी है, जिसके जिम्मेदार हमारे खरतर भाई ही हैं।

इस कलंक को छिपाने के लिए आधुनिक खरतरों ने जिनेश्वरसूरि का पाटण की राजसभा में शास्त्रार्थ होने का कल्पित ढाँचा तैयार कर स्वकीय ग्रंथों में ग्रन्थित कर दिया है। परन्तु प्राचीन प्रमाणों से यह साबित होता है कि न तो जिनेश्वरसूरि

---

१. **तदा खरतराचार्यैः, श्री जिनपति सूरिभिः।**
सार्द्धं विवादो विदधे, गुरु काव्याष्टकच्छले ॥
श्रीमत्यजयमेर्वाख्ये, दुर्गे बीसलभूपतेः।
सभायां निर्जिता येन, श्रीजिनपतिसूरयः ॥
- उपकेशगच्छचरित्र

कभी राजसभा में गये थे, न किसी चैत्यवासी के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ था और न राजा दुर्लभ ने खरतर बिरुद ही दिया था। इस विषय के लिये खरतर मतोत्पत्ति भाग १-२-३-४ आपके करकमलों में विद्यमान हैं, जिसको पढ़ कर आप अच्छी तरह से निर्णय कर सकते हैं।

कहा जाता है कि 'हारा जुगारी दूणो खेले' इस युक्ति को चरितार्थ करते हुए खरतरों ने जिनेश्वरसूरि का कल्पित चित्र बना कर उसके नीचे लेख लिख दिया है कि 'उपकेशगच्छीय चैत्यवासियों को परास्त किया' भला कभी जिनेश्वरसूरि आकर खरतरों को पूछे कि अरे भक्तो ! मैं कब पाटण की राजसभा में गया था और कब उपकेशगच्छीय चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ किया था और कब राजा दुर्लभ ने मुझे खरतर बिरुद दिया था, तुमने यह मेरे पर झूठा आक्षेप क्यों लगाया है? उपकेशगच्छ के आचार्यों को तो मैं पूज्य भाव से मानता हूँ क्योंकि उन्होंने लाखों करोड़ों आचारपतित क्षत्रियों को जैन धर्म से दीक्षित कर 'महाजन-संघ' की स्थापना की थी। उन्हीं ओसवाल, पोरवाल और श्रीमालों ने जैन धर्म को जीवित रक्खा है और तुम्हारी भी सहायता करते हैं। तथा उपकेशगच्छीय आचार्य यक्षदेवसूरि ने आर्य वज्रसेन के ४ शिष्यों को ज्ञानदान और शिष्यदान दे कर उनके चन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर और निवृत्ति कुल स्थापन किये, जिसमें चन्द्रकुल में मैं भी हूँ तो उनका उपकार कैसे भूला जाय? तथा उपकेशगच्छीय देवगुप्तसूरि ने देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को दो पूर्व का ज्ञान पढ़ा कर क्षमाश्रमण पद दिया था कि जिन्होंने आगमों को पुस्तकारुढ़ कर जैन समाज पर महान उपकार किया है, इतना ही क्यों पर मैं खुद उपकेशगच्छाचार्यों के पास पढ़ा हूँ। अतः उन महा उपकारी पुरुषों के उपकार के बदले मेरे नाम से इस प्रकार मिथ्या आक्षेप करना यह संसार-वृद्धि का ही कारण है इत्यादि। इसका आधुनिक खरतर क्या उत्तर दे सकते हैं?

शर्म ! शर्म !! महाशर्म !!! कि खरतरों ने अपना कलंक छिपाने के लिए एक महान उपकारी पुरुषों के ऊपर मिथ्या दोषारोपण कर दिया है, परन्तु आज बीसवीं शताब्दी और ऐतिहासिक युग में ऐसे कल्पित चित्र और मिथ्या लेखों की फूटी कौड़ी जितनी भी कीमत नहीं है।

खरतरों ! अब भी समय है कि ऐसे चित्र और मिथ्या लेखों को शीघ्र हटा दो वरन् तुम्हारे हक में ठीक न होगा इसको अच्छी तरह सोच लेना चाहिए।

– **केसरीचन्द चोरड़िया**

अजमेर के राजा
वीसलदेव चौहान
की
राजसभामें
उपकेशगच्छीय
वाचनाचार्य पद्मप्रभ
द्वारा
खरतराचार्यजिनपतिसूरि
परास्त
हो कर
क्षमायाचना
कर रहा है ।

वि. सं. १३९३ का लिखा हुआ उपकेशगच्छ चारित्र की हस्तलिखित प्रति का चित्र

इसके अन्दर के २ श्लोक पृष्ठ २ पर दिये हैं।

जैन इतिहास ज्ञानभानुकिरण नं. २२

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः

खरतरमतोत्पत्ति-भाग पहला

लेखक
इतिहासप्रेमी मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक
श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला
मु. फलौदी (मारवाड़)

ओसवाल संवत् २३९६

वीर संवत् २४६६ (वि. सं. १९९६) ई. सं. १९३९

प्रथमावृत्ति
५००

मूल्य
दो आना

क्या ?

अजमेर शहर के बाहर एक दादा-बाड़ी है। जिसमें जिनदत्तसूरिजी की छत्री है, उस छत्री के गुम्बज में अभी थोड़े समय से कुछ चित्र बनवाये गये हैं, जिसमें एक चित्र में एक राजसभा में परस्पर साधुओं के शास्त्रार्थ का दृश्य दिखलाया हैं। उस चित्र के नीचे एक लेख भी है, उसमें लिखा है कि :-

''अणहिलपुर पट्टन में दुर्लभ राजा की राजसभा में जैन शासन शृङ्गार जिनेश्वरसूरीश्वरजी महाराज ने उपकेशगच्छीय चैत्यवासियों को परास्त कर विक्रम संवत् १०८० में खरतर बिरुद प्राप्त किया।''

उपरोक्त लेख या तो बिलकुल गलत एवं कल्पना मात्र ही है, उसमें भी उपकेशगच्छीय चैत्यवासी शब्द तो प्रत्येक जैन को आघात पहुँचाने वाला है क्योंकि एक शान्ति-प्रिय ज्येष्ठ गच्छ का इस प्रकार अपमान करना सरासर अन्याय है। अत: अजमेर के खरतरों को मैंने सूचना दी थी कि या तो इस बात को प्रमाणिक प्रमाणों द्वारा साबित कर दें कि जिनेश्वरसूरि और उपकेशगच्छीय चैत्यवासियों का शास्त्रार्थ हुआ था या 'उपकेशगच्छीय' इन शब्दों को हटा दें वरन् इसकी सत्यता के लिये मुझे प्रयत्न करना होगा। इस मेरी सूचना को कई दिन गुजर गये पर अजमेर के खरतरों ने इस ओर लक्ष्य तक भी नहीं दिया। अत: मुझे इस किताब को लिखने की आवश्यकता हुई जो आपके कर कमलों में विद्यमान है। जिसको आद्योपान्त पढ़ने से आपको रोशन हो जायेगा कि विघ्न संतोषियों ने एक मिथ्या लेख लिख कर जैन समाज के दिल को किस प्रकार आघात पहुँचाया है। अब भी समय है उस शब्द को हटा कर इस मामले को यहां शान्त कर दें।

'लेखक'

श्री जैन इतिहास ज्ञान भानुकिरणनम्बर २२

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः

खरतरमतोत्पत्ति-भाग पहला

जैनधर्म आज्ञा प्रधान धर्म है। वीतराग की आज्ञा को शिरोधार्य करनेवालों को ही जैन एवं सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। यदि वीतराग की आज्ञा के खिलाफ एक अक्षर मात्र भी न्यूनाधिक प्ररुपणा करें तो उसको निन्हव, मिथ्यात्वी, उत्सूत्रभाषी कहा जाता है और जिन लोगों के प्रबल मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय होता है वही लोग उत्सूत्र प्ररुपणा कर स्वयं अपने को तथा दूसरे अनेक जीवों को दीर्घसंसार के पात्र बना देते हैं।

भगवान महावीर की मौजूदगी में गोसाला जमाली आदिकों ने भगवान महावीर के खिलाफ होकर उत्सूत्र की प्ररुपणा कर अपना नया मत चला दिया था। इस पर भी तुर्रा यह है कि भगवान को झूठा बतला कर आपने सच्चे बनने की उद्घोषणा भी कर दी थी।

इसी प्रकार भगवान के निर्वाण के बाद भी कई उत्सूत्र प्ररुपक निन्हवों ने जन्म लेकर नये नये मत निकाल बिचारे भद्रिक जीवों को संसार में डुबाने का प्रयत्न किया था जिसमें खरतरमत भी एक है। इस मत के आदि पुरुष ने तीर्थंकर गणधर और पूर्वाचार्यों की आज्ञा का भंग कर उत्सूत्र की प्ररुपणा की थी जैसे :-

१. भगवान महावीर के पांच कल्याणक हुए ऐसे मूलसूत्र टीका वगैरह में उल्लेख मिलते हैं और उसको आचार्य अभयदेवसूरि तक सब जैन समाज मानता भी आया था, पर जिनवल्लभसूरि जो कुर्च्चपुरागच्छीय चैत्यवासी जिनेश्वरसूरि का शिष्य था उसने वि. सं. ११६४ आश्विनकृष्णात्रयोदशी के दिन चितौड़ के किल्ले पर भगवान महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा करके अपना 'विधिमार्ग' नामक एक नया मत निकाला।

२. जैन धर्म में जैसे पुरुषों को जिनपूजा करने का अधिकार हैं वैसा ही स्त्रियों को जिनपूजा कर आत्मकल्याण करने का अधिकार है पर जिनवल्लभसूरि के पट्टधर जिनदत्तसूरि ने वि. सं. १२०४ पाटणनगर में स्त्रियों को जिनपूजा करना निषेध कर उत्सूत्र की प्ररुपणा को और जिनदत्तसूरि की प्रकृति से जिनवल्लभसूरि

के 'विधिमार्ग' का नाम खरतरमत हुआ।

३. श्रावक पर्व के दिन तथा पर्व के अलावा जब कभी अवकाश मिले उसी दिन पौषध व्रत कर सकता है और भगवती सूत्र में राजा उदाई तथा विपाकसूत्र में सुबाहुकुमार ने पर्व के अलावा दिनों में भी पौषधव्रत किया था पर खरतरों ने मिथ्यात्वोदय के कारण पर्व के अलावा दिनों में पौषध करना निषेध करके उत्सूत्र की प्ररुपणा कर डाली एवं अन्तराय कर्मोपार्जन किया।

४. श्रावक जैसे तिविहार उपवास कर पौषध करता है वैसे एकासना करके भी पौषध कर सकता है और भगवतीसूत्र में पोक्खली आदि बहुत श्रावकों ने इस प्रकार पौषध किया भी था पर खरतरों ने एकासना एवं आंबिल वाले को पौषध व्रत करने का निषेध करके उत्सूत्र की प्ररुपणा कर डाली।

५. जब साधु को दीक्षा दी जाती है तब नांद (तीगड़े पर प्रभु प्रतिमा स्थापित करना) मांड कर विधि-विधान यानि तीन प्रदक्षिणा के साथ तीन बार जावजीव के लिये करेमिभंते सामायियं उच्चराई जाती है पर खरतरों ने श्रावक के इतर काल की सामायिक को भी तीन बार उच्चारने की उत्सूत्र प्ररुपणा कर डाली।

६. जैनागमों का फरमान है कि श्रावक सामायिक करे तो पहले क्षेत्र शुद्धि के लिये इरियावही करके ही सामायिक करे पर खरतरों ने पहले सामायिक दंडक उच्चरना बाद में इरियावही करने की उत्सूत्र प्ररुपणा कर डाली।

७. जैनागमों में साधु के लिये नौकल्पी विहार का अधिकार है, खरतरों ने उसका भी निषेध कर दिया।

इत्यादि वीतराग की आज्ञा का भंग कर कई प्रकार की उत्सूत्र प्ररुपणा कर डाली जिसको सब गच्छवालों ने उत्सूत्र प्ररुपणा मानी है इतना ही क्यों पर भगवान महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा के कारण जिनवल्लभसूरि को तथा स्त्री जिनपूजा निषेध के कारण जिनदत्तसूरि को श्रीसंघ ने संघ बाहर भी कर दिया था पर कहा जाता है कि 'हारिया जुवारी दूणों खेले' इस लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए उन्होंने और भी कई मिथ्या प्ररुपणा कर दी तथा आधुनिक खरतरों ने खरतरमत की उत्पत्ति का आदि पुरुष जिनेश्वरसूरि को बतलाने के लिये एक कल्पना का कलेवर तैयार किया है कि वि. सं. १०८० में जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे, वहां राजा दुर्लभ की राजसभा में चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ किया, जिसमें जिनेश्वरसूरि खरा रहा, जिससे राजा दुर्लभ ने उनको खरतर बिरुद दिया और हार जानेवाले को कँवला कहा इत्यादि पर खरतरों के किसी प्राचीन ग्रंथों में इस बात की गंध तक भी नहीं है और न किसी प्रमाण से यह

बात सिद्ध भी होती है क्योंकि सबसे पहले तो वि. सं. १०८० में पाटण में राजा दुर्लभ का राज ही नहीं था। इतिहास की शोध खोज से यह निश्चय हो चुका है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि. सं. १०६६॥ से १०७८ तक रहा था, जिसके लिये मैं पाटण राजाओं की वंशावली यहां उद्धृत कर देता हूँ।

पाटण नगर वनराज चावड़ा ने वि. सं. ८०२ में बसाया था, बाद वहां पर कौन कौन राजाने कितने कितने वर्ष राज किया जैसे :-

चावड़ा वंश के राजा

१. वनराज चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ८०२ से ८६२ तक कुल ६० वर्ष
२. योगराज चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ८६२ से ८९७ तक कुल ३५ वर्ष
३. खेमराज चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ८९७ से ९२२ तक कुल २५ वर्ष
४. भूवड़ चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ९२२ से ९५१ तक कुल २९ वर्ष
५. वैरीसिंह चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ९५१ से ९७६ तक कुल २५ वर्ष
६. रत्नादित्य चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ९७६ से ९९१ तक कुल १५ वर्ष
७. सामन्तसिंह चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ९९१ से ९९८ तक कुल ०७ वर्ष

इस तरह चावड़ा वंश के राजाओं ने १९६ वर्ष राज्य किया, अनन्तर सोलंकी वंश का राज हुआ वह क्रम इस प्रकार है :-

सोलंकी वंश के राजा

८. मूलराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. ९९८ से १०५३ तक कुल ५५ वर्ष
९. चामुण्डराय सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १०५३ से १०६६ तक कुल १३ वर्ष
१०. वल्लभराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १०६६ से १०६६॥ तक केवल ६ मास
११. दुर्लभराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १०६६॥ से १०७८ तक कुल ११॥ वर्ष
१२. भीमराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १०७८ से ११२० तक कुल ४२ वर्ष
१३. करणराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. ११२० से ११५० तक कुल ३० वर्ष
१४. जयसिंह सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. ११५० से ११९९ तक कुल ४९ वर्ष
१५. कुमारपाल सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. ११९९ से १२३० तक कुल ३१ वर्ष
१६. अजयपाल सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १२३० से १२६६ तक कुल ३६ वर्ष
१७. मूलराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १२६६ से १२७४ तक कुल ८ वर्ष

सोलंकी वंश के राजाओं ने २७६ वर्ष तक राज्य किया, बाद में पाटण का राज बाघल-वंश के हस्तगत हुआ। उन्होंने वि.सं. १३५८ तक कुल ८४ वर्ष राज्य किया, फिर पाटण की प्रभुता आर्यों के हाथों से मुसलमानों के अधिकार में चली गई।

१. इसी प्रकार पं. गौरीशंकरजी ओझा ने स्वरचित सिरोही राज के इतिहास में लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि. सं. १०६६॥ से १०७८ तक रहा, बाद राजा भीमदेव पाटण का राजा हुआ।

२. पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ ने भारतवर्ष का प्राचीन राजवंश नामक किताब में लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज १०६६॥ से १०७८ तक रहा।

३. गुर्जरवन्श भूपावली में लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि. सं. १०७८ तक रहा।

४. आचार्य मेरुतुंग रचित प्रबन्ध चिंतामणि नामक ग्रन्थ में भी लिखा है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि. सं. १०६६॥ से १०७८ तक रहा।

इत्यादि इस विषय के अनेक प्रमाण विद्यमान हैं पर ग्रंथ बढ़ जाने के भय से मैंने नमूने के तौर पर उपरोक्त प्रमाण लिख दिए हैं, इन प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि. सं. १०६६॥ से १०७८ तक ही रहा था। तब राजा दुर्लभ की राजसभा में वि. सं. १०८० में जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ कैसे हुआ होगा ? शायद पाटण का राजा दुर्लभ मरकर भूत हुआ हो और वह दो वर्षों से लौट कर वापिस आकर राजसभा की हो और उसमें जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद दे गया हो तो खरतरों का कहना सत्य (!) हो सकता है पर इसमें भी प्रमाण की आवश्यकता तो रह ही जाती है।

अब जरा जिनेश्वरसूरि की तरफ देखिये कि खुद जिनेश्वरसूरि क्या कहते हैं ? जिनेश्वरसूरि खुद लिखते हैं कि मैं वि. सं. १०८० में जावलीपुर (जालौर) में ठहर कर आचार्य हरिभद्रसूरि के अष्टक ग्रन्थ पर टीका रच रहा था।

श्रीयुत मोहनलाल दलीचन्द देसाई ''जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास'' नामक पुस्तक के पृष्ठ २०८ पर लिखते हैं कि वि. सं. १०८० में जिनेश्वरसूरि जावलीपुर में रह कर आचार्य हरिभद्रसूरि के अष्टकों पर वृत्ति रची और आपके गुरु भाई आचार्य बुद्धिसागरसूरि ने ७००० श्लोक प्रमाण वाली बुद्धिसागर नामक व्याकरण की रचना की थी।

इस प्रमाण से स्पष्ट पाया जाता है कि वि. सं. १०८० में जिनेश्वरसूरि पाटण में नहीं पर जावलीपुर में विराजते थे। शायद यह कहा जाय कि जावलीपुर से पाटण जाकर शास्त्रार्थ किया हो या पाटण में शास्त्रार्थ करके बाद जावलीपुर आये हो ? पर यह दोनों बातें कल्पना मात्र ही हैं क्योंकि वि. सं. १०८० में जिनेश्वरसूरि जावलीपुर में ठहरे उस समय बुद्धिसागरसूरि साथ मे थे और उन्होंने ७००० श्लोक वाली व्याकरण की रचना वहाँ ही की थी, ये कोई एक दो मास का काम नहीं

था पर इस प्रकार व्याकरण का नया ग्रन्थ रचने में बहुत समय लगा होगा। दूसरा पाटण से जावलीपुर आना भी असंभव है, कारण जिस समय जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे तो वहाँ चातुर्मास भी किया था, अब खरतरों के लिये एक मार्ग हो सकता है कि जैसे दुर्लभराजा भूत होकर दो वर्षों के बाद खरतर बिरुद देने को आने की कल्पना के साथ जिनेश्वरसूरि ने दो रुप बना कर आप जावलीपुर में रहे और दूसरे रुप को पाटण भेजने की कल्पना कर लें तो आकाशकुसुम की तरह खरतर बिरुद मिलना साबित हो सकता है और इसके लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता भी नहीं रहेगी।

सारांश यह है कि न तो वि. सं. १०८० में पाटण में राजा दुर्लभ का राज था और न सं. १०८० में जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे और न खरतरों के किसी प्राचीन ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख ही मिलता है। इस हालत में जिनेश्वरसूरि का चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ और खरतर बिरुद की तो बात ही कहां रही?

पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि प्रतिवादियों से शास्त्रार्थ कर एक नामांकित राजा से बिरुद प्राप्त करना यह कोई साधारण बात नहीं है कि जिस बिरुद को वे विजयिता स्वयं एवं उनकी सन्तान भूल जाये और बाद ३०० वर्षों से वह बिरुद प्रकाश में आवे। देखिये जैनाचार्यों ने जिन जिन राजा महाराजाओं से जो जो बिरुद प्राप्त किये है वह उनके नाम के साथ उसी समय से प्रसिद्ध हो गये थे जैसे :-

१. बप्पभट्टसूरि को - वादी-कुञ्जर-केसरी बप्पभट्टसूरि।
२. शान्तिसूरि को - वादीवेताल शान्तिसूरि।
३. देवसूरि को - वादी-देवसूरि।
४. धर्मघोषसूरि को - वादी चूड़ामणि धर्मघोषसूरि।
५. अमरचन्द्रसूरि को - सिंहशिशुक अमरचन्द्रसूरि।
६. आनन्दसूरि को - व्याघ्रशिशुक आनन्दसूरि।
७. सिद्धसूरि को - गुरुचक्रवर्ति सिद्धसूरि।
८. जगच्चन्द्रसूरि को - तपा जगच्चन्द्रसूरि।
९. हेमचन्द्रसूरि को - कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि।
१०. कक्कसूरि को - राजगुरु कक्कसूरि।
११. विजयसिंहसूरि को - खड्गाचार्य विजयसिंहसूरि।
१२. नेमिचन्द्रसूरि को - सिद्धान्तचूड़ामणि नेमीचन्द्रसूरि।

इत्यादि अनेक जैनाचार्यों ने बड़े बड़े राजा महाराजाओं द्वारा बिरुद प्राप्त किये थे, जब जिनेश्वरसूरि के खरतर बिरुद ने कौन सी गुफा में समाधि ले रखी

थी कि खुद जिनेश्वरसूरि ने पंचलिंगीप्रकरण, वीरचरित्र, निर्वाण लीलावती, कथाकोश, प्रमाण लक्षण, षट्स्थानप्रकरण, हरिभद्रसूरिकृत अष्टकों पर वृत्ति आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की, इन ग्रन्थों का रचनाकाल वि. सं. १०८० से १०९५ तक का है जिसमें पाटण के शास्त्रार्थ एवं खरतर शब्द की गन्ध तक भी नहीं है।

–जिनेश्वरसूरि के गुरुभाई बुद्धिसागरसूरि ने बुद्धिसागर व्याकरणादि कई ग्रन्थ लिखे पर उसमें इशारा मात्र नहीं किया कि जिनेश्वरसूरि ने वि. सं. १०८० में पाटण के दुर्लभराजा की राजसभा में चैत्यवासियों से शास्त्रार्थ कर खरतर बिरुद प्राप्त किया था।

– जिनेश्वरसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि हुये, उन्होंने सुरसुन्दरी कथा आदि कई ग्रन्थों का निर्माण किया पर किसी स्थान पर यह नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला था।

– जिनेश्वरसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि ने संवेगरंगशालादि कई ग्रन्थ बनाये, उसमें भी खरतर शब्द की बू तक भी नहीं है।

– जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर अभयदेवसूरि हुये, उन्होंने हरिभद्रसूरि के पंचासक पर टीका रची। जिनेश्वरसूरि रचित षट्स्थान प्रकरण पर भाष्य और कुलकादि कई ग्रन्थों की रचना की पर किसी स्थान पर यह नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि ने वि. सं. १०८० में पाटण के दुर्लभराजा की राजसभा में चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ कर खरतर बिरुद प्राप्त किया था। इतना ही क्यों पर उन्होंने तो अपनी रचित टीकाओं में स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि जनेश्वरसूरि चान्द्रकुल में थे। देखिये अभयदेवसूरि कृत श्रीस्थानांगसूत्र की टीका।

''**तच्चंद्रकुलीनप्रवचनप्रणीताप्रतिबद्धविहारहारिचरितश्रीवर्धमानाऽभिधानमुनिपतिपादोपसेविनः, प्रमाणादिव्युत्पादनप्रवणप्रकरणप्रबन्धप्रणायिनः प्रबुद्धप्रतिबंधप्रवक्तृप्रवीणाऽप्रतिहतप्रवचनार्थप्रधानवाक्प्रसारस्य, सुविहितमुनिजनमुख्यस्य श्रीजिनेश्वराचार्यस्य तदनुजस्य च व्याकरणादिशास्त्रकर्त्तुः श्रीबुद्धिसागराचार्यस्य चरणकमलचंचरीककल्पेन श्रीमदभयदेवसूरिनाम्ना मया महावीरजिनराजसंतानवर्त्तिना**''

इस टीका में जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागरसूरि और अभयदेवसूरि को चंद्रकुल के लिखा है। आगे चतुर्थांग समवायांग सूत्र की टीका भी देखिये।

'' **निःसम्बन्धविहारहारिचरितान्, श्रीवर्धमानाऽभिधान- ।**
सूरीन् ध्यातवतोऽति तीव्रतपसो, ग्रन्थप्रणीति प्रभोः ॥५॥

श्रीमत्सूरिजिनेश्वरस्य जयिनो; दर्पीयसां वाग्मिनां ।
तद्बन्धोरपि बुद्धिसागर, इति ख्यातस्य सूरेर्भुवि ॥ ६ ॥
शिष्येणाऽभयदेवाख्य; सूरिणाविवृत्तिः कृता ।
श्रीमतः समवायाख्य; तुर्यांगस्य समासतः ॥ ७ ॥
एकादशसु शतेष्वथविंशत्यधिकेषु विक्रमसमानाम् ।
अणहिलपाटकनगरे रचिता समवायटीकेयम् ॥ ८ ॥''

इस टीका में जिनेश्वरसूरि के नाम के साथ कहीं भी खरतर शब्द नहीं लिखा है। आगे भगवतीसूत्र की टीका में भी देखिये-

यदुक्तमादाविह साधुबोधैः श्रीपञ्चमाङ्गोन्नतकुञ्जरोऽयम्।
सुखाधिगम्योऽस्त्विति पूर्वगुर्वी, प्रारभ्यते वृत्तिवरत्रिकेयम्॥ १ ॥
समर्थितं तत्पटुबुद्धिसाधु - सहायकात् केवलमत्र सन्तः।
सद्बुधिदात्र्याऽपगुणांल्लुनन्तु, सुखग्रहा येन भवत्यथैषा॥ २ ॥
चान्द्रेकुले सद्बनकक्षकल्पे, महाद्रुमो धर्म्मफलप्रदानात्।
छायाऽन्वितः शस्त-विशाल-शाखः, श्री वर्धमानो मुनिनायकोऽभूत्॥ ३ ॥
तत्पुष्पकल्पौ विलसद्विहार,-सद्गन्ध-सम्पूर्ण-दिशौ समन्तात्।
बभूवतुः शिष्यवरावनीचवृत्ती श्रुतज्ञानपरागवन्तौ॥ ४ ॥
एकस्तयोः सूरिवरो जिनेश्वरः ख्यातस्तथाऽन्यो भुवि बुद्धिसागरः।
तयोर्विनेयेन विबुद्धिनाऽप्यलं, वृत्तिः कृतैषाऽभयदेवसूरिणा॥ ५ ॥
तयोरेव विनेयानां, तत्पदञ्चाऽनुकुर्वताम् ।
श्रीमतां जिनचंद्राख्य, सत्प्रभूणां नियोगतः ॥ ६ ॥
श्रीमज्जिनेश्वराचार्य-शिष्याणां गुण-शालिनाम् ।
जिनभद्रमुनीन्द्राणामस्माकं चांघ्रिहिसेविनः ॥ ७ ॥
यशश्चन्द्रगणेर्गाढ़-साहाय्यात् सिद्धिमागता ।
परित्यक्ताऽन्य-कृत्यस्य, युक्तायुक्त-विवेकिनः॥ ८ ॥
शास्त्रार्थ-निर्णय-सुसौरभ-लम्पटस्य,
विद्वन्मधुव्रत गणस्य सदैव सेव्यः ।
श्रीनिर्वृताख्य-कुल-सन्नद-पद्म-कल्पः,
श्रीद्रोणसूरिरनवद्य-यशः-परागः ॥ ९ ॥
शोधितवान् वृत्तिमिमां, युक्तो विदुषां महा-समूहेन ।
शास्त्रार्थ-निष्कनिकषण-कष-पट्टक-कल्प-बुद्धिनाम् ॥ १० ॥

इस टीका में अभयदेवसूरि अपने को एवं जिनेश्वरसूरि को चन्द्रकुल के बताते हैं और अपनी रची हुई टीका महाविद्वान वादि विजयीता निर्वृत्तिकुल के द्रोणाचार्य (चैत्यवासी) से संशोधित कराई, ऐसा लिखते हैं। जिसके प्रत्युपकार में जिनवल्लभसूरि ने 'संघपट्टक' ग्रंथ में चैत्यवासियों को खूब फटकारा है। यहां तक कि उनकी मानी हुई त्रिलोक्य पूजनीय जिनप्रतिमा को मांस की बोटी की उपमा दी है और स्वयं आपने साधारण श्रावक से नया मन्दिर बनवाकर उसके द्वार पर पत्थर में संघपट्टक के ४० श्लोक खुदवाये थे, क्या यह सावद्य कार्य नहीं था ?

अब आगे चल कर ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र की टीका देखिये :-

''तस्याचार्यं जिनेश्वरस्य मदवद्वादि-प्रतिस्पर्धिनः ।
तद्बन्धोरपि ''बुद्धिसागर'' इति ख्यातस्य सूरेर्भुवि ॥
छन्दोबन्धनिबन्धबन्धुरवचः शब्दादिसल्लक्ष्मणः ।
श्रीसंविग्नविहारिणः श्रुतनिधेश्चारित्रचूडामणेः ॥ ८ ॥
शिष्येणाऽभयदेवाख्यसूरिणा विवृत्तिः कृता ।
ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्य, श्रुतभक्त्या समासतः ॥ ९ ॥

आगे फिर श्रीऔपपातिक वृत्ति का अवलोकन करिये।

चन्द्रकुल-विपुल-भूतल-युग-प्रवर-वर्धमान-कल्पतरोः ।
कुसुमोपमस्य सूरेर्गुण-सौरभ-भरित-भवनस्य ॥ १ ॥
निस्सम्बन्ध विहारस्य, सर्वदा श्री जिनेश्वराह्वस्य ।
शिष्येणाऽभयदेवाख्यसूरिणेयं कृता वृत्तिः ॥ २ ॥

इन टीकाओं में अभयदेवसूरि ने वर्धमानसूरि एवं जिनेश्वरसूरि को चन्द्रकुल के प्रदीप बताया है। यदि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में ''खरतरबिरुद'' मिला होता तो इस महत्त्वपूर्ण बिरुद को छिपा कर नहीं रखते पर उसका उल्लेख भी कहीं न कहीं अवश्य करते; परन्तु उस समय ''खरतर'' भविष्य के गर्भ में ही अन्तर्निहित था।

आगे अब जिनवल्लभसूरि के ग्रन्थों की ओर जरा दृष्टि-पात कर देखिये कि ''खरतर'' शब्द कहीं उपलब्ध होता है या नहीं ? जिनवल्लभसूरि कूर्च्चपुरीया गच्छ के चैत्यवासी जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे, उन्होंने चैत्यवास छोड़ कर किसी के पास दीक्षा तक भी नहीं ली थी तथा महावीर का गर्भापहार नामक छठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा कर विधिभाग नाम का नया मत निकाला, अतः चैत्यवासियों के प्रति उनका द्वेष होना स्वाभाविक ही था। यदि जिनेश्वरसूरि को चैत्यवासियों

से शास्त्रार्थ की विजय में ''खरतरबिरुद'' मिला होता, तो जिनवल्लभसूरि चैत्यवासियों के सामने उस बिरुद को कभी छिपाये नहीं रखते, किन्तु बड़े गौरव के साथ कहते कि पहले भी जिनेश्वरसूरि ने चैत्यवासियों को पराजित कर ''खरतरबिरुद'' प्राप्त किया था। परन्तु जिनवल्लभसूरि की विद्यमानता में ''खरतर'' शब्द का नाम तक नहीं था। यदि जिनवल्लभसूरि को यह मालूम भी होता कि जिनेश्वरसूरि को चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ कर विजय में ''खरतरबिरुद'' मिला है तो उन्होंने जो ''संघपट्टक'', सिद्धान्तविचारसार, आगमवस्तुविचारसार, पिण्डविशुद्धिप्रकरण, पौषधविधिप्रकरण, प्रतिक्रमणसमाचारी, धर्मशिक्षा प्रश्नोत्तरसार्द्धशतक, श्रृंगारशतक आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की थी, उनमें कम से कम वह उल्लेख तो जरुर करते कि जिनेश्वरसूरि को खरतरबिरुद मिला था पर किसी जगह उन्होंने यह नहीं लिखा है कि जिनेश्वरसूरि को खरतरबिरुद मिला, या हम खरतर गच्छ के हैं। इस पर प्रत्येक विचारशील विद्वान् को विचारना चाहिये कि यदि जिनेश्वरसूरि को वि. सं. १०८० में दुर्लभ राजा ने शास्त्रार्थ की विजय के उपलक्ष्य में ''खरतर बिरुद'' दिया होता तो सम्भव है कदाचित स्वयं जिनेश्वरसूरि निज आत्मश्लाघा के भय से अपने नाम के साथ खरतर शब्द जोड़ने में सकुचाते, पर आपके पश्चात जो बुद्धिसागरसूरि, धनेश्वरसूरि, जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि और जिनवल्लभसूरि हुए, वे तो इस गौरवास्पद शब्द को कहीं न कहीं जरुर लिखते, पर क्या सब के सब इस सम्मानप्रद शब्द को भूल गये थे ? या कहीं रख दिया था कि पिछले किसी आचार्य को भी इस बिरुद की स्मृति तक नहीं हुई ?

वस्तुतः जिनेश्वरसूरि को ''खरतरबिरुद'' मिला ही नहीं था, अभयदेवसूरि तक तो वे सब चन्द्रकुली ही कहलाते थे, जो हमने अभयदेवसूरि रचित टीकाओं के प्रमाण देकर सिद्ध कर दिखाये हैं, इतना ही नहीं पर जिनवल्लभसूरि को भी खरतरों ने खरतर न कह कर, चन्द्रकुली कहा है। तद्यथा :-

''सूरिः श्रीजिनवल्लभोऽजनि बुधश्चान्द्रे कुले तेजसा।
सम्पूर्णोऽभयदेवसूरि-चरणाऽम्भोजालिलीलायितः ॥''

इस प्रमाण से स्पष्ट सिद्ध होता है कि जिनवल्लभसूरि तक तो वह सब चन्द्रकुल के साधु कहलाते थे।

एक और भी प्रमाण मिलता है कि जिनवल्लभसूरि के बाद आपके नूतन मत में क्लेश हो कर दो शाखाएँ बन गई थी, एक जिनदत्तसूरि की-खरतर शाखा, दूसरी जिनशेखरसूरि की-रुद्रपाली शाखा, रुद्रपाली शाखा के अन्दर विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में एक जयानन्दसूरि नाम के आचार्य हुए, उन्होंने आचारदिनकर ग्रन्थ पर

टीका रची है, उसकी प्रशस्ति में लिखा है कि :-

श्रीमज्जिनेश्वरः सूरिर्जिनेश्वरमतं ततः ।
शरद्राकाशशिस्पष्ट-समुद्रसद्दशं व्यधात् ॥ १२ ॥
नवांग-वृत्तिकृत्-पट्टेऽभयदेवप्रभुर्गुरो ।
तस्य स्तम्भनकाधीशमाविश्चक्रे समं गुणैः ॥ १३ ॥
श्राद्धप्रबोधप्रवणस्तत्पदे जिन वल्लभः ।
सुरिर्वल्लभतां भेजे, त्रिदशानां नृणामपि ॥ १४ ॥
ततः श्री रुद्रपल्लीयगच्छ संज्ञा, लसद्यशाः ।
नृपशेखरतां भेजे, सूरीन्द्रो जिनशेखरः ॥ १५ ॥

इस प्रमाण से भी स्पष्ट होता है कि जिनेश्वरसूरि से जिनवल्लभसूरि तक तो खरतर का नाम निशान भी नहीं था, बाद में जिनदत्तसूरि को लोग खरतर खरतर कहने लगे। इसलिए ही तो जिनदत्तसूरि के खिलाफ जिनशेखरसूरि की परम्परा में खरतर शब्द को स्थान नहीं मिला है। अर्थात् जिनवल्लभसूरि के पट्टधर जैसे जिनदत्तसूरि हुए वैसे जिनशेखरसूरि भी जिनवल्लभसूरि के पट्टधर आचार्य हुए हैं और उनका मत खरतर नहीं, पर उनके मत का नाम रुद्रपाली था। यदि जिनेश्वरसूरि से ही खरतर मत प्रचलित हुआ होता तो जिनशेखरसूरि अपने को रुद्रपाली गच्छ न लिख कर खरतर गच्छ की एक शाखा लिखते! अतः इस प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है कि वि. सं. १४६८ तक तो किसी की भी यह मान्यता नहीं थी कि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद कभी मिला था। खुद जिनदत्तसूरि ने ''गणधरसार्द्धशतक, सन्देहदोलावली, गणधरसप्तति, अवस्थाकुलक, चैत्यवन्दनकुलक, चर्चरी, उपदेशरसायन, कालस्वरुपकुलक आदि अनेक ग्रंथों की रचना की पर आपने कहीं पर यह नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला और हम उनकी सन्तति श्रेणी में खरतर हैं।

'खरतर' शब्द की उत्पत्ति तो जिनदत्तसूरि से हो गई थी, पर वह अपमान-सूचक होने से किसी ने इस शब्द को अपनाया नहीं था। जिनदत्तसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि हुए, उन्होंने भी किसी स्थान पर ऐसा नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि या जिनदत्तसूरि से हम खरतर हुए हैं। इतना ही नहीं पर जिनपतिसूरि ने (वि. सं. १२२३ में सूरिपद) जिनवल्लभसूरि कृत संघपट्टक ग्रंथ पर जो टीका रची है उसमें उन्होंने जिनेश्वरसूरि से जिनवल्लभसूरि तक के आचार्यों का अत्युक्ति पूर्ण गुण वर्णन करते हुए भी चैत्यवासियों की विजय में उपलब्ध हुआ खरतर बिरुद को चैत्यवासियों के खण्डन विषयक ग्रंथ में भी ग्रंथित नहीं किया, अतः यह बात

हम दावे के साथ कह सकते हैं कि जिनेश्वरसूरि से जिनवल्लभसूरि तक खरतर शब्द का नाम तक भी नहीं था।

उपरोक्त खरतराचार्यों के प्राचीन ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनेश्वरसूरि से नहीं पर जिनदत्तसूरि से हुई है और खरतर मत के सिवाय तपागच्छ आदि जितने गच्छ हुए हैं उन सब गच्छवालों की भी यही मान्यता है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि से ही हुई थी। अब आगे चल कर हम सर्वमान्य शिलालेखों का अवलोकन करेंगे कि किस समय से खरतर शब्द का प्रयोग किस आचार्य से हुआ है। इस समय हमारे सामने निम्नलिखित शिलालेख मौजूद हैं :-

१. श्रीमान् बाबू पूर्णचंदजी नाहर कलकत्ता वालों के संग्रह किये हुए ''प्राचीन शिलालेख संग्रह'' खण्ड १-२-३ जिनमें २५९२ शिलालेख हैं, जिसमें खरतरगच्छ आचार्यों के वि. सं. १३७९ से १९८० तक के कुल ६६५ शिलालेख हैं।

२. श्रीमान् जिनविजयजी सम्पादित ''प्राचीनलेखसंग्रह'' भाग दूसरे में कुल ५५७ शिलालेखों का संग्रह है, जिनमें वि. सं. १४१२ से १९०३ तक के २५ शिलालेख खरतरगच्छ आचार्यों के हैं।

३. श्रीमान् आचार्य विजयेन्द्रसूरि सम्पादित 'प्राचीनलेखसंग्रह' भाग पहले में कुल ५०० शिलालेख हैं, जिनमें वि. सं. १४४४ से १५४३ तक के शिलालेख हैं उनमें २९ लेख खरतराचार्य के हैं।

४. श्रीमान् आचार्य बुद्धिसागरसूरि संग्रहीत ''धातु प्रतिमालेख संग्रह'' भाग पहले में १५२३, भाग दूसरे में ११५० कुल २६७३ शिलालेख हैं। जिनमें वि. सं. १२५२ से १७९५ तक के ५० शिलालेख खरतराचार्यों के हैं।

एवं कुल ६३२२ शिलालेखों में ७७९ शिलालेख खरतराचार्यों के हैं। अब देखना यह है कि वि. सं. १२५२ से खरतराचार्य के शिलालेख शुरु होते हैं। यदि जिनेश्वरसूरि को वि. सं. १०८० में शास्त्रार्थ के विजयोपलक्ष्य में खरतर-बिरुद मिला होता तो इन शिलालेखों में उन आचार्यों के नाम के साथ खरतर-शब्द का प्रचुरता से प्रयोग होना चाहिये था, हम यहां कतिपय शिलालेख उद्धृत करके पाठकों का ध्यान निर्णय की ओर खींचते हैं।

संवत् १२५२ ज्येष्ठ वदि १० श्रीमहावीरदेवप्रतिमा अश्वराज श्रेयोऽर्थं पुत्रभोजराजदेवेन कारापिता प्रतिष्ठा जिनचंद्रसूरिभिः ॥

आ. बुद्धि धातु प्र. ले. सं., लेखांक ९३०

ये आचार्य किस गच्छ एवं किस शाखा के थे ? शिलालेख में कुछ भी नहीं लिखा है।

''संवत् १२८१ वैशाख सुदि ३ शनौ पितामह श्रे. साम्ब पितृ श्रे. जसवीर मातृ लाष एतेषां श्रेयोऽर्थं सुत गांधी गोसलेन बिंबं कारितं प्रतिष्ठितञ्च श्रीचन्द्रसूरिशिष्यः श्रीजिनेश्वरसूरिभिः ॥''

आ. बु. धातु ले. सं., लेखांक ६२७

ये आचार्य शायद जिनपतिसूरि के पट्टधर हो, इनके समय तक भी खरतर शब्द का प्रयोग अपमान बोधक होने से नहीं हुआ था।

''सं. १३५१ माघ वदि १ श्रीप्रल्हादनपुरे श्रीयुगादिदेवविधिचैत्य श्री-जिनप्रबोधसूरिशिष्यश्रीजिनचंद्रसूरिभिः श्रीजिनप्रबोधसूरिमूर्तिप्रतिष्ठा कारिता रामसिंहसुताभ्यां सा. नोहा कर्मण श्रावकाभ्यां स्वामातृ राई मई श्रेयोऽर्थं ॥''

आ. बु. धा. ले. सं., लेखांक ७३४

ये आचार्य जिनदत्तसूरि के पांचवे पट्टधर थे। इनके समय तक भी खरतर शब्द को गच्छ का स्थान नहीं मिला था।

''ॐ संवत् १३७९ मार्ग. वदि ५ प्रभु जिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीकुशलसूरिभि श्रीशान्तिनाथबिंबं प्रतिष्ठितं कारितञ्च सा. सहजपालपुत्रैः सा. धाधल गयधर थिरचंद्र सुश्रावकैः स्वपितृ पुण्यार्थं ॥''

बाबू पूर्ण., खंड तीसरा, लेखांक २३८९

ॐ सं. १३८१ वैशाख वदि ५ श्री पत्तने श्री शांतिनाथविधिचैत्ये श्री जिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः श्रीजिनप्रबोधसूरिमूर्तिप्रतिष्ठा कारिता च सा. कुमारपाल रतनैः सा. महणसिंह सा. देवाल सा. जगसिंह सा. मेहा सुश्रावकैः सपरिवारैः स्वश्रेयोऽर्थम् ॥

बाबू पूर्ण., खण्ड दूसरा, लेखांक १९८८

''संवत् १३९१ मा. श्री. १५ खरतरगच्छीय श्री जिनकुशलसूरि शिष्यैः जिनपद्मसूरिभिः श्री पार्श्वनाथप्रतिमा प्रतिष्ठिता कारिता च भव. बाहिसुतेन रत्नसिंहेन पुत्र आल्हानादि परिवृतेन स्वपितृ सर्व पितृव्य पुण्यार्थं ॥''

बाबू पूर्ण., खं. दूसरा, लेखांक १९२६

''सं. १३९९ भ. श्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः श्री-पार्श्वनाथबिंबं प्रतिष्ठितं कारितं च सा. केशवपुत्र रत्न सा. जेहदु सु श्रावकेन पुण्यार्थं ।''

बाबू पूर्ण., खं. दूसरा, लेखांक १५४५

यह आचार्य जिनदत्तसूरि के छठे पट्टधर हुए हैं।

पूर्वोक्त शिलालेखों से पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि जिनकुशलसूरि के पूर्व किन्हीं आचार्यों के नाम के साथ खरतर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ पर जिनकुशलसूरि के कई शिलालेखों में खरतर शब्द नहीं है और कई लेखों में खरतरगच्छ का प्रयोग हुआ है, इससे यह स्पष्ट पाया जाता है कि खरतर शब्द गच्छ के रुप में जिनकुशलसूरि के समय अर्थात् विक्रम की चौदहवीं शताब्दी ही में परिणत हुआ है। इसका अभिप्राय यह है कि खरतर शब्द न तो राजाओं का दिया हुआ बिरुद है और न कोई गच्छ का नाम है। यदि वि. सं. १०८० में जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में राजा दुर्लभ ने खरतर बिरुद दिया होता तो करीब ३०० वर्षों तक यह महत्त्वपूर्ण बिरुद गुप्त नहीं रहता। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में खरतर गच्छाचार्यों की यह मान्यता थी कि खरतर गच्छ के आदि पुरुष जिनदत्तसूरि ही थे। और यही उन्होंने शिलालेखों में लिखा है। यहां एक शिलालेख इस बारे में नीचे उद्धृत करते हैं।

''**संवत् १५३६ वर्षे फागुणसुदि ५ भौमवासरे श्री उपकेशवंशे छाजहड़गोत्रे मंत्रि फलधराऽन्वये मं. जूठल पुत्र मकालू भा. कर्म्मादे पु. नयणा भा. नामल दे ततोपुत्र मं. सीहा भार्यया चोपड़ा सा. सवा पुत्र स. जिनदत्त भा. लखाई पुत्र्या श्राविका अपुरव नाम्न्या पुत्र समधर समरा संदू संही तया स्वपुण्यार्थ श्रीआदिदेव प्रथम पुत्ररत्न प्रथम चक्रवर्ति श्री भरतेश्वरस्य कायोत्सर्गस्थितस्य प्रतिमाकारिता प्रतिष्ठिता खरतरगच्छमण्डन श्रीजिनदत्त-सूरि श्रीजिनकुशलसूरि संतानीय श्रीजिनचन्द्रसूरि पं. जिनश्वरसूरि शाखायां श्रीजिनशेखरसूरि पट्टे श्रीजिनधर्मसूरि पट्टाऽलंकार श्रीपूज्य श्रीजिनचन्द्र-सूरिभिः**''

बा. पू. सं., लेखांक २४००

इस लेख से पाया जाता है कि सोलहवीं शताब्दी में खरतर गच्छ के आदि पुरुष जिनेश्वरसूरि नहीं पर जिनदत्तसूरि ही माने जाते थे। खरतरों के पास इससे प्राचीन कोई भी प्रमाण नहीं है कि वह जनता के सामने पेश कर सके। आधुनिक खरतर अनुयायी प्रतिक्रमण के अन्त में दादाजी के काउस्सग्ग करते हैं। उसमें भी जिनेश्वरसूरि का नहीं पर जिनदत्तसूरि का ही करते हैं और कहते हैं कि खरतरगच्छ शृंगारहार जिनदत्तसूरि आराधनार्थ... इससे भी स्पष्ट हो जाता है कि खरतरगच्छ के आदि पुरुष जिनदत्तसूरि ही हैं।

खरतर शब्द को प्राचीन साबित करने वाला एक प्रमाण खरतरों को ऐसा

उपलब्ध हुआ है कि जिस पर वे लोग विश्वास कर कहते हैं कि बाबू पूर्णचन्दजी नाहर के संग्रह किये हुए शिलालेख खण्ड तीसरे में वि. सं. ११४७ का एक शिलालेख है।

''संवत् ११४७ वर्षे श्रीऋषभबिंबं श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनशेखर-सूरिभिः करापितं ॥''

बा. पू. सं., खं. तीसरा, लेखांक २१२४

पूर्वोक्त शिलालेख जैसलमेर के किल्ले के अन्दर स्थित चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मन्दिर में है। जो बिनपबासन भूमि पर बीस विहरमान तीर्थंकरों की मूर्तियाँ स्थापित है उनमें एक मूर्ति में यह लेख बताया जाता है। परन्तु जब फलोदी के वैद्य मुहता पांचूलालजी के संघ में मुझे जैसलमेर जाने का सौभाग्य मिला तो मैं अपने दिल की शङ्का निवारणार्थ प्राचीन लेख संग्रह खण्ड तीसरा जिसमें निर्दिष्ट लेख मुद्रित था वह साथ में लेकर मन्दिर में गया और खोज करनी शुरु की। परन्तु अत्यधिक अन्वेषण करने पर भी ११४७ के संवत् वाली उक्त मूर्ति उपलब्ध नहीं हुई। अनन्तर शिलालेख के नम्बरों से मिलान किया, पर न तो वह मूर्ति ही मिली और न उस मूर्ति का कोई रिक्त स्थान मिला (शायद वहाँ से मूर्ति उठा ली गई हो) पुनः इस खोज के लिये मैंने यतिवर्य प्रतापरत्नजी नाडोल वाले और मेघराजजी मुनौत फलोदीवालों को बुलाके जाँच कराई, अनन्तर अन्य स्थानों की मूर्तियों की तलाश की पर प्रस्तुत मूर्ति कहीं पर भी नहीं मिली। शिलालेख संग्रह नम्बर २१२० से क्रमशः २१३७ तक की सारी मूर्तिएँ सोलहवीं शताब्दी की हैं। फिर उनके बीच २१२४ नम्बर की मूर्ति वि. सं. ११४७ की कैसे मानी जाय? क्योंकि न तो इस सम्वत् की मूर्ति ही वहाँ है और न उसके लिए कोई स्थान खाली है। जैसलमेर में प्रायः ६००० मूर्तिएँ बताते हैं, पर किसी शिलालेख में बारहवीं सदी में खरतर गच्छ का नाम नहीं है। अतः ११४७ वाला लेख कल्पित हैं फिर भी लेख छपाने वालों ने इतना ध्यान भी नहीं रक्खा कि शिलालेख के समय के साथ जिनशेखरसूरि का अस्तित्व था या नहीं?

अस्तु! अब हमारे जिनशेखरसूरि का समय देखते हैं तो वह वि. सं. ११४७ तक तो सूरि-आचार्य ही नहीं हुए थे, क्योंकि जिनवल्लभसूरि का देहान्त वि. सं. ११६७ में हुआ, तत्पश्चात् उनके पट्टधर सं. ११६९ जिनदत्त और १२०५ में जिनशेखर आचार्य हुए तो फिर ११४७ सम्वत् में जिनशेखरसूरि का अस्तित्व कैसे सिद्ध हो सकता है?

खरतर शब्द खास कर जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण ही पैदा हुआ था

और जिनशेखरसूरि और जिनदत्तसूरि के परस्पर में खूब क्लेश चलता था। ऐसी स्थिति में जिनशेखरसूरि खरतर शब्द को गच्छ के रुप में मान ले या लिख दे यह सर्वथा असम्भव है। उन्होंने तो अपने गच्छ का नाम ही रुद्रपाली गच्छ रक्खा था। इस विषय में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी का उल्लेख हम उपर लिख आए हैं। अत: इस लेख के लिए अब हम दावे के साथ यह नि:शंकतया कह सकते हैं कि उक्त ११४७ सम्वत् का शिलालेख[१] किसी खरतराऽनुयायी ने जाली (कल्पित) छपा दिया है, नहीं तो यदि खरतर भाई आज भी उस मूर्ति का दर्शन करवा दें तो इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है।

भला ! यह समझ में नहीं आता है कि खरतर लोग खरतर शब्द को प्राचीन बनाने में इतना आकाश पाताल एक न कर यदि अर्वाचीन ही मान लें तो क्या हर्ज है ?

जिनदत्तसूरि के पहले खरतर शब्द इनके किन्हीं आचार्यों ने नहीं माना था। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का शिलालेख हम पूर्व लिख आये हैं। वहाँ तक तो खरतरगच्छ मंडन जिनदत्तसूरि को ही लिखा मिलता है। इतना ही क्यों पर उसी खण्ड के लेखांक २३८५ में तो जिनदत्तसूरि को खरतरगच्छवतंस भी लिखा है, अत: खरतरमत के आदि पुरुष जिनदत्तसूरि ही थे। पर विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में तपागच्छ और खरतरों के आपस में वाद-विवाद होने से खरतरों ने देखा कि जिनेश्वरसूरि के लिये पाटण जाने का तो प्रमाण मिलता ही है इसके साथ शास्त्रार्थ की विजय में '**खरतर बिरुद**' की कल्पना कर ली जाय तो नौ अंग वृत्तिकार अभयदेवसूरि भी खरतर गच्छ में माने जायेंगे और इनकी बनाई नौअंग की टीका सर्वमान्य है। अत: सर्व गच्छ हमारे आधीन रहेंगे। बस इसी हेतु से इन लोगों ने कल्पित ढांचा खड़ा कर दिया, पर अन्त में वह कहाँ तक सच्चा रह सकता है। जब सत्य की शोध की जाती है तो असत्य की कलई खुल ही जाती है।

---

१. **श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर वालों द्वारा मालूम हुआ कि वि. सं. ११४७ वाली मूर्ति पर का लेख दब गया है। अहा-क्या बात है-आठ सौ वर्षों का लेख लेते समय तक तो स्पष्ट बंचता था बाद केवल ३-४ वर्षों में ही दब गया, यह आश्चर्य की बात है। नाहटाजी ने भीनासर में भी वि. सं. ११८१ की मूर्ति पर शिलालेख में 'खरतर गच्छ' का नाम बतलाया है। इसी की शोध के लिये एक आदमी भेजा गया, पर वह लेख स्पष्ट नहीं बंचता है, केवल अनुमान से ही ११८१ मान लिया है। खैर इसी प्रकार बारहवीं शताब्दी का यह हाल है तब हम चाहते हैं जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागर और अभयदेवसूरि के समय के प्रमाण.....**

खरतर शब्द को प्राचीन प्रमाणित करने वाला एक लेख खरतरों को फिर अनायास मिल गया है और वह पल्ह कवि कृत खरतर पट्टावली का है। जैसा कि–

देव सूरि पहु नेमि वहु, वहु गुणिहि पसिद्धउ।
उज्योयणु तह वद्धमाणु, खरतर वर लद्धउ॥

इस लेख के कवि ने लिखा है कि 'खरतर बिरुद' प्राप्त करने वाले जिनेश्वरसूरि नहीं किन्तु उद्योतनसूरि और वर्धमानसूरि हैं। जिन लोगों का कहना था कि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में दुर्लभराज ने खरतरबिरुद इनायत किया था यह तो बिलकुल मिथ्या ठहरता है। क्योंकि जिनेश्वरसूरि के गुरु वर्धमानसूरि और वर्धमानसूरि के गुरु उद्योतनसूरि थे। यदि उद्योतनसूरि को ही ''खरतर बिरुद'' मिल गया था तो फिर जिनेश्वरसूरि के लिए शास्त्रार्थ की विजय में खरतर बिरुद मिला कहना तो स्वयं असत्य साबित होता है, पर यह विषय भी विचारनीय हैं क्योंकि पल्ह कवि कृत खरतर पट्टावली और उनका खुद का समय भी विक्रम की बारहवीं शताब्दी में जिनदत्तसूरि के समकालीन है और यह कविता भी जिनदत्तसूरि को ही लक्ष्य में रख कर बनाई गई है। फिर भी कवि का हृदय ही संकीर्ण था क्योंकि उसने खरतर की महत्ता बताने को खरतरबिरुद का संयोग श्रीउद्योतनसूरि से ही किया। अच्छा तो यह होता कि कवि श्रीमहावीर प्रभु के पट्टधर सौधर्माचार्य को ही खरतर बिरुद से विभूषित कर देता। और ऐसा करने से सारा झगड़ा–बखेड़ा स्वयं मिट जाता और जैनसमाज सब का सब खरतरगच्छ का उपासक ही बन जाता! वास्तव में तो कविता का आशय जिनदत्तसूरि को ही खरतर कहने का था। यदि ऐसा न होता तो उद्योतनसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि और जिनपतिसूरि तक के अनेक ग्रन्थ और शिलालेख मिलते हैं जिनमें कतिपय का उल्लेख तो हम उपर कर आये हैं कि जिनेश्वर के बाद ३०० वर्षों तक तो खरतर शब्द का किसी ने भी उल्लेख नहीं किया और एक अप्रसिद्ध अपभ्रंश भाषा के पल्ह नामक कवि ने उद्योतनसूरि को खरतर बिरुदधारक लिख दिया और खरतरों का उस पर यकायक बिना सोचे समझे विश्वास हो जाना यह सभ्य समाज को सन्तोषप्रद नहीं हो सकता।

कई अज्ञ लोगों का यह भी कथन है कि पाटण के राजा दुर्लभ की राज–सभा में आचार्य जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों के बीच शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें 'खरा' रहने वालों को 'खरतर' और हार जाने वालों को 'कँवला' कहा। और वह खरतर तथा कँवला शब्द आज भी मौजूद हैं।

पूर्वोक्त बात कहने वालों का अभिगम शायद यह हो कि यह शास्त्रार्थ केवल उपकेशगच्छ वालों के साथ ही हुआ होगा। कारण कँवला आजकल उपकेशगच्छ वालों को ही कहते हैं। इस शास्त्रार्थ के समय पाटण में अनेकाचार्यों के उपाश्रय और वहाँ बहुत आचार्य व साधु रहा करते थे, जिनमें सर्वाऽग्रणी केवल उपकेशगच्छ वालों को ही माना जाता हो और शास्त्रार्थ भी उन्हीं के ही साथ हुआ हो, खैर यदि थोड़ी देर के लिये खरतरों का कहना मान भी लिया जाय कि दुर्लभ राजा की राजसभा में शास्त्रार्थ हुआ और खरा रहने वाले खरतर और हार जाने वाले कँवला कहलाये, पर यह बात बुद्धिगम्य तो होनी चाहिए ? कारण दुर्लभ राजा स्वयं बड़ा भारी विद्वान् एवं असाधारण पुरुष था, संस्कृत साहित्य का प्रौढ़ पण्डित एवं पूर्ण प्रेमी था और यह शास्त्रार्थ भी विद्वानों का था, फिर जय और पराजय के उपलक्ष्य में बिरुद देने को उस समय के कोषों में कोई ऐसा सुन्दर और शुद्ध शब्द नहीं था जो इन ग्रामीण भाषा के अर्थशून्य असभ्य शब्दों को जय के लिए खरतर और पराजय के लिये कँवला जैसे शब्दों को उपहार स्वरुप में स्थान मिला ? परन्तु वस्तुतः देखा जाय तो यह बात ऐसी नहीं है। क्योंकि कुदरत का नियम है कि कोई भी विरुद्ध अर्थवाची प्रतिपक्षी दो शब्द बराबर विरुद्ध अर्थ में ही आते हैं। जैसे उदाहरणार्थ देखिये :-

धर्म-अधर्म	कठोर-कोमल	दिन-रात
सत्य-असत्य	करड़ा-कँवला	मीठा-खारा
जय-पराजय	दया-निर्दयी	लोक-अलोक
खरा-खोटा	सुख-दुःख	भला-बुरा

अब जरा सोचना चाहिये कि 'खरा का प्रतिपक्षी शब्द' खोटा होना चाहिये या कँवला ? खोटा का अर्थ होता है झूठा (असत्य) और कँवला का अर्थ होता है नरम (कोमल)। जब कँवला का अर्थ कोमल है तो उसका प्रतिपक्षी ''करड़ा'' शब्द जिसका अर्थ कठोर होता है, यह उपयुक्त है। हाँ ! लौकिक में 'खरतरा' शब्द जरुर विशेष कठोरता का द्योतक हो सकता है परन्तु 'खरा' शब्द नहीं, जब खरा शब्द से यहाँ कठोरता अर्थ न ले और सच्चा यह अर्थ लिया जाय तो यौगिक शब्द 'खरतर' में भी 'खरातर' ऐसा होना चाहिए और उसका प्रतिपक्षी 'खोटा' याने ''खोटातर'' ही होना चाहिए, पर 'कँवला' नहीं। खर का असली अर्थ उग्र याने तेज, तीक्ष्ण, कठोर है न कि सत्य (सच्चा)। यदि इसका अर्थ थोड़ी देर के लिए कठोर भी मान लें तो फिर आपका मनगढ़न्त आशाद्रुम अकाल ही में उखड़

जाता है, क्योंकि इससे तो लौकिक में यही प्रसिद्ध होगा कि ''खरतर'' अर्थात् तेज प्रकृति, अशान्त स्वभाव वाला और कँवला कोमल प्रकृति, शान्तस्वभाव वाला। वास्तव में यही अर्थ ले के इन दोनों शब्दों का निर्माण हुआ है जिसे हम आगे चलकर बतला देंगे। पहले एक सन्दिग्ध सवाल फिर उठता है और वह है कि इस ग्रामीण शब्द के साथ अतिशय अर्थ के ज्ञापक तरप् प्रत्यय का संयोग करना, विशेष आश्चर्य तो इस बात का है कि जो महानुभाव शुद्ध प्रत्यय लगा सकते हों वे इन अशुद्ध शब्दों को भरी राजसभा में पण्डित मण्डली के समक्ष हार जीत के उपहार स्वरुप कैसे दे सकते हैं ? अतः सभ्य समाज में यह थोथी कल्पना स्वयं गन्धर्व नगर लेखा के समान भ्रांति का हेतु सिद्ध होता है।

अब हम उपसंहार स्वरुप इस बात को वास्तविकतया निर्णीत कर जल्दी ही लेखनी को विश्राम देंगे। वह यह है कि खरतर और कँवला जय पराजय के द्योतक नहीं पर आपसी द्वेष के हेतु-भूत हैं। कारण यह है कि उपकेशगच्छीय साधुओं का और चन्द्रकुलीय साधुओं का विहार क्षेत्र प्रायः एक ही था। जब भगवान् महावीर के पांच छः कल्याणकादि का वाद-विवाद चल रहा था, तब जिनदत्तसूरि की कठोर प्रकृति के कारण लोग उन्हें खरतर-खरतर कहा करते थे और उपकेशगच्छीय लोग इस वाद-विवाद में सम्मिलित नहीं होते थे, अतः इन्हें कँवले-कँवले कहते थे। खरतरों ने इस शब्द को कुछ वर्षों के बाद गच्छ के रुप में परिणत कर दिया और कँवलो ने कँवला शब्द को कतई काम में नहीं लिया। आज तक भी उपकेशगच्छ के आचार्यों से कराई हुई प्रतिष्ठा के शिलालेख व ग्रन्थों में कहीं केवलगच्छ का प्रयोग नहीं हुआ है। जहाँ-तहाँ उपकेशगच्छ का ही उल्लेख नजर आता है।

खरतर शब्द की उत्पत्ति किस कारण, कब और कैसे हुई इस विषय में हमने जिनेश्वरसूरि से लगा कर जिनपतिसूरि तक के ग्रन्थों एवं शिलालेखों के उदाहरण देकर यह परिस्फुट कर दिया है कि खरतर शब्द का प्रादुर्भाव उद्योतनसूरि, वर्धमानसूरि और जिनेश्वरसूरि से नहीं पर जिनदत्तसूरि से ही हुआ और यह भी कोई मान, महत्ता या बिरुद और गच्छ के रुप में नहीं, किन्तु खास कर जिनदत्तसूरि के स्वभाव के कारण ही हुआ है। इस विषय में मेरा और भी अभ्यास चालु है ज्यों ज्यों मुझे प्रमाण मिलता जायगा त्यों मैं आप श्रीमानों की सेवा में उपस्थित करता रहूँगा।

अन्त में खरतरगच्छीय विद्वद् समाज से निवेदन करुँगा कि आप इस छोटी सी किताब को आद्योपान्त ध्यानपूर्वक पढ़ें। यदि मेरी ओर से किसी प्रकार की

भूल हुई हो तो आप सप्रमाण सूचना करें कि उसका मैं द्वितीयावृत्ति में ठीक सुधार करवा दूँ। यदि इसके उत्तर में कोई सज्जन किताब लिखना चाहें तो भी कोई हर्ज नहीं है क्योंकि ऐसे विषय की ज्यों ज्यों अधिक चर्चा की जाय त्यों त्यों इसमें विशेष तथ्य प्राप्त होता जायगा और आखिर सत्य अपना प्रकाश किये बिना कदापि नहीं रहेगा, पर साथ में यह बात भी लक्ष्य बाहर न रहे कि आज जमाना सभ्यता का है, विद्वद् समाज में प्रमाणों का प्रेम है सभ्यता एवं सत्यता की ही कीमत है। अतः लेख सभ्यतापूर्वक ही लिखना चाहिये इत्यालम्।

इति खरतरमतोत्पत्ति भाग पहला
समाप्तम्

जैन इतिहास ज्ञानभानुकिरण नं. २३

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः

खरतरमतोत्पत्ति-भाग दूसरा

लेखक
इतिहासप्रेमी मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक
श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला
मु. फलौदी (मारवाड़)

ओसवाल संवत् २३९६

वीर संवत् २४६६ (वि. सं. १९९६) ई. सं. १९३९

प्रथमावृत्ति
५००

मूल्य
दो आना

दो शब्द

खरतरमतोत्पत्ति भाग पहले नामक पुस्तक में खरतरमत की उत्पत्ति जो उत्सूत्र से हुई है जिसके कतिपय प्रमाण तथा जिनेश्वरसूरि और अभयदेवसूरि खर-तर नहीं पर चन्द्रकुल की परम्परा में हुए, इस विषय में अभयदेवसूरि की टीकाओं के प्रमाण उद्धृत कर इस विषय को स्पष्ट कर समझा दिया था। बाद में जो प्रमाण मिले हैं उनको इस दूसरे भाग में उद्धृत करके और भी साबित कर दिया है कि जिनेश्वरसूरि पाटण पधारे थे, पर वे न गये राजसभा में, न हुआ चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ और न दिया राजा ने खरतर बिरुद इत्यादि।

पाठको ! आप इन दोनों भागों को आद्योपान्त पढोगे तो आपको स्वयं बोध हो जायगा कि खरतरों ने कल्पित चित्र बना कर उसके बीच मिथ्या लेख लिख कर अपने पूर्वजों से चली आई कलहवृत्ति का किस प्रकार पोषण किया है।

खैर ! अब आगे तीसरा भाग भी आपकी सेवा में शीघ्र ही उपस्थित कर दूँगा। कुछ समय के लिये आप धैर्य रक्खें।

– **लेखक**

श्री जैन इतिहास ज्ञानभानुकिरण नं. २३
श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः

खरतरमतोत्पत्ति–भाग दूसरा

खरतरमतोत्पत्ति के विषय प्रमाणों के पूर्व मुझे यह बतला देना चाहिये कि खरतरमतवाले खरतर शब्द की उत्पत्ति किस प्रकार मानते हैं? जैसे कि:–

१. जिनेश्वरसूरि के पाटण जाने के विषय में–

१. कई खरतर कहते हैं कि वर्धमानसूरि अपने शिष्य जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि आदि १८ साधुओं के साथ पाटण गये थे।[१]

२. कई खरतर कहते हैं कि वर्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि को आज्ञा दी थी कि तुम पाटण आओ।[२]

३. खरतर पट्टावली बताती है कि वर्धमानसूरि ने आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा (वि. सं. १०८८) करवाने के बाद जिनेश्वर और बुद्धिसागर दो ब्राह्मणों को दीक्षा दी थी, बाद वर्धमानसूरि का देहान्त हुआ और जिनेश्वरसूरि पाटण गये।[३]

---

१. **अन्यदा श्रीवर्धमानसूरयः श्रीजिनेश्वरबुद्धिसागराद्यष्टादशसाधुभिः परिवृता भूमंडले विहरंतः क्रमेण गुर्जरराष्ट्र श्रीपत्तननगरे गतवंतः इत्यादि।**

''षट्स्थान प्रकरण, पृ. २''

२. **वच्छा ! गच्छह अणहिल्लपट्टणे सययं जाओ तत्थ।**
सुविहिअ जइप्पवेसं चेइय मुणिणो निवारिंति॥

''रुद्रपाली संघतिलकसूरि कृत दर्शनसप्ततिका''

एक ग्रन्थ में तो खरतर वर्धमानादि १८ साधुओं को पाटण जाना बतलाते हैं तब दूसरे ग्रन्थ में वर्धमानसूरि जिनेश्वरसूरि को पाटण जाने की आज्ञा देते हैं। बलिहारी है खरतरों के प्रमाण एवं लेखकों की।

'लेखक'

३. **विमलेन हठात् चिन्तितं सर्वोऽप्ययं गिरिर्मया स्वर्णमुद्रया गृहीष्यते। द्विजैरचिन्ति तीर्थमस्मदीयं सर्वं यास्यतीति विचिन्त्य स्तोकैव धरादत्ता। तत्र महान् श्रीआदिनाथ प्रासादः कारिताः।... अथैकदा श्रीसूरयः सरस्वतीपत्तने जग्मुः। शालायां स्थिताः सर्वशिष्यान् तर्कं पाठयन्ति। तदा जिनेश्वर बुद्धिसागरौ विप्रौ श्रुत्वा तर्कशालायां समेतौ... प्रतिबुद्धौ द्वाभ्यामपि दीक्षा गृहीता। पठितानि सम्यग् शास्त्राणि। गुरुभिः पट्टे स्थापितः जातः श्री जिनेश्वरसूरिः।**

''खरतर पट्टावली, पृष्ठ ४३''

४. कई कहते हैं कि जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि अपने शिष्य परिवार के साथ पाटण गये थे।[१]

५. कई खरतर कहते हैं कि केवल जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि ही पाटण पधारे थे।[२]

६. कई खरतर यह भी कहते हैं कि वर्धमानसूरि जिनेश्वरसूरि के साथ पाटण गये वहाँ वर्धमानसूरि का स्वर्गवास हो गया था, बाद जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ हुआ था।[३]

२. जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ किसकी सभा में

१. कई खरतर कहते हैं कि राजा दुर्लभ की सभा में शास्त्रार्थ हुआ।[४]

२. कई खरतर राजा दुर्लभ (भीम) की सभा में शास्त्रार्थ हुआ कहते हैं।[५]

यह खरतर पट्टावली बताती है कि वर्धमानसूरि ने आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाने के बाद सरस्वती पाटण जाकर जिनेश्वर और बुद्धिसागर को दीक्षा दी। जबकि आबू के मंदिरों की प्रतिष्ठा का समय वि. सं. १०८८ का बताया जाता है। अतः जिनेश्वरसूरि की दीक्षा सं. १०८८ के बाद हुई होगी और उसके बाद जिनेश्वरसूरि पाटण गये होंगे ? इस पट्टावली से यह सिद्ध होता है कि या तो वर्धमानसूरि द्वारा आबू के मंदिर की प्रतिष्ठा १०८८ में करवाना गलत है या जिनेश्वर का पाटण जाना गलत है अथवा पट्टावली कल्पित है।

'लेखक'

१. **विहरन्तौ शनैः श्रीमत्पत्तनं प्रापतुर्मुदा।**
सद्गीतार्थपरिवारौ तत्र भ्रमंतौ गृहे गृहे ॥

''प्र. च. अभयदेवसूरि प्रबन्ध''

२. **व्याजहरथ देवास्मद् गृहे जैनमुनी उभौ**

''प्र. च. अभयदेव प्रबन्ध''

श्रीजिनेश्वरसूरिः स च बुद्धिसागरेण सार्धं मरुदेशाद् विहारं कृत्वा अनुक्रमेण गुर्जरदेशे अणहल्लपुरपत्तने समागतः

''खरतर पट्टावली, पृष्ठ ११''

३. **श्रीगुर्ज्जरइ अणहिल्लपाटणि आवी वर्धमानसूरि स्वर्गे हुआ तेना शिष्य श्री जिनेश्वरसूरि पाटणिराज श्रीदुर्लभनी सभाई इत्यादि**

''सिद्धान्त मग्नसागर, पृष्ठ ९४''

४. **दुर्लभ राजा सभायां।**

''खरतर पट्टावली, पृष्ठ १०''

५. **यति रामलालजी ने महाजनवंशमुक्तावली पृष्ठ १६७ पर लिखा है कि राजा दुर्लभ (भीम) की सभा में...**
वीरपुत्र आनन्दसागरजी ने कल्पसूत्र के हिन्दी अनुवाद में राजा दुर्लभ (भीम) ही लिखा है

३. जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ किसके साथ हुआ

१. कई खरतर कहते हैं कि शास्त्रार्थ सूराचार्य के साथ हुआ।[१]

२. कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ कुर्च्चपुरागच्छवालों के साथ हुआ।[२]

३. कई कहते हैं कि उपकेशगच्छ वालों के साथ शास्त्रार्थ हुआ।[३]

४. कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ चैत्यवासियों के साथ हुआ[४]

५. कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ ८४ मठपतियों के साथ हुआ।[५]

४. जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ किस विषय का था ?

१. कई खरतर कहते हैं कि शास्त्रार्थ कांसीपात्र का था।[६]

२. कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ लिंग विषय का था।[७]

---

१. तत्र च जिनगृह निवास लम्पटाः चैत्यवासी सूराचार्याः आसन्... सूराचार्यैः वसतिवास प्रतिषेधकं जिनगृहवाससमर्थकं स्वकपोलकल्पित शास्त्रप्रमाणं दर्शितम्।

''षट् स्थान प्रकरण प्रस्तावना, पृष्ठ १''

जिनेश्वरसूरि के समय सूराचार्यों को सूरिपद तो क्या पर जन्म या दीक्षा भी शायद ही हुई हो, क्योंकि वि. सं. ११२० से ११२८ में अभयदेवसूरि ने सूराचार्य के गुरु द्रोणाचार्य के पास अपनी टीकाओं का संशोधन कराया था।

२. श्रीजिनेश्वरसूरि पाटणिराज श्रीदुर्लभनी सभाइं कुर्चपुरा गच्छीय चैत्यवासी साथी कांस्य पात्रनी चर्चा की।

''सिद्धान्त मग., भाग २, वृ. ९४''

३. श्रीजिनेश्वरसूरि का अणहिल्लपुरपट्टण में चैत्यवासी शिथिलाचारी उपकेशगच्छियों के साथ राजा दुर्लभ (भीम) की राजसभा में शास्त्रार्थ हुआ इत्यादि।

'महाजनवंश मुक्तावली, पृष्ठ १६८'

नोट - उपकेशगच्छ आचार्यों के पास जिनेश्वरसूरि पढ़े थे तो क्या उन्होंने कृतघ्नी हो अपने ज्ञानगुरु से शास्त्रार्थ किया ? यह कदापि संभव नहीं हो सकता है, यह केवल द्वेष के मारे कँवला और खरतर शब्द पर ही कल्पना की गई है।

'लेखक'

४. तथा चैत्यवासिनो हि पराजया... चैत्यवासिभिः सह विवादे।

''ख. प., पृष्ठ २२''

५. संवत १०८० दुर्लभराजसभायां ८४ मठ्ठपतेन जित्वा प्राप्त खरतरबिरुदः।

'ख. प., पृष्ठ १०'

६. खरतर मुनि मग्नसागर अपने सिद्धान्त मग्नसागर पृष्ठ ९४ पर लिखते हैं कि जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ कांसीपात्र का था।

७. दुर्लभ राजसभायां लिंगविवादे चैत्यवासिभिः सहविवादे श्रीजिनेश्वरसूरिणा जित्वा।

'ख. प. प्र. प., पृष्ठ २७२'

३. कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ चैत्यवास वसतिवास का था।[१]

४. कई खरतर कहते हैं कि शास्त्रार्थ साध्वाचार का था।

५. जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का समय

१. कई खरतर जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का समय वि. सं. १०२४ का बतलाते हैं।

२. कई खरतर शास्त्रार्थ का समय वि. सं. १०८० का बतलाते हैं।

३. कई खरतर शास्त्रार्थ का समय वर्धमान के स्वर्गवास के बाद का बतलाते हैं।

४. कई खरतर शास्त्रार्थ का समय आबू के मंदिरों की प्रतिष्ठा (१०८८) के बाद का बतलाते हैं।[२]

६. जिनेश्वरसूरि को बिरुद

१. कई खरतर कहते हैं कि राजा ने खरतर बिरुद दिया।[३]

२. कई कहते हैं कि बिरुद तो 'खरा' दिया था पर बाद में खरतर हो गये।[४]

३. कई कहते हैं कि खरा रहने वाले खरतर तब हार जाने वाले को कँवला कहा।[५]

४. कई कहते हैं कि हारने वालों को कँवला नहीं पर जब राजा ने खरा कहा तब जिनेश्वरसूरि ने कहा कि हम कोमल हैं।[६]

---

१. सूराचार्यैः वसतिवास प्रतिषेधकं जिनगृहवाससमर्थकं स्वकपोलकल्पितशास्त्रप्रमाणं दर्शितम्... वसतिवासप्रदर्शकं जिनगृह-निवास-निषेधकं च अनेक प्रमाण संदर्भ दर्शयित्वा।
'षट्स्थानिक प्रकरण प्रस्तावना, पृष्ठ २'

२. साध्वाचार पत्राणि मुक्तानि, तदानीं गुरुभिरुक्तम्।
ख. प., पृष्ठ २२
नोट - अर्वाचीन खरतरों ने यह बात केवल मनःकल्पना से घड़ निकाली है जो में आगे चलकर इसी लेख में साबित कर दूंगा।

- शास्त्रार्थ के समय के लिये नं. १, २, ३, ४ के प्रमाण आगे चलकर इसी किताब में दिये गये हैं। अतः पाठक वहाँ से देख लें।

३. दुर्लभ राज सभायां ८४ मठपतीन् जित्वा प्राप्त-खरतर-बिरुदः।
ख. प., पृष्ठ १०

४. जिनेश्वरसूरिमुद्दिश्य 'अतिखराः'
ख. प., पृष्ठ २२

५. ततः खरतरबिरुदं लब्धम्। तथा चैत्यवासिनो हि पराजय प्रापणात् 'कँवला'
''ख. प., पृष्ठ २२''

६. यूयं 'खरतराः इति सत्यवादिनः। गुरुभिरुक्तमेते कोमलाः इति।'

५. कई कहते हैं कि राजा ने बिरुद तो नहीं दिया पर केवल इतना ही कहा कि ये खरा-बस इसको ही खरतर बिरुद समझ लिया गया है।[१]

७. क्या जिनेश्वरसूरि के पूर्व भी खरतर थे ?

१. कई खरतर कहते हैं कि जिनेश्वरसूरि खरतर थे।

२. कई खरतर कहते हैं कि उद्योतनसूरि भी खरतर थे।

३. कई खरतर कहते हैं कि वर्धमानसूरि भी खरतर थे।

४. कई खरतर कहते हैं कि सौधर्मस्वामि भी खरतर थे।

५. कई खरतर कहते हैं कि गौतमस्वामि भी खरतर थे।[२]

उपरोक्त खरतर मतानुयायियों के पृथक् पृथक् लेखों एवं मान्यताओं से इतना तो सहज ही में जाना जा सकता है कि खरतरों ने केवल खरतर बिरुद की एक कपोल कल्पित कल्पना करके बिचारे भद्रिक जीवों को बड़ा भारी धोखा दिया है। वास्तव में खरतरों को अभी तक यह पता नहीं है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति क्यों, कब और किस व्यक्ति द्वारा हुई ? यदि शास्त्रार्थ की विजय में खरतर शब्द की उत्पत्ति हुई होती तो इस महत्त्वपूर्ण बिरुद की इस प्रकार विडम्बना नहीं होती जो आज खरतर लोग कर रहे हैं। जिन आचार्यों के लिए आज खरतरे खरतर होने को कह रहे हैं पर न तो वे थे खरतर और न उन्होंने खरतर शब्द कानों से भी सुना था। इतना ही क्यों पर विद्वानों का तो यहां तक खयाल है कि पूर्वाचार्यों पर खरत्व का कलंक लगाने वाले ही सच्चे खरतर हैं। अस्तु।

खरतर मत की उत्पत्ति के लिए खरतरों की भिन्न भिन्न मान्यता का परिचय करवाने के बाद अब में खर-तरमतोत्पत्ति के विषय में यह बतला देना चाहता हूँ कि खरतर मत की उत्पत्ति किसी राजा के दिये हुए बिरुद से हुई या किसी आचार्य की खर (कठोर) प्रकृति के कारण हुई है ?

इस विषय के निर्णय के लिए मैंने 'खरतरमतोत्पत्ति' नामक भाग पहला में

---

१. **श्रीजिनेश्वरसूरि पाटणिराज श्रीदुर्लभनी सभाइं कुर्च्चपुरागच्छीय चैत्यवासी साथी कांस्यपात्रनी चर्चा कीधी त्यों श्रीदशवैकालिकनी चर्चा गाथा कही ने चेत्यवासी ने जीत्या तिबारइं राज श्रीदुर्लभ कहइ ''ऐ आचार्य शास्त्रानुसारे खरुं बोल्या'' ते थकी वि. सं. १०८० वर्षे श्रीजिनेश्वरसूरि खरतर बिरुद लीधो।**

''सिद्धान्त मग्नसागर, पृष्ठ ९४''

२. **नं. १, २, ३, ४, ५ के प्रमाण इसी पुस्तक में अन्यत्र दिये जायेंगे। अतः पाठक वहां से पढ़ लें।**

पुष्कल प्रमाणों द्वारा यह साबित कर दिया है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की खर प्रकृति की वजह से हुई है। यही कारण है कि उस समय जिनदत्तसूरि खरतर शब्द से सख्त नाराज रहते थे। कारण, यह खरतर शब्द उनके लिये अपमान सूचक था।

प्रथम भाग लिखने के बाद भी मैं इस विषय का अन्वेषण करता ही रहा, अतः मुझे और भी कई प्रमाण प्राप्त हुए हैं, जिनको मैं आज आप सज्जनों की सेवा में उपस्थित कर देना समुचित समझता हूँ।

खरतरमतोत्पत्ति में खरतर लोग विशेष कारण चैत्यवासियों का ही बतलाते हैं। अतः पहले मैं थोड़ा सा चैत्यवासियों का परिचय करवा देता हूँ।

चैत्यवास–चैत्य यानि मन्दिर और उसमें ठहरना (वास) अर्थात् मंदिर में ठहरना उसको चैत्यवास कहा जाता है। चैत्य की व्यवस्था दो प्रकार से समझी जाती है, एक तो चैत्य के सब कम्पाउन्ड को चैत्य कहते हैं और दूसरे चैत्य में मूलगम्भारा हैं कि जिसमें भगवान की मूर्ति स्थापित की जाय उसको भी चैत्य कहा जाता है।

चैत्य के कम्पाउन्ड में ऐसे भी मकान होते हैं कि जिसमें साधु और गृहस्थ ठहर सकते हैं जैसे भोयणी, पानसर, जघड़िया, जैतारन, कापरड़ा और फलौदी के मन्दिरों में आज भी ऐसे मकान है कि जहाँ साधु ठहर सकते हैं।

चैत्य के मूलगम्भारा के अलावा रंगमण्डपादि स्थान हैं, उसमें भी साधु धर्मोपदेश दे सकते हैं, अतः एवं मकान की विशालता हो तो साधु ठहर भी सकते हैं, कारण कि जब तीर्थंकरदेव की विद्यमानता के समय भी साधु उनके समीप रहते थे और आहार पानी भी वहीं करते थे। अतः चैत्य में रहने से नुकसान नहीं पर कई प्रकार के फायदे ही थे क्योंकि साधु के चैत्य में ठहरने से श्रावकों को देवगुरु की भक्ति उपासना या व्याख्यान श्रवणादि में अच्छा सुभीता रहता था। जब वन उपवन एवं जंगलों में चैत्य थे उस समय भी साधु चैत्यों में ही ठहरते थे, बाद साधुओं में वसति की शुरुआत हुई तब भी वे चैत्य में ठहरते थे[१] तथा श्रावकों

---

१ **उस समय सब धर्म वाले प्रायः धर्मस्थानों (चैत्य) में ठहर कर धर्मोपदेश दिया करते थे जैसे बौद्ध भिक्षु बौधचैत्यों में ठहरकर धर्मोपदेश देते थे, बाद जब से दिगम्बर मत चला तो उसके साधु भी चैत्यों में धर्मोपदेश दिया करते थे। इतना ही क्यों पर दिगम्बरों के चैत्यों में तो आज भी व्याख्यान एवं स्वाध्याय होता है इसी प्रकार श्वेताम्बर साधु भी अपने चैत्यों में व्याख्यान देते हो तो असम्भव नहीं है। श्वेताम्बर समाज में**

के घरों में घरदेरासर थे और वे सब उन घरों में ही रहते थे। अतः चैत्यों में साधु ठहरें तो कोई हर्जा नहीं था तथा सम्राट सम्प्रति ने मेदिनी मंदिरों से मंडित की थी। उन्होंने भी चैत्य के समीप एवं चैत्य के अन्दर ऐसे स्थान बना दिये कि जहाँ साधु ठहर सकें और उन स्थानों का नाम उपाश्रय रक्खा था वह भी यही सूचित करते हैं कि वे स्थान चैत्य के समीप थे।

जब तक चैत्यवासी साधुओं का आचार-विचार ठीक जिनाज्ञानुसार रहा वहाँ तक तो अर्थात् आचार्यवज्रस्वामि एवं स्कन्दिलाचार्य के समय तक तो प्रायः किसी ने भी चैत्यवास के विषय विरोध का एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया था, अतः चैत्यवास सकल श्रीसंघ सम्मत था।

हां, दुष्काल की भयंकरता ने जैनश्रमणों पर अपना प्रभाव डाला और उस विकट समय में जैन साधुओं में व्यक्तिगत कुछ शिथिलता ने प्रवेश किया भी हो तो यह असम्भव नहीं है और इस विषय का एक प्रमाण प्रभाविक चरित्र में मिलता है कि कोरंटपुर के महावीर मंदिर में एक देवचन्द्रोपाध्याय[१] रहता था और वह चैत्य

आज भी किसीको छोटी बड़ी दीक्षा देनी हो तो चैत्य में ही दी जाती है। उपधान की माला तथा श्री संघ माला की क्रिया चैत्य में ही कराई जाती हैं।

हाँ, जब चैत्यवास में विकृति हो गई, गृहस्थों के करने योग्य कार्य अर्थात् चैत्य की व्यवस्था वे चैत्यवासी साधु स्वयं करने लग गये इस हालत में संघ का विरोध होना स्वाभाविक ही था। चैत्यवासियों को चैत्य से हटाने के बाद भविष्य का विचार कर श्रीसंघ ने यह नियम बना लिया कि अब साधुओं को चैत्य में नहीं ठहरना चाहिये। अतः श्रीसंघ की आज्ञा का पालन करते हुए आज कोई भी साधु मन्दिर में नहीं ठहरते हैं। यदि कोई अज्ञान साधु चैत्य में ठहर भी जाय तो श्रीसंघ अपना कर्तव्य समझ कर उसको फौरन चैत्य से निकाल दें।

१. अस्ति सप्तशतीदेशो, निवेशो धर्मकर्मणाम्।
यद्दानेशभिया भेजुस्ते, राजशरणं गजाः॥
तत्र कोरंटक नाम पुरमस्त्युन्नताश्रयम्।
द्विजिह्वविमुखा यत्र, विनतानन्दना जनाः॥
तत्राऽस्ति श्रीमहावीरचैत्यं श्वैत्यं दधद् दृढम्।
कैलासशैलवद्भाति, सर्वाश्रयतयाऽनया॥
उपाध्यायोऽस्ति तत्र श्रीदेवचन्द्र इति श्रुतः।
विद्वद्वृन्दशिरोरत्न, तमस्ततिहारो जने॥
आरण्यकतपस्यायां, नमस्यायां जगत्यपि।
सक्तः शक्तान्तरंगाऽरि-विजये भवतीरभूः॥
सर्वदेवप्रभु, सर्वदैव सद्ध्यानसिद्धिभृत्।

की व्यवस्था भी करता था, यह कार्य जैनसाधुओं के आचार से विरुद्ध था पर उस समय एक सर्वदेवसूरि नामक सुविहिताचार्य का वहां शुभागमन हुआ और उन्होंने देवचन्द्रोपाध्याय को हितबोध देकर उग्र विहारी बनाया इत्यादि। इस घटना का समय विक्रम की दूसरी शताब्दी के आस-पास का कहा जाता है।

चैत्यवास में शिथिलता के लिये पहला उदाहरण देवचन्द्रोपाध्याय का ही मिलता है पर उस समय सुविहितों का शासन सर्वत्र विद्यमान था कि वे कहीं पर थोड़ी बहुत शिथिलता देखते तो उनको जड़ मूल से उखेड़ देते थे। अतः उस समय को सुविहितयुग ही कहा जा सकता है।

कई ग्रन्थों में यह भी लिखा मिलता है कि वीर सं. ८८२ में चैत्यवास शुरु हुआ पर वास्तव में यह समय चैत्यवास शुरुआत का नहीं पर चैत्यवास में विकार का समय है। अतः चैत्यवासियों में शिथिलाचार का प्रवेश विक्रम की पांचवीं शताब्दी के आसपास के समय में हुआ था पर यह नहीं समझना चाहिये कि उस समय के सब चैत्यवासी शिथिलाचारी हो गये थे। क्योंकि उस समय भी बहुत चैत्यवासी आचार्य सुविहित एवं अच्छे उग्र विहारी थे और उन्हीं के लिखे हुये ग्रन्थ और पुस्तकारुढ़ किये हुए आगम आज भी प्रमाणिक माने जाते हैं।

किसी भी समाज में साधुत्व की अपेक्षा सदा काल एक से साधु नहीं रहते हैं अर्थात् सामान्य विशेष रहा ही करते हैं, जिसमें भी चैत्यवासियों का समय तो बड़ा ही विकट समय था, क्योंकि उस समय कई बार निरंतर कई वर्षों तक भयंकर दुष्काल का पड़ना तथा जैनधर्म पर विधर्मियों के संगठित आक्रमण का होना और उनके सामने खड़े कदम डट कर रहना इत्यादि उन आपत्ति काल में कई कई साधुओं में कुछ आचार शिथिलता आ भी गई हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं

सिद्धक्षेत्रे पिपासुः श्रीवारणस्याः समागमत् ॥
बहुश्रुतपरिवारो, विश्रान्तस्तत्र वासरान् ।
कांश्चित प्रबोध्य तं, चैत्यव्यवहारममोचयत् ॥
स पारमार्थिकं तीव्रं, धत्ते द्वादशधा तपः ।
उपाध्यायस्ततः सूरिपदे पूज्यैः प्रतिष्ठितः ॥

''प्रभावक चारित्र, मानदेव प्रबन्ध, पृष्ठ १९१''

भावार्थ-अेज समयमां सप्तशती देश मां कोरंटक नामनुं नगर हतुं अने त्यां महावीरनुं मंदिर हतुं जेनो कारभार उपाध्याय देवचन्द्रना अधिकारिमां हतो, तेज समये सर्वदेवसूरि नामना आचार्य विहार करता एक वार कोरंटक तरफ गया अने उपाध्याय देवचन्द्रने चैत्यनो वहीवट छोड़ावीने आचार्य पद आपी देवसूरि बनाव्या, तेज देवसूरि वृद्धदेवसूरि ना नामथी प्रसिद्ध थया इत्यादि ।

''पं. मुनि श्री कल्याणविजयजी महाराज''

है। फिर भी उस समय चैत्यवासियों का प्रभाव कम नहीं था। सकल समाज उनको पूज्य भाव से मानता था। राजा महाराज उनके परमोपासक थे। हजारों लाखों जैनेतरों को उन्होंने प्रतिबोध दे कर नये जैन बनाये थे, अनेक विषयों पर सैकड़ों ग्रन्थों का निर्माण किया था। जैनधर्म के स्तम्भ रुप अनेक मंदिरमूर्तियों की प्रतिष्ठायें भी करवाई थीं। अगर यह कह दिया जाय कि चैत्यवासियोंने जैनधर्म को उस विकट परिस्थिति में भी जीवित रक्खा तो भी अतिशयोक्ति न होगी।

चैत्यवासियों के समय की एक यह विशेषता थी कि उनका संगठन बल बड़ा ही जबर्दस्त था। उस समय कोई भी व्यक्ति स्वच्छन्दतापूर्वक कोई कार्य एवं प्ररुपणा नहीं कर सकता था। एवं चैत्यवासियों की सत्ता में कोई व्यक्ति उत्सूत्र प्ररुपणा कर अलग मत नहीं निकाल सकता था तथा किसी ने उत्सूत्र प्ररुपणा की तो उसको फौरन संघ बाहर भी कर दिया जाता था।

चैत्यवासियों के लिये सबसे पहले पुकार हरिभद्रसूरि ने की थी, आपका समय जैनपट्टावलियों के आधार से विक्रम की छठी शताब्दी का कहा जाता है और उनकी पुकार आचारशिथिलता की थी, न कि चैत्यवास की। क्योंकि हरिभद्रसूरि स्वयं चैत्यवासी थे। इतना ही क्यों पर आपने समरादित्य की कथा में यहां तक लिखा है कि साध्वीयों के उपाश्रय में जिनप्रतिमायें थीं और उस चैत्य में रही हुई साध्वीयों को केवलज्ञान भी हो गया था। अतः हरिभद्रसूरि के मत से चैत्यवास बुरा नहीं था पर चैत्यवास में जो विकार हुआ था वही बुरा था और उनकी पुकार भी उस विकार के लिये ही थी।

चैत्यवासियों के लिये दूसरी पुकार वर्धमानसूरि की थी। आपका समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी का था, आपकी यह पुकार स्वाभाविक ही थी, क्योंकि वर्धमानसूरि स्वयं चौरासी चैत्य के अधिपति एवं चैत्यवासी थे और उन्होंने चैत्यवास को छोड़ दिया तो वे चैत्यवासियों के लिये पुकार करें इसमें आश्चर्य ही क्या था ? वर्धमानसूरि ने जिनेश्वर और बुद्धिसागर नामक दो ब्राह्मणों को दीक्षा दी और उनको पाटण भेजे। उन्होंने वहां जाकर वसतिमार्ग नाम का एक नया पन्थ निकाला। इस वसतिमार्ग मत के जन्म के पूर्व प्रायः सब चैत्यवासी ही थे।

तीसरा नम्बर है जिनवल्लभसूरि का, आपका समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का था और आप भी पहले चैत्यवासी ही थे। चैत्यवास छोड़कर इन्होंने भी चैत्यवासियों की खूब ही निन्दा की। प्रमाण के लिये आपका बनाया 'संघपट्टक' नामक ग्रन्थ विद्यमान है। जिन चैत्यवासियों का बहुमान कर आचार्य अभयदेवसूरि ने अपनी टीकाओं का संशोधन करवाया था उन्हीं चैत्यवासियों की मानी हुई

त्रिलोक पूजनीय तीर्थंकरों की मूर्तियों को मांस के टुकड़ों की उपमा दे डाली, फिर भी कुदरत जिनवल्लभ के अनुकूल नहीं थी। उसने वि. सं. ११६४ आश्विन कृष्ण त्रयोदशी के दिन चित्तौड़ के किल्ले में ठहरकर भगवान महावीर के गर्भापहार नामक छठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा कर डाली, जिससे क्या चैत्यवासी और क्या सुविहित अर्थात् सकल श्रीसंघ ने जिनवल्लभ को संघ बाहर[१] कर दिया।

इतना होने पर भी चैत्यवासियों का प्रभाव कम नहीं हुआ था पर शासन की प्रभावना करने के कारण समाज उनका आदरमान पूजा सत्कार करता ही रहा। इस विषय में अधिक न लिख कर केवल इतना ही कह देना मैं उचित समझता हूं कि जैनधर्म के प्रभाविक पुरुषों के लिये वि. सं. १३३४ राजगच्छीय प्रभाचन्द्रसूरि ने एक प्रभाविक चरित्र नामक ग्रन्थ लिखा है। जिसमें आचार्य वज्रस्वामि से लेकर आचार्य हेमचन्द्रसूरि तक के प्रभाविक आचार्यों का जीवन संकलित किया है। जिसमें अधिकतर चैत्यवासी आचार्यों को ही प्रभाविक समझ कर उनकी ही प्रभाव बतलाया है। जैसे वादीवैताल शान्तिसूरि, महेन्द्रसूरि, द्रोणाचार्य, सूराचार्य, वीराचार्य और हेमचन्द्रसूरि के जीवन लिखे हैं पर नामधारी सुविहित-सुधारक एवं क्रियाउद्धारकों का प्रभाविक पुरुषों में नाम निशान तक भी नहीं हैं, क्योंकि इन लोगों ने शासन की प्रभावना नहीं की पर शासन में फूट-कुसम्प डालकर एवं नये नये मत निकालकर शासन का संगठनबल तोड़ कर शासन को अधिक से अधिक नुकसान पहुँचाया था। अतः उन्हों की गिनती प्रभावकों में नहीं पर उत्सूत्रप्ररुपकों में ही की गई थी। जरा चैत्यवासियों के साथ उनकी तुलना करके देखिये :-

१. चैत्यवासियों के शासन में जैनसमाज का संगठन था वह बाद में नहीं रहा, क्योंकि श्रीसंघ का संगठन तोड़ने का तो इन नूतन मतधारियों का खास ध्येय ही था।

२. चैत्यवासियों के समय समाज की देवगुरुधर्म पर दृढ़ श्रद्धा थी वह बाद में नहीं रही थी, क्योंकि नूतनमतधारियों ने भद्रिको के हृदय में भेदभाव डाल दिया था।

३. चैत्यवासियों के समय समाज तन, धन, इज्जत, मान, प्रतिष्ठा से समृद्धिशाली था वैसा बाद में नहीं रहा, क्योंकि मतधारियों ने समाज में फूट डाल कर उनका पुन्य हटा दिया था।

---

१. **असंविग्न समुदायेन, संविग्न समुदायः संघ बहिष्कृतः।**

''प्रवचन परिक्षा, पृष्ठ २४२''

४. चैत्यवासियों के शासन में बड़े बड़े राजा महाराजा जैनधर्मोपासक एवं जैनधर्म के अनुरागी थे वैसे बाद में नहीं रहें, क्योंकि वे मतधारी लोग तो केवल घर में फूट डालने में ही अपना गौरव समझते थे।

५. चैत्यवासियों ने अपनी सत्ता के समय जैनधर्म की उन्नति करके जैनधर्म को देदीप्यमान रक्खा था। वैसे बाद में किसी ने नहीं रक्खा। इतना ही क्यों पर बाद में तो उन लोगों ने अनेक प्रकार से उत्सूत्र भाषण कर जैनधर्म को जहाँ तहाँ झाका सा बना दिया था।

६. चैत्यवासियों ने अपने समय में जितने जैनेतरों को जैन बनाया था उनके बाद में किसीने भी उतने नहीं बनाये। इतना ही क्यों पर इस प्रकार नये नये मत निकलने से जैनों का पतन ही हुआ था।

७. चैत्यवासियों के समय जैनसमाज का जितना धनबल, मनबल एवं संख्याबल था वह बाद में नहीं रहा अर्थात् चैत्यवासियों के अस्त के साथ जैनसमाज का सूर्य भी अस्त होता ही गया।

इत्यादि चैत्यवासी युग एक जैनियों का उत्कृष्ट पुन्य वृद्धिरुप उत्कर्ष का युग था। यह तो मैंने मुख्यता की बात कही है, गौणता में कई चैत्यवासी शिथिल भी होंगे और वे अपनी चरम सीमा तक भी पहुँच गये होंगे पर ऐसे व्यक्तियों का दोष सर्व समाज पर नहीं लगाया जाता है फिर भी उत्सूत्र प्ररुपकों की बजाय तो वे हजार दर्जे अच्छे ही थे और इस प्रकार के शिथिलाचारी तो नामधारी सुविहितों में भी कम नहीं थे। उनमें भी समयान्तर पतित एवं परिग्रहधारियों की पुकारें हो रही थीं और कई बार क्रिया-उद्धार करना पड़ा था। इतना ही क्यों पर उनकी मान्यता के खिलाफ भी कई मत पन्थ निकल कर शासन को अधिक से अधिक नुकसान पहुँचाया था।

मेरे उपरोक्त लेख से पाठक समझ गये होंगे कि चैत्यवासी समाज कोई साधारण समाज नहीं पर जैनधर्म का स्तम्भ एवं जैनधर्म को जीवित रखने वाला जैनधर्म का शुभचिन्तक समाज था। जिसकी खरतरों ने भरपेट निंदा की है।

चैत्यवासियों का संक्षिप्त परिचय के पश्चात् अब मैं खरतरमतोत्पत्ति के लिये कहूँगा कि खरतर मत वाले कहते हैं कि वि. सं. १०८० में जिनेश्वरसूरि ने पाटण के राजा दुर्लभ की राजसभा में चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ कर विजय के उपलक्ष में खरतर बिरुद प्राप्त किया। यह कहाँ तक ठीक[१] है? इसके लिये सबसे

१. **प्रमाणों के लिये खरतरमतोत्पत्ति भाग पहला पढ़ना जरुरी है।**

पहले तो आप प्रभाविक चरित्र को उठा कर देखिये जिसका आचार्य प्रभाचन्द्रसूरि ने वि. सं. १३३४ में निर्माण किया है, उसको सब गच्छ वालों ने प्रमाणिक माना है, उसमें आचार्य अभयदेवसूरि के प्रबन्ध में जिनेश्वरसूरि के लिये क्या लिखा है ?

ज्ञात्वौचित्यं च सूरित्वे, स्थापितौ गुरुभिश्च तौ ।
शुद्धवासो हि सौरभ्यवासं समनुगच्छति ॥ ४२ ॥
जिनेश्वरस्ततः सूरिरपरो बुद्धिसागरः ।
नामभ्यां विश्रुतौ पूज्यैर्विहारेऽनुमतौ तदा ॥ ४३ ॥
ददे शिक्षेति तैः, श्रीमत्पत्तने चैत्यसूरिभिः ।
विघ्नं सुविहितानां, स्यात्तत्रावस्थानवारणात् ॥ ४४ ॥
युवाभ्यामपनेतव्यं, शक्त्या बुद्ध्या च तत्किल ।
यदिदानींतने काले, नास्ति प्राज्ञोभवत्समः ॥ ४५ ॥
अनुशास्तिं प्रतीच्छाव, इत्युक्त्वा गूर्जरावनौ ।
विहरन्तौ शनैः, श्रीमत्पत्तनं प्रापतुर्मुदा ॥ ४६ ॥
सद्गीतार्थपरीवारौ, तत्रभ्रान्तौ गृहे गृहे ।
विशुद्धोपाश्रयालाभाद्वाचं, सस्मरतुर्गुरोः ॥ ४७ ॥
श्रीमान् दुर्ल्लभराजाख्यस्तत्र चासीद्विशांपतिः ।
गीष्पतेरप्युपाध्यायो, नीति विक्रमशिक्षणे (णात्) ॥ ४८ ॥
श्री सोमेश्वरदेवाख्यस्तत्र, चासीत्पुरोहितः ।
तद्गेहेजग्मतुर्युग्मरूपौ, सूर्यसुताविव ॥ ४९ ॥
तद्द्वारे चक्रतुर्वेदोच्चारं, संकेतसंयुतौ ।
तीर्थं सत्यापयन्तौ च, ब्राह्मं पैत्र्यं च दैवतम् ॥ ५० ॥
चतुर्वेदीरहस्यानि, सारिणीशुद्धिपूर्वकम् ।
व्याकुर्वन्तौ स शुश्राव, देवतावसरे ततः ॥ ५१ ॥
तद्ध्वानध्याननिर्मग्नचेताः स्तम्भितवत्तदा ।
समग्रेन्द्रियचैतन्यं, श्रुत्योरेव स नीतवान् ॥ ५२ ॥
ततो भक्त्या निजं, बन्धुमाप्याय वचनामृतैः ।
आह्वानाय तयोः, प्रैषीत्प्रेक्षाप्रेक्षी द्विजेश्वरः ॥ ५३ ॥
तौ च दृष्ट्वाऽन्तरायातौ, दध्यावम्भोजभूः किमु ? ।
द्विधाभूयाद (?) आदत्त, दर्शनं शस्यदर्शनम् ॥ ५४ ॥
हित्वा भद्रासनादीनि, तद्दत्तान्यासनानि तौ ।

समुपाविशतां शुद्धस्वकम्बलनिषद्ययोः ॥ ५५ ॥
वेदोपनिषदां जैनश्रुततत्त्वगिराँतथा ।
वाग्भिः साम्यं प्रकाश्यैतावभ्यधत्तां तदाशिषम् ॥ ५६ ॥
तथाहि-''अपाणिपादो ह्यमनोग्रहीता ।
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥
स वेत्ति विश्वं, नहि तस्यास्ति वेत्ता ।
शिवो ह्यरूपी स जिनोऽवताद्वः ॥ ५७ ॥
ऊचतुश्चानयोः सम्यगवगम्यार्थसंग्रहम् ।
दययाऽभ्यधिकं जैनं, तत्रावामाद्रियावहे ॥ ५८ ॥
युवामवस्थितौ कुत्रेत्युक्ते, तेनोचतुश्च तौ ।
न कुत्रापि स्थितिश्चैत्यवासिभ्यो लभ्यते यतः ॥ ५९ ॥
चन्द्रशालां निजां चन्द्रज्योत्सनानिर्मलमानसः ।
स तयोरार्प्पयत्तत्र, तस्थतुस्सपरिच्छदौ ॥ ६० ॥
द्वाचत्वारिंशता भिक्षादोषैर्मुक्तमलोलुपौ ।
नवकोटिविशुद्धं चायातं, भैक्ष्यमभुञ्जताम् ॥ ६१ ॥
मध्याह्नेयाज्ञिकस्मार्त्त-दीक्षितानग्निहोत्रिणः ।
आहूय दर्शितौ तत्र, निर्व्यूढौ तत्परीक्षया ॥ ६२ ॥
यावद्विद्याविनोदोऽयं, विरञ्चेरिव पर्षदि ।
वर्त्तते तावदाजग्मु-र्नियुक्ताश्चैत्यमानुषाः ॥ ६३ ॥
ऊचुश्च ते झटित्येव, गम्यतां नगराद्बहिः ।
अस्मिन्न लभ्यते स्थातुं, चैत्यबाह्यसिताम्बरैः ॥ ६४ ॥
पुरोधाः प्राहनिर्णेयमिदं भूपसभान्तरे ।
इति गत्वा निजेशानामिदमाख्यातभाषितम् ॥ ६५ ॥
इत्याख्याते च तैः सर्वैः समुदायेन भूपतिः ।
वीक्षितः प्रातरायासीत्तत्र, सौवस्तिकोऽपि सः ॥ ६६ ॥
व्याजहाराथ देवास्मद्गृहे जैनमुनी उभौ ।
स्वपक्षे स्थानमप्राप्नुवन्तौ, संप्रापतुस्ततः ॥ ६७ ॥
मया च गुणगृह्यत्वात्, स्थापितावाश्रये निजे ।
भट्टपुत्रा अमीभिर्मे, प्रहिताश्चैत्यपक्षिभिः ॥ ६८ ॥
अत्रादिशत मे क्षूणं, दण्डं वाऽत्र यथार्हतम् ।

श्रुत्वेत्याह स्मितं कृत्वा, भूपालः समदर्शनः ॥ ६९ ॥
मत्पुरे गुणिनोऽकस्माद्देशान्तरत आगताः ।
वसन्तः केन वार्यन्ते ?, को दोषस्तत्र दृश्यते ? ॥ ७० ॥
अनुयुक्ताश्च ते चैवं, प्राहुः शृणु महिपते ! ।
पुरा श्रीवनराजाऽभूत्, चापोत्कटवरान्वयः ॥ ७१ ॥
स बाल्ये वर्द्धितः श्रीमद्देवचन्द्रेण सूरिणा ।
नागेन्द्रगच्छभूद्धार-प्राग्वराहोपमास्पृशा ॥ ७२ ॥
पंचासराभिधस्थान-स्थितचैत्यनिवासिना ।
पुरं स च निवेश्येदमत्र, राज्यं दधौ नवम् ॥ ७३ ॥
वनराजविहारं च, तत्रास्थापयत प्रभुं ।
कृतज्ञत्वादसौ तेषां, गुरूणामर्हणं व्यधात् ॥ ७४ ॥
व्यवस्था तत्र चाकारि, सङ्घेन नृपसाक्षिकम् ।
संप्रदायविभेदन, लाघवं न यथा भवेत् ॥ ७५ ॥
चैत्यगच्छयतिव्रातसम्मतो वसतान्मुनिः ।
नगरे मुनिभिर्नात्र, वस्तव्यं तदसम्मतैः ॥ ७६ ॥
राज्ञां व्यवस्था पूर्वेषां, पाल्या पाश्चात्यभूमिपैः ।
यदादिशसि तत्कार्य्यं, राजन्नेवं स्थिते सति ॥ ७७ ॥
राजा प्राह समाचारं, प्राग्भूपानां वयं दृढम् ।
पालयामो गुणवतां, पूजां तूल्लङ्घयेम न ॥ ७८ ॥
भवादृशां सदाचारनिष्ठानामाशिषा नृपाः ।
एधंते युष्मदीयं तद्राज्यं नात्रास्ति संशयः ॥ ७९ ॥
उपरोधेन नो यूयममीषां वसनं पुरे ।
अनुमन्यध्वमेवं च, श्रुत्वा तेऽत्र तदादधुः ॥ ८० ॥
सौवस्तिकस्ततः प्राह, स्वामिन्नेषामवस्थितौ ।
भूमिः काप्याश्रयस्यार्थं, श्रीमुखेन प्रदीयताम् ॥ ८१ ॥
तदा समाययौ तत्र, शैवदर्शनवासवः ।
ज्ञानदेवाभिधः क्रूरसमुद्रबिरुदार्हतः ॥ ८२ ॥
अभ्युत्थाय समभ्यर्च्य, निविष्टं निज आसने ।
राजा व्यजिज्ञपत्किंचिदथ (द्य प्र.) विज्ञप्यते प्रभो ! ॥ ८३ ॥
प्राप्ता जैनर्षयस्तेषामर्प्पयध्वमुपाश्रयम् ।

इत्याकर्ण्यतपस्वीन्द्रः, प्राह प्रहसिताननः ॥ ८४ ॥
गुणिनामर्चनां यूयं, कुरुध्वं विधुतैनसाम् ।
सोऽस्माकमुपदेशानां, फलपाकः श्रियां निधिः ॥ ८५ ॥
शिव एव जिनो, बाह्यत्यागात्परपदस्थितः ।
दर्शनेषु विभेदो हि, चिह्नं मिथ्यामतेरिदम् ॥ ८६ ॥
निस्तुषव्रीहिहट्टानां, मध्येऽत्र (त्रि प्र.) पुरुषाश्रिता ।
भूमिः पुरोधसा ग्राह्योपाश्रयाय यथारुचि ॥ ८७ ॥
विघ्नः स्वपरपक्षेभ्यो, निषेध्यः सकलो मया ।
द्विजस्तच्च प्रतिश्रुत्य, तदाश्रयमकारयत् ॥ ८८ ॥
ततःप्रभृति संजज्ञे, वसतीनां परम्परा ।
महद्भिः स्थापितं वृद्धिमश्नुते नात्र संशयः ॥ ८९ ॥
श्रीबुद्धिसागरसूरिश्चेकव्याकरणं नवम् ।
सहस्त्राष्टकमानं तच्छ्रीबुद्धिसागराभिधम् ॥ ९० ॥
अन्यदाविहरन्तश्च, श्रीजिनेश्वरसूरयः ।
पुनर्द्धारापुरीं प्रापुः, सपुण्यप्राप्यदर्शनाम् ॥ ९१ ॥

''प्रभावक चरित्र, पृष्ठ २७५''

भावार्थ–आचार्य वर्धमानसूरि ने जिनेश्वर बुद्धिसागर को योग्य समझकर सूरि पद दिया और उनको आज्ञा दी कि पाटण में चैत्यवासी आचार्य सुविहितों को आने नहीं देते हैं, अतः तुम जाकर सुविहितों के ठहरने के द्वार खोल दो। गुरु आज्ञा शिरोधार्य कर जिनेश्वरसूरि एवं बुद्धिसागरसूरि विहार कर क्रमशः पाटण पहुँचे। घर घर में याचना करने पर भी उनको ठहरने के लिये उपाश्रय नहीं मिला। उस समय पाटण में राजा दुर्लभ राज करता था और सोमेश्वर नाम का राजपुरोहित भी वहाँ रहता था। दोनों मुनि चलकर उस पुरोहित के यहां आये और आपस में वार्तालाप होने से पुरोहित ने उनका सत्कार कर ठहरने के लिये अपना मकान दिया क्योंकि जिनेश्वरसूरि एवं बुद्धिसागरसूरि जाति के ब्राह्मण थे। अतः ब्राह्मण ब्राह्मण का सत्कार करे यह स्वाभाविक बात है।

इस बात का पता जब चैत्यवासियों को लगा तो उन्होंने अपने आदमियों को पुरोहित के मकान पर भेजकर साधुओं को कहलाया कि इस नगर में चैत्यवासियों की आज्ञा के बिना कोई भी श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकते हैं, अतः तुम जल्दी से नगर से चले जाओ इत्यादि। आदमियों ने जाकर सब हाल

जिनेश्वरादि को सुना दिया। इस पर पुरोहित सोमेश्वर ने कहा कि मैं राजा के पास जाकर निर्णय कर लूंगा आप अपने मालिकों को कह देना। उन आदमियों ने जाकर पुरोहित का संदेश चैत्यवासियों को सुना दिया। इस पर वे सब लोग शामिल होकर राजसभा में गये। इधर पुरोहित ने भी राजसभा में जाकर कहा कि मेरे मकान पर दो श्वेताम्बर साधु आये है। मैंने उनको गुणी समझ कर ठहरने के लिये स्थान दिया है। यदि इसमें मेरा कुछ भी अपराध हुआ हो तो आप अपनी इच्छा के अनुसार दंड दें।

चैत्यवासियों ने राजा वनराज चावडा और आचार्य देवचन्द्रसूरि[१] का इतिहास सुना कर कहा कि आपके पूर्वजों से यह मर्यादा चली आई है कि पाटण में चैत्यवासियों के अलावा श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकेगा। अतः उस मर्यादा का आपको भी पालन करना चाहिये इत्यादि।

इस पर राजा ने कहा कि मैं अपने पूर्वजों की मर्यादा का दृढ़ता पूर्वक पालन करने को कटिबद्ध हूँ पर आपसे इतनी प्रार्थना करता हूँ कि मेरे नगर में कोई भी गुणी जन आ निकले तो उनको ठहरने के लिये स्थान तो मिलना चाहिये। अतः आप इस मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें। चैत्यवासियों ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

जब चैत्यवासियों ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली तब उस अवसर को पाकर पुरोहित ने राजा से प्रार्थना की कि हे राजन्! इन साधुओं के मकान के लिये कुछ भूमि प्रदान करावें कि इनके लिये एक उपाश्रय बना दिया जाय। उस समय एक शैवाचार्य राजसभा में आया हुआ था। उसने भी पुरोहित की प्रार्थना को मदद दी। अतः राजा ने भूमिदान दिया और पुरोहित ने उपाश्रय बनाया, जिसमें जिनेश्वरसूरि ने चातुर्मास किया। बाद चातुर्मास के जिनेश्वरसूरि विहार कर धारानगरी की ओर पधार गये।

इस उल्लेख से पाठक स्वयं जान सकते हैं कि जिनेश्वरसूरि पाटण जरुर पधारे थे पर न तो वे राजसभा में गये न चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ और न राजा ने खरतर बिरुद ही दिया। इस लेख से स्पष्ट पाया जाता है कि राजसभा में केवल सोमेश्वर पुरोहित ही गया था और उसने राजा से भूमि प्राप्त कर जिनेश्वरसूरि के लिये उपाश्रय बनाया, जिसमें जिनेश्वरसूरि ने चातुर्मास किया और

---

१. पाटण बसाने में आचार्य शीलगुणसूरि का ही उपकार था और देवचन्द्रसूरि शीलगुणसूरि के शिष्य थे और वनराज के कार्य में इनकी पूरी मदद थी, अतः देवचन्द्रसूरि का नाम लिया हो।

बाद चातुर्मास के विहार कर धारा नगरी की ओर पधार गये।

अब आगे चलकर देखिये इससे मिलता हुआ एक प्रमाण खास खरतरों के घर का है जिसको यहां उद्धृत कर दिया जाता है–

वच्छा ! गच्छह अणहिल्लपट्टणे संपयं जओ तत्थ ।
सुविहिअजइप्पवेसं चेइअमुणिणो निवारिंति ॥ १ ॥
सत्तीए बुद्धिए सुविहिअसाहूण तत्थ य पवेसो ।
कायव्वो तुम्ह समो अन्नो न हु अत्थि कोऽवि विऊ ॥ २ ॥
सीसे धरिऊण गुरुणमेयमाणं कमेण ते पत्ता ।
गुज्जरधरावयंसं अणहिल्लभिहाणयं नगरं ॥ ३ ॥
गीअत्थमुणिसमेया भमिआ पइमंदिरं वसहिहेऊ ।
सा तत्थ नेव पत्ता गुरूण तो समरिअं वयणं ॥ ४ ॥
तत्थ य दुल्लहराओ राया रायव्व सव्वकलकलिओ ।
तत्थ (स्स) पुरोहिअसारो सोमेसरनामओ आसी ॥ ५ ॥
तस्स घरे संपन्ना (ते पत्ता) सोऽविहु तणयाण वेअअज्झयणं ।
कारेमाणो दिट्ठो सिट्ठो सूरिप्पहाणेहिं ॥ ६॥
सुणु वक्रवाणं वेअस्स एरिसं सारणीइ परिसुद्धं ।
सोऽवि सुणंतो उप्फुल्ललोअण्णो विम्हिओ जाओ ॥ ७ ॥
किं बम्हा रूवजुयं काऊणं अत्तणा इहं उइण्णो ।
इअ चिंतंतो विप्पो पयपउमं वंदई तेसिं ॥ ८ ॥
सिवसासणस्स जिणसासणस्स सारक्खरे गहेऊणं ।
इअ आसीसा दिन्ना सूरीहिं सकज्जसिद्धिकए ॥ ९ ॥

''अपाणि पादो ह्यमनो ग्रहीता,
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णाः ।
स वेत्ति विश्वं नहि तस्य वेत्ता,
शिवो ह्यरुपी स जिनोऽवताद्वः ॥ १० ॥

तो विप्पो ते जंपइ चिट्ठह गुट्ठी तुमेहिं सह होइ ।
तुम्ह पसाया वेअत्थपारगा हुंति मे अ सुआ ॥ ११ ॥
ठाणाभावा अम्हे चिट्ठामो कत्थ इत्थ तुह नयरे ? ।
चेइअवासिअमुणिणो न दिंति सुविहिअजणे वसिउ ॥ १२ ॥
तेणवि सचंदसाला उवरिं ठावित्तु सुद्ध असणेणं ।

पड़िलाभिअ मज्झण्हे परिक्खिआ सव्वसत्थेसु ॥ १३ ॥
तत्तो चेइयवासी अमुंडा तत्थागया भणंति इमं ।
नीसरह नयरमज्झा चेइअबज्झा न इह ठंति ॥ १४ ॥
इअ वुत्तंतं सोउं रण्णो पुरओ पुरोहिओ भणइ ।
रायावि सयलचेइअवासीणं साहए पुरओ ॥ १५ ॥
जइ कोऽवि गुणड्ढाणं इमाण पुरओ विरूवयं भणिहि ।
तं निअरज्जाउ फुडं नासेमि सकिमियभसणुव्व ॥ १६ ॥
रण्णो आएसेणं वसहिं लहिउं ठिआ चउम्मासिं ।
तत्तो सुविहिअमुणिणो विहरंति जहिच्छिअं तत्थ ॥ १७ ॥

''इत्यादि रुद्रपल्लीय संघतिलकसूरिकृत दर्शनसप्ततिका वृतौ''
प्रवचन परीक्षा, पृ. २८३

भावार्थ–वर्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि को हुक्म दिया कि तुम पाटण जाओ, कारण पाटण में चैत्यवासियों का जोर है कि वे सुविहितों को पाटण में आने नहीं देते हैं, अतः तुम जा कर सुविहितों के लिए पाटण का द्वार खोल दो। बस गुरु आज्ञा स्वीकार कर जिनेश्वरसूरि–बुद्धिसागरसूरि क्रमशः विहार कर पाटण पधारे। वहां प्रत्येक घर में याचना करने पर भी उनको ठहरने के लिए स्थान नहीं मिला, उस समय उन्होंने गुरु के वचन को याद किया कि वे ठीक ही कहते थे कि पाटण में चैत्यवासियों का जोर है, खैर उस समय पाटण में राजा दुर्लभ का राज था और उनका राजपुरोहित सोमेश्वर ब्राह्मण था। दोनों सूरि चल पुरोहित के वहाँ गये। परिचय होने पर पुरोहित ने कहा कि आप इस नगर में विराजें। इस पर सूरिजी ने कहा कि तुम्हारे नगर में ठहरने को स्थान ही नहीं मिलता फिर हम कहाँ ठहरें ? इस हालत में पुरोहित ने अपनी चन्द्रशाला खोल दी कि वहाँ जिनेश्वरसूरि ठहर गये। यह बितीकार चैत्यवासियों को मालूम हुआ तो वे (प्र. च. उनके आदमी) वहाँ जा कर कहा कि तुम नगर से चले जाओ, कारण यहां चैत्यवासियों की सम्मति बिना कोई श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकते हैं। इस पर पुरोहित ने कहा कि मैं राजा के पास जा कर इस बात का निर्णय कर लूँगा। बाद पुरोहित ने राजा के पास जा कर सब हाल कह दिया। उधर से सब चैत्यवासी राजा के पास गये और अपनी सत्ता का इतिहास सुनाया। आखिर राजा के आदेश से वसति प्राप्त कर जिनेश्वरसूरिने पाटण में चातुर्मास किया, उस समय से सुविहित मुनि पाटण में यथा इच्छा विहार करने लगे।

यह लेख खास जिनेश्वरसूरि के अनुयायियों का है। इसमें जिनेश्वरसूरि पाटण

गये थे, पर न तो वे राजसभा में गये थे न चैत्यवासियों के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ और न राजा दुर्लभ ने उनको खरतर बिरुद ही दिया था, केवल पुरोहित राजसभा में गया था। समझ में नहीं आता है कि खरतर झूठ मूट ही जिनेश्वरसूरि को खरतर कैसे बना रहे हैं? इसी प्रकार आचार्य प्रभाचंद्रसूरि रचित प्रभाविक चरित्र का प्रमाण हम पूर्व उद्धृत कर आये हैं। ये दोनों प्रमाण प्राचीन याने चौदहवीं शताब्दी के हैं, इसके पूर्व का कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है कि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद तो क्या पर जिससे राजसभा में जाना या शास्त्रार्थ होना सिद्ध होता हो।

जिनेश्वरसूरि के पाटण जाने का समय आधुनिक खरतरों ने वि. सं. १०८० लिखा है वह भी गलत है, जिसको मैं पहले भाग में लिख आया हूँ कि वि. सं. १०८० में पाटण का राजा दुर्लभ नहीं पर भीम था। राजा दुर्लभ का राज तो वि. सं. १०७८ तक ही रहा था। अतः खरतरों का यह लिखना गलत है कि वि. सं. १०८० में जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला था।

एक सवाल यह उपस्थित होता है कि चैत्यवासी लोग सुविहितों को नगर में क्यों नहीं ठहरने देते थे? शायद चैत्यवासियों को यह भय होगा कि यह चैत्यवासियों से निकल कर नामधारी सुविहित जैनसंघ के संगठन बल के टुकड़े टुकड़े करके संघ में फूट कुसम्प के बीज न बो डालें और आखिर उन्हीं की धारणा सोलह आने सत्य ही निकली। कारण, पाटण में जिनेश्वरसूरि को ठहरने के लिए स्थान मिला और उन्होंने चैत्यवास और वसतिवास का भेद डाल संघ में फूट के बीज बो ही दिये, फिर तो ग्राम ग्राम में वसतिवासियों के लिये नये नये मकान बनने शुरु हो गये, जैसे ढूँढ़ियों के लिये ग्राम ग्राम में स्थानक बनवाने का प्रचार हुआ था।

मनुष्य अभिमान के गज पर सवार हो जाता है तब वह हिताहित का भान तक भूल जाता है। यही हाल नामधारी सुविहितों का हुआ है। जिनेश्वरसूरि चैत्यवासियों के शिथिल आचार की पुकार करने को पाटण गये पर वहां आपने स्वयं अपने लिए बनाये हुये मकान में चातुर्मास कर वज्रक्रिया रुप पाप की गठरी शिर पर उठाई। कारण, साधु के लिये बनाये हुये मकान में साधु को पैर रखना भी नहीं कल्पता है। यदि साधु के लिये बनाया हुआ मकान में साधु ठहरे तो आचारांगसूत्र में सावद्य एव वज्रक्रिया, दशवैकालिक में आचार से भ्रष्ट तथा निशीथसूत्र में दंड बतलाया है। यह कार्य चैत्यवास का रुपान्तर नहीं तो और क्या है? खैर यह तो हुई जिनेश्वरसूरि के पाटण जाने की बात जिसका सारांश यह है

कि न तो जिनेश्वरसूरि राजसभा में गये, न चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ और न राजा ने खरतर बिरुद ही दिया।

यदि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला होता तो उनके बाद अनेक आचार्य हुये और उन्होंने अनेक ग्रन्थों का निर्माण भी किया, पर उन्होंने किसी स्थान पर यह नहीं लिखा है कि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला था। खास अभयदेवसूरि ने अपनी बनाई टीकाओं में जिनेश्वरसूरि को चन्द्रकुल के लिखा है। (देखो खरतरमतोत्पत्ति भाग पहला) आगे चल कर हम जिनवल्लभसूरि के ग्रन्थों को देखते हैं कि उन्होंने कहीं पर जिनेश्वरसूरि को खरतर लिखा है या नहीं ?

न चकोरदयितमलमदोषमतमोनिरस्तसद्वृत्तम् ।
नालिककृतावकाशोदयमपरं चांद्रमस्तिकुलम् ॥ १ ॥
तस्मिन् बुधोऽभवदसङ्गविहारवर्ती,
सूरिर्जिनेश्वर इति प्रथितोदयश्रीः ।
श्रीवर्धमानगुरुदेवमतानुसारी
हारीभवन् हृदि सदा गिरिदेवतायाः ॥ २ ॥

''जिन वल्लभीयप्रशस्त्यपरनाम्न्यामष्टसप्ततिकायां''
प्र. प., पृ. २९४

जिनवल्लभसूरि के उपरोक्त लेख में शास्त्रार्थ एवं खरतर बिरुद की गंध तक भी नहीं है। यदि जिनवल्लभ ने चैत्यवासियों के शास्त्रार्थ की विजय में खरतर बिरुद मिलना सुन लिया होता तो वह अपने संघ पट्टक जैसे ग्रन्थ में एवं जिनेश्वरसूरि के साथ यह बात लिखे बिना कभी नहीं रहता पर क्या करे उसके समय खरतर शब्द का जन्म तक भी नहीं हुआ था।

आधुनिक खरतर लोग महाप्रभाविक अभयदेवसूरि को खरतर बनाने का मिथ्या प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु अभयदेवसूरि के विषय में तो मैंने प्रथम भाग में विस्तार से लिख दिया कि वे खरतर नहीं पर चन्द्रकुल में थे। इतना ही क्यों पर आपकी संतान परम्परा में भी कोई खरतर पैदा नहीं हुआ था। देखिये खास अभयदेवसूरि के पट्टधर वर्धमानसूरि हुये हैं वे क्या लिखते हैं ?

चंदकुले चंदजसो दुक्करतवचरणसोसिअसरीरो ।
अप्पपडिबद्धविहारो सूरुव्व विणिग्गयपयावो ॥ १ ॥
एणपरिग्गहरहिओ विविहसारंगसंगहो निच्चं ।
सयलक्खविजयपयडोऽवि एक्कसंसारभयभीओ ॥ २ ॥
इंदिअतुरिअतुरगमवसिअरणसुसारही महासत्तो ।

धम्मारामुल्लूरणमणमक्कडरूद्धवावाचारो ॥ ३ ॥
खमदमसंजमगुणरोहणो विजिअदुज्जयाणंगो ।
आसि सिरिवद्धमाणो सूरी सव्वत्थ सुपसिद्धो ॥ ४ ॥
सूरिजिणेसरसिरिबुद्धिसायरा सायरुव्व गंभीरा ।
सुरगुरुसुक्कसरित्था सहोअरा तस्स दो सीसा ॥ ५ ॥
वायरणछंदनिग्घंटुकव्वणाडयपमाणसमएसु ।
अणिवारीअप्पयारा जाण मई सयलसत्थेसु ॥ ६ ॥
ताण विणेओ सिरिअभयदेवसूरित्तिनाम विक्खावाओ ।
विजयक्खो पच्चक्खो कयविक्कयसंगहो धम्मे ॥ ७ ॥
जिणमयभवणब्भंतरगूढपयत्थाण पयडणे जस्स ।
दीवयसिहिव्व विमला सूई बुद्धी पवित्थरिआ ॥ ८ ॥
ठाणाइ नवंगाणं पंचासयपमुहपगरणाणं च ।
विवरणकरणेण कओ उवयारो जेण संघस्स ॥ ९ ॥
इक्को व दो व तिण्णि व कहवि तु लग्गेण जइगुणा हुंति ।
कलिकाले जस्स पुणो वुच्छं सव्वेहिवि गुणेहिं ॥ १० ॥
सीसेहिं तस्स रइअं चरिअमिणं वद्धमाणसूरीहिं ।
होउ पढंतसुणंताण कारणं मोक्खसुक्खस्स ॥ ११ ॥

''वर्धमानसूरिकृतप्राकृतगाथात्मकश्रीऋषभदेवचरित्रप्रशस्तौ''
प्रवचन परीक्षा, पृष्ठ २९१

इस लेख में जिनेश्वरसूरि एवं अभयदेवसूरि के साथ खरतर शब्द की बू तक भी नहीं है, आगे चल कर इन वर्धमानसूरि के पट्टधर पद्मप्रभसूरि हुए। आप क्या लिखते हैं -

पूर्वं चन्द्रकुले बभूव विपुले श्री वर्धमानप्रभुः,
सूरिर्मङ्गलभाजनं सुमनसां सेव्यः सुवृत्तास्पदम् ।
शिष्यस्तस्य जिनेश्वरः समजनि स्याद्वादिनामग्रणीः,
बन्धुस्तस्य च बुद्धिसागर इति त्रैविद्यपारङ्गमः ॥ १ ॥
सूरिः श्रीजिनचन्द्रोऽभयदेवगुरुर्नवाङ्गवृत्तिकरः ।
श्रीजिनभद्रमुनीन्द्रो जिनेश्वरविभोस्त्रयः शिष्याः ॥ २ ॥
चक्रे श्रीजिनचन्द्रसूरिगुरुभिर्धुर्यैःप्रसन्नाभिधस्तेन,
ग्रन्थ चतुष्टयीस्फुटमतिः श्रीदेवभद्रप्रभुः ।
देवानन्द मुनीश्वरोऽभवदतश्चारित्रिणामग्रणीः

संसाराम्बुधिपारगामिजनताकामेषु कामं सखा ॥ ३ ॥
यन्मुखावासवास्तव्या, व्यवस्यति सरस्वती ।
गन्तुं नान्यत्र स न्याय्यः, श्रीमान्देवप्रभप्रभुः ॥ ४ ॥
मुकुरतुलामङ्कुरयति वस्तुप्रतिबिम्बविशदमतिवृत्रम् ।
श्रीविबुधप्रभचित्तं न विधते वैपरीत्यं तु ॥ ५ ॥
तत्पदपद्मभ्रमरश्चक्रे पद्मप्रभश्चरितमेतद् ।
विक्रमतोऽतिक्रान्ते वेदग्रहरवि १२९४ मिति समये ॥ ६ ॥

इति श्रीपद्मप्रभसूरिविरचितश्रीमुनिसुव्रतचरित्रप्रशस्तौ
प्रवचन परीक्षा, पृष्ठ २९२

इस लेख में भी न तो जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का जिक्र है और न खरतर बिरुद की गन्ध भी है। आगे चल कर अभयदेवसूरि की सन्तान में एक धर्मघोषसूरि नाम के आचार्य हुए, उन्होंने आबू के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई जिसका शिलालेख क्या उद्घोषना करता है देखिये।

स्वस्तिश्रीनृपविक्रमसंवत् १२९३ वर्षे वैशाख शुक्ल १५ शनावद्येह श्रीअर्बुदाचलमहातीर्थे अणहिल्लपुरवास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय त. श्रीचंडप्रसाद महं. सोमान्वये त. आसराज सुतमहं श्रीमल्लदेवमहं श्रीवस्तुपालयोरनुजमहं श्रीतेजपालेन कारित श्रीलूणसीहवसहिकायां श्रीनेमिनाथचैत्ये इत्यादि यावत् श्रे. घेलणसमुद्धरप्रमुखकुटुम्बसमुदायेन श्रीशान्तिनाथबिम्बं कारितं प्रतिष्ठितं च नवाङ्गीवृत्तिकारकश्रीअभयदेवसूरिसंतानीयैः श्रीधर्मघोषसूरिभिः''

प्रवचन परीक्षा, पृष्ठ २९२

इस शिलालेख से इतना तो स्पष्ट सिद्ध हो सकता है कि अभयदेवसूरि तो क्या पर आपकी परम्परा में कोई भी खरतर पैदा नहीं हुआ था, इतना ही क्यों पर अभयदेवसूरि के साथ खरतरों का कुछ सम्बन्ध भी नहीं था। कारण श्रीअभयदेवसूरि तो शुद्ध चन्द्रकुल की परम्परा में है तब खरतर मत की उत्पत्ति कुर्च्चपुरागच्छीय जिनवल्लभसूरि के पट्टधर जिनदत्तसूरि से हुई थी।

उपरोक्त प्रामाणिक प्रमाणों को पढ़ कर पाठकों को यह सवाल होना स्वाभाविक ही है कि जब प्राचीन किसी ग्रन्थ में जिनेश्वरसूरि का चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ एवं खरतर बिरुद का जिक्र तक नहीं है तो फिर यह मान्यता किसके द्वारा और किस समय में हुई कि जिनेश्वरसूरि का चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ और राजा दुर्लभ ने जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद दिया ?

जिनेश्वरसूरि का चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ और खरतर बिरुद की

कल्पना एक ही साथ में नहीं हुई थीं परन्तु पहले शास्त्रार्थ की कल्पना की गई थी और बाद में खरतर बिरुद की। जिसमें शास्त्रार्थ की कल्पना तो सबसे पहले विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में जिनपतिसूरि ने की थी जैसे कि :-

चौलुक्यवंशमुक्तामणिक्यचारुतत्वविचारचातुरीधुरीण विलसदंगरंग-नृत्यन्नीत्यंगनारंजितजगज्जनसमाजश्रीदुर्ल्लभराजमहाराजसभायां अनल्पज-ल्पजलधिसमुच्छलदतुच्छविकल्पकल्लोलमालाकवलितवहलप्रतिवादिको-विदग्रामण्यासंविग्नमुनिनिवहाग्रण्या, सुविहितवसतिपथप्रथनरविणा वादिके-सरिणा श्रीजिनेश्वरसूरिणा, श्रुतयुक्तिभिर्बहुधा, चैत्यवासव्यवस्थापनं प्रति प्रतिक्षिप्तेष्वपि लांपट्याभिनिवेशाभ्यां तन्निर्बंधमजहत्सु यथाच्छंदेषु।

जिनवल्लभसूरिकृत संघ पट्टक, पृष्ठ ४

इस टीका में जिनपतिसूरि ने जिनेश्वरसूरि को वादी विजेता बतलाया है, यह केवल जिनेश्वरसूरि के विशेषण रुप में ही है न कि राजसभा में जाकर किसी चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त करने के लिये है, फिर भी पिछले लोगों ने गाड़ीरी प्रवाह की भांति जिनपतिसूरि की टीका का सहारा लेकर भिन्न-भिन्न कल्पना कर डाली हैं पर जब खास जिनपतिसूरि ने ही मिथ्या कल्पना की जो ऊपर के प्रमाणों से साबित होता है तो पिछले लोगों की कल्पना तो स्वयं ही मिथ्या साबित हो जाती है। अब यह सवाल उपस्थित होता है कि जिनपतिसूरि ने यह मिथ्या कल्पना क्यों की होगी ? इसके लिये यह कहा जा सकता है कि उस समय जिनपतिसूरि के सामने कई ऐसे भी कारण उपस्थित थे कि उनको इस प्रकार की मिथ्या कल्पना करनी पड़ी, जैसे कि :-

१. यह संघपट्टक नामक ग्रन्थ जिनवल्लभसूरि ने चैत्यवासियों के खंडन के विषय में बनाया था जिसकी टीका जिनपतिसूरि लिख रहे थे।

२. चैत्यवासियों को विशेष हलके दिखाने थे।

३. चैत्यवासी जिनवल्लभसूरि को गर्भापहार नामक छठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा के कारण संघ बाहर करने में शामिल थे इसका बदला भी लेना था।

४. जिनेश्वरसूरि पाटण गये उस समय चैत्यवासियों ने न तो उनको ठहरने के लिए स्थान दिया था और न ठहरने ही दिया था उसका भी रोष था।

५. जिनदत्तसूरि ने पाटण में स्त्रियों को जिनपूजा निषेध कर उत्सूत्र की प्ररुपणा की जिससे उनको संघ बाहर करने में भी चैत्यवासी शामिल थे यह बात भी जिनपति को खटकती थी।

६. चैत्यवासियों को यह भी बतलाना था कि पहले भी जिनेश्वरसूरि ने पाटण में चैत्यवासियों को पराजय किया था।

७. विधिमार्ग नामक नये मत पर जो उत्सूत्र का कलंक था उसको भी छिपाना-मिटाना एवं धो डालना था।

इत्यादि कारणों से जिनपतिसूरि ने इस प्रकार की मिथ्या कल्पना की थी।

फिर भी उस समय जिनपतिसूरि ने एक बड़ी भारी भूल तो यह की थी कि जिनेश्वरसूरि के लिए अन्यान्य विशेषणों के साथ खरतर बिरुद का विशेषण लगाना भूल गये। बस यह जिनपतिसूरि की भूल ही आज खरतरों के मार्ग में रोड़ा अटका रही है।

शायद खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की खर प्रकृति के कारण हुई थी और उस समय इस खरतर शब्द को जिनदत्तसूरि व उनके शिष्य अपमान के रुप में समझते थे और जिनपतिसूरि के समय इसको अधिक समय भी नहीं हुआ था। कारण, जिनदत्तसूरि का देहान्त वि. सं. १२११ में हुआ तब सं. १२२३ में जिनपतिसूरि बने थे। यही कारण है कि जिनपति ने जिनदत्तसूरि को खरतर नहीं लिखा था।

आधुनिक खरतरों को इस अपमान सूचक और लोकनिन्दनीय खरतर शब्द पर इतना मोह एवं आग्रह हो आया है कि खरतर शब्द को बिरुद एवं प्राचीन सिद्ध करने के लिये 'षट् स्थानकप्रकरण' की प्रस्तावना में खरतर मतानुयायियों के कई प्रमाण उद्धृत कर बिचारे थली जैसे भद्रिक लोगों को धोखा दिया है। फिर भी उन प्रमाणों से तो उल्टा यह सिद्ध होता है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक तो किसी की भी यह मान्यता नहीं थी कि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में खरतर बिरुद मिला था। हां बाद में यह कल्पना की गई है कि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में खरतर बिरुद मिला। अगर ग्यारहवीं शताब्दी में बिरुद मिले जिसकी ३०० वर्ष तक के साहित्य में गन्ध तक नहीं और ३०० वर्षों के बाद वह गुप्त रहा हुआ बिरुद प्रगट हो यह कभी हो ही नहीं सकता है। खैर, खरतरों के दिये हुए प्रमाणों को मैं यहां उद्धृत कर देता हूँ कि इन प्रमाणों से जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला सिद्ध होता है या खरतरों की मिथ्या कल्पना साबित होती है, लीजिए-

१. पहला प्रमाण अभयदेवसूरि की टीका का है, जिसके लिये मैं प्रथम भाग में श्रीस्थानांगसूत्र, समवायांगसूत्र, भगवतीसूत्र और ज्ञाता उपपातिकसूत्र की टीकाओं का प्रमाण दे आया हूँ कि उन्होंने जिनेश्वरसूरि को चन्द्रकुल का होना लिखा है।

२. वि. सं. ११३९ वर्षे श्री गुणचन्द्रगणि विनिर्मित प्राकृत वीर चरित्र प्रशस्ति प्रान्ते-

भवजलोहिवीइसंभंतभवियसंताणतारणसमत्थो ।
बोहित्थोव्व महत्थो सिरिजिणेसरो पढमो ॥ ५१ ॥
गुरुसीराओ धवलाओ सुविहिया[१] साहुसंतती जाया ।
हिमवंताओ गंगुव्व निग्गया सयलजणपुज्जा ॥ ५२ ॥

षट् स्थानक प्रकरणम्, पृष्ठ १

सं. ११३२, ११४१, ११६९, १२११ वर्षेषु क्रमशः जन्म दीक्षा सूरिपदस्वर्गभाजः श्री जिनदत्त सूरयः गणधर सार्द्धशतके-

तेसिं पयपउमसेवारसिओ भमरुव्व सव्वभमरहिओ ।
ससमयपरसमयपयत्थसत्थवित्थारणसमत्थो ॥ ६४ ॥
अणहिल्लवाडए नाडइव्व दंसियसुपत्त संदोहे ।
पउरपए बहुकविदूसगे य सन्नायगाणुगए ॥ ६५ ॥
सड्ढियदुल्लहराए सरसइअंकोव सोहिए सुइए ।
मज्झो-रायसहं पविसिऊण लोयागमाणुमयं ॥ ६६ ॥॥
नामायरिएहिं समं करियं विचारं वियाररहिएहिं ।
वसइहिं निवासो साहूणं ठविओ ठाविओ अप्पा ॥ ६७ ॥

इस लेख में वसतिवास[२] का जिक्र है पर शास्त्रार्थ एवं खरतर की गन्ध तक भी नहीं है-

---

१. खरतरों ने सुविहित शब्द का अर्थ फुटनोट में खरतर किया है, यह एक भद्रिक जनता को धोखा देने का एक जाल रचा है। क्योंकि सुविहित शब्द मात्र से ही खरतर कहा जाय तो प्रत्येक गच्छ में सुविहित आचार्य हुए हैं तथा गणधर सौधर्म और आपकी सन्तान भी सुविहित ही थे उनको भी खरतर कहना चाहिये, फिर एक जिनेश्वरसूरि को ही खरतर क्यों कहा जाय ?

२. दूसरे खरतरों ने 'वसतिवास' शब्द के साथ भी खरतर शब्द को जोड़ दिया है, यह भी धोखे की ही बात है। यदि वसतिवास को ही खरतर कहा जाय तो भगवान भद्रबाहु को भी खरतर कहना चाहिये। कारण सबसे पहले वसतिवास का उल्लेख उन्होंने ही किया था। खरतरों ! अब जमाना ऐसा नहीं है कि तुम इस प्रकार जनता को भ्रम में डाल सको। क्या सैंकडों वर्षों में भी तुमको एक दो लेखक ऐसे नहीं मिले कि एक राजा की ओर से मिले हुए खरतर बिरुद को स्पष्ट शब्दों में लिख सकें ? कि आपको इस प्रकार माया कपटाई एवं प्रपंच जाल रचना पड़ा है ?

(लेखक)

कवि पल्ह का लेख–पहले भाग में तथा जिनपतिसूरि का लेख इसी भाग में मुद्रित हो चुका है ।

सं. १२८५ श्री पूर्णभद्रगणि विनिर्मिते धन्यशालिभद्रचरित्रप्रान्ते–

श्रीमद्‌गुर्जरभूमिभूषणमणौ श्रीपत्तने पत्तने ।
श्रीमद्‌दुर्लभराजराज पुरतो यश्चैत्यवासिद्विपान् ॥
निर्लोड्यागमहेतु युक्तिनरवरैर्वासं गृहस्थालये ।
साधूनां समतिष्ठपन्मुनि मृगाधीशोऽप्रधृष्यः परैः ॥ १ ॥
सूरिः स चांद्रकुलमानसराजहंसः,
श्रीमज्जिनेश्वर इति प्रथितः पृथिव्यां ।
जज्ञे लसच्चरणरागभृदिद्ध,
शुद्धपक्षद्वयं शुभगतिं सुतरां दधानः ॥ २ ॥

सं. १२९३ वर्षे द्वादशकुलविवरणे उपाध्यायः जिनपालः –

श्रीमच्चांद्रकुलांबरैकतरणेः श्रीवर्धमानप्रभोः,
शिष्यः सूरिजिनेश्वरो मतिवचः प्रागल्भ्यवाचस्पतिः ।
आसीद्दुर्लभराजराजसदसि प्रख्यापितागारवद्–
वेश्मावस्थितिरागमज्ञ सुमुनिव्रातस्य शुद्धात्मनः ॥ १ ॥

सं. १३१७ वर्षे श्रावकधर्म प्रकरण वृत्तिप्रान्ते लक्ष्मीतिलकोपाध्यायः–

प्रादोषानपहस्त्य कुग्रहकृतान् सिद्धान्तदृष्ट्यावसन्यध्वानं–
शुभसिद्धिलग्नमभितः प्रामाणिकत्वं नयन् ।
स्थाने दुर्लभराजशक्रगुरुतां प्रापत्सुचन्द्रान्वयो–
त्तंसः सूरिजिनेश्वरः समभवत् त्रैविध्यवद्यक्रमः ॥ १ ॥

षट् स्थानक प्रकरण, पृष्ठ २

खरतरों की ओर से उपरोक्त प्रमाण, वि. सं. ११२० से वि. सं. १३१७ तक के प्रमाणों में खरतर शब्द की गन्ध तक भी नहीं है। हाँ जिनेश्वरसूरि का पाटण जाना और पिछले लोगों का शास्त्रार्थ की कल्पना करना हम उपर लिख आये हैं, फिर समझ में नहीं आता है कि खरतर इन प्रमाणों से क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? इन प्रमाणों से तो उल्टा यह सिद्ध होता है कि वि. सं. १३१७ तक तो किसी भी खरतरों की यह मान्यता नहीं थी कि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में खरतर बिरुद मिला था।

खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की खर (कठोर) प्रकृति के कारण हुइ थी; जिस खरतर शब्द को वे अपना अपमान समझते थे, पर चौदहवीं शताब्दी

में वह अपमानित खरतर शब्द गच्छ के रुप में परिणित हो गया। जैसे ओसवालों में चंडालिया बलाई ढेढ़िया वगैरह जातियां हैं। जब इनके यह नाम पड़े थे तब तो वे नाराज होते थे पर बाद दिन निकलने से वे अपने हाथों से पूर्वोक्त नाम लिखने लग गये। यही हाल खरतरों का हुआ है जो खरतरशब्द अपमान के रुप में समझा जाता था, दिन निकलने से खरतर लोग अपने हाथों से लिखने लग गये। आगे चल कर एक प्रमाण और देखिये-

जिनवल्लभसूरि ने भगवान महावीर का गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक रुपी उत्सूत्र प्ररुपणा करके अपना 'विधिमार्ग' नाम का नया मत निकाला। आपके देहान्त के बाद इस नूतन मत की भी दो शाखा हो गई। एक जिनदत्तसूरि की खरतर शाखा और दूसरी जिनेश्वरसूरि की रुद्रपाली शाखा। अगर जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला होता तो उन दोनों शाखाओं को खरतरशब्द के लिये एक सरीखा मान होता, जैसे तपागच्छ में विजय और सागर शाखा है पर तपागच्छ के लिये दोनों शाखाओं को एकसा माना है परन्तु रुद्रपाली शाखा वाले खरतर नाम लेने में भी पाप समझते थे। कारण, खरतरशब्द की उत्पत्ति हुई थी जिनदत्तसूरि से, तब रुद्रपाली और खरतरों की खूब कटाकटी चलती थी इत्यादि।

देखिये रुद्रपाली मत में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में एक जयानन्दसूरि हुये जिन्होंने आचारदिनकर नामक ग्रन्थ पर टीका रची है, जिसमें क्या लिखते हैं :-

श्रीमज्जिनेश्वरः सूरिर्जिनेश्वरमतं ततः ।
शरद्राकाशशिस्पष्ट-समुद्रसद्दशं व्यधात् ॥ १२ ॥
नवाङ्गवृत्तिकृत् पट्टेऽभयदेवप्रभुर्गुरोः ।
तस्य स्तम्भनकाधीश-माविश्चक्रे समं गुणैः ॥ १३ ॥
श्राद्ध-प्रबोधप्रवण-स्तत् पदे जिनवल्लभः ।
सूरिर्वल्लभतां भेजे, त्रिदशानां नृणामपि ॥ १४ ॥
ततः श्रीरुद्रपल्लीय-गच्छ संज्ञा लसद्यशाः ।
नृपशेखरतां भेजे, सूरीन्द्रो जिनेश्वरः ॥ १५ ॥

विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में खरतर शब्द खूब प्रचलित हो चुका था। यदि जिनेश्वरसूरि के खरतर शब्द की उत्पत्ति होती तो यह जयानन्दसूरि जिनेश्वर के साथ खरतर बिरुद को लिखे बिना कभी नहीं रहता।

उपरोक्त खरतर मत के प्रमाणों से इतना तो स्पष्ट सिद्ध हो चुका है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनेश्वरसूरि से नहीं, पर उनके बाद १२५ वर्ष के करीबन

जिनदत्तसूरि से हुई है, जिसको मैं आगे चल कर तीसरे भाग में बतलाऊँगा ।

खरतरों ने केवल एक जिनेश्वरसूरि को ही खरतर कहने में बड़ी भारी भूल की है । यदि हमारे खरतर भाई अपने पूर्वजों के बनाये अर्वाचीन पट्टावल्यादि ग्रन्थों को ठीक पढ़ लेते तो खरतर बिरुद की वरमाला जिनेश्वरसूरि के गले में नहीं डाल कर वर्धमानसूरि, उद्योतनसूरि ही नहीं पर गणधर सौधर्माचार्य और गुरु गौतमस्वामि के गले में डालने का सौभाग्य प्राप्त कर लेते और इस बात के प्रमाण भी खरतरों के पास काफी थे और वे भी खास खरतरों के पूर्वजों के रचे हुये ग्रन्थों के कि जिसमें किसी खरतर को शंका करने का स्थान ही नहीं मिलता, जैसे कि :-

श्रीवीरशासने क्लेशनाशने जयिनि क्षितौ ।
सुधर्मस्वाम्यपत्यानि गणाः सन्ति सहस्रशः ॥ १ ॥
गच्छः खरतरस्तेषु समस्ति स्वस्ति भाजनम् ।
यत्राभूवन् गुणजुषो गुरवो गतकल्मषा ॥ २ ॥
श्रीमानुद्योतनः सूरिर्वर्धमानो जिनेश्वरः ।
जिनचन्द्रोऽभयदेवो नवाङ्गवृति कारकः ॥ ३ ॥

श्रीआचारांग सूत्र दीपिका, कर्ता-जिनहंससूरि

इस लेख में जिनहंससूरि ने उद्योतनसूरि एवं वर्धमानसूरि को खरतर लिखा है । आगे और देखिये-

श्री महावीरतीर्थे श्रीसुधर्मस्वामिसन्ताने श्रीखरतरगच्छे श्रीउद्योतनसूरिः श्रीवर्धमानसूरिः श्रीजिनेश्वरसूरि श्रीजिनचन्द्रसूरि श्रीअभयदेवसूरि श्रीजिन-वल्लभसूरि श्रीजिनदत्तसूरि श्रीजिनचन्द्रसूरि श्रीजिनपतिसूरि श्रीजिनेश्वरसूरि-रित्यादियावत्तत्पट्टालङ्कारश्रीजिनभद्रसूरिराज्येश्रीजेसलमेरूमहादुर्गे श्रीचचिग-देवे पृथ्वीशे सति सं. १५०५ वर्षे तपः पट्टिका कारिता ।

जैसलमेर का शिलालेख, प्र. प., पृष्ठ १८६

इस लेख में भी उद्योतनसूरि को खरतरगच्छी होना लिखा है

चन्द्रकुले श्रीखरतरविधिपक्षे-''श्रीवर्धमानाभिधसूरिराजो, जातः क्रमादर्बुदपर्व्वताग्रे । मन्त्रीश्वरश्रीविमलाभिधानः, प्राचीकटत् यद्वचनेन चैत्य-मित्यादि ॥ १ ॥

जैसलमेर का शिलालेख, प्र. प., पृष्ठ २८६

इस लेख में वर्धमानसूरि को खरतर होना लिखा है-

प्रणमी वीरजिणेसरदेव, सारइ सुरनर किन्नर सेव ।
श्रीखरतर गुरु पट्टावली, नाममात्र प्रभणु मन रली ॥

उदयउ श्रीउद्योतनसूरि, वर्धमान विद्याभरपुरी ।
सूरि जिनेश्वर सुरतरु समो, श्रीजिनचन्द्रसूरीश्वर नमई ॥

खरतर पट्टावली जै. ऐ. का. स., पृष्ठ २२७

खरतर गच्छि वर्धमान, जिनेश्वरसूरि गुरो ।
अभयदेवसूरि जिनवल्लभजिनदत्तसूरि पवरो ॥

ख. प. जै. ऐ. का. स., पृष्ठ ११

सुविहिय चुडामणि मुणिणो खरतर गुरुणो थुणस्सामि ।
श्रीउज्जोयण वद्धमाण सिरि सूरिजिणेसरो ॥

ख. प. जै. ऐ. का. स., पृष्ठ २४

पणमवि केवल लच्छिवरं चउवीसमउ जिणचन्दो ।
गाइसु खरतर जुगपवर, आणि सुमन आनन्दो ।
अहे पहिलज जुगवर जगि जयउ श्रीसोहमस्वामि ।

ख. प. जैन ऐ. का. स., पृष्ठ २१५

पणमिव वीर जिनन्द चन्द कपसुकय पवेसो
खरतर सुरगुरु गच्छ स्वच्छ गणहर पभणेसो
तसु पय पंकय भमर समरसजि गोयमगणहर
तिणि अनुकमी सिरि नेमिचंद मुणिगुणिगणुमुणिहर

ख. प. जैन ऐ. का. सं., पृष्ठ ३१४

उपरोक्त खरतरों के पूर्वजों के प्रमाणों को आधुनिक खरतर सत्य समझते हैं तो केवल जिनेश्वरसूरि को ही खरतर बिरुद मिला कहना असत्य साबित होता है, क्योंकि जिनेश्वरसूरि के गुरु वर्धमानसूरि और वर्धमानसूरि के गुरु उद्योतनसूरि भी खरतर थे, इतना ही क्यों पर सौधर्म और गौतम गणधर भी खरतर ही थे फिर यह खरतर की वरमाला एक जिनेश्वरसूरि के गले में ही क्यों डाली जाती है ?

यदि खरतर लोग एक कदम आगे बढ़ जाते तो वे भगवान महावीर को भी खरतर बना सकते थे, पर समझ में नहीं आता है कि खरतरों ने यह भूल क्यों की होगी ?

वाह रे खरतरो ! मिथ्या लेख लिखने की भी कुछ हद–मर्यादा होती है, पर तुम लोगों ने तो मर्यादा का भी उल्लंघन कर इस प्रकार मनःकल्पित लेख लिख डाला है कि जिसके न तो कोई सिर है और न कोई पैर ही है ।

बिचारे खरतरों में इतनी अकल ही कहां थी कि हम जिनेश्वरसूरि के लिए खरतर बिरुद का कल्पित कलेवर तैयार करते हैं तो पहले इनके समय का तो ठीक

मिलान कर लें कि बाद में हमें शर्मिन्दा हो नीचा तो न देखना पड़े ? देखिये खरतरों के खरतर बिरुद समय जैसे कि–

सुविहित नइ मटुपति हुउ, गयं गणि वसिंरा विव्य दूरा ।
सूरि जिणेसर पामिउ, जग देखत जय जय बादरा ॥
दस सय चउवीसहिं गए उथापिउ चेइय वासुरा ।
श्रीजिणशासण थापिउ, वसतिहिं सुविहित मुणि वासुरा ॥ १४ ॥

ख. प. ऐ. जै. का. सं., पृष्ठ ४५

दस सय चउवीसेहिं नयरि पट्टण अणहिल्लपुरि ।
हअउवाद सुविहित्थ चेइवासी सुवहु परिं ॥
दुल्लह नरवइ सभा समख्य जिण हेलिहिं जिन्नउ ।
चेइवास उत्थापि देस गुज्जर हव दिन्नउ ॥
सुविहित गच्छ खरतर बिरुद दुल्लह नरवइ तिहिं दिहइ ।
सिरि वद्धमाण पट्टिहिं तिलउ जिणेसरसूरि गुरु गहगहई ॥

''खरतर पट्टावली, पृष्ठ ४४''

१०२४ वर्षे श्रीमदणहिल्लपतने दुर्ल्लभराज समीक्ष इत्यादि

''प्राचीन खरतर पट्टावली''

उपरोक्त प्रमाणों से खरतरों का स्पष्ट मत है कि जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ और खरतर बिरुद मिलने का समय वि. सं. १०२४ का था पर यह बात न जाने किस बेहोशी में लिखी गई थी ? क्योंकि वि. सं. १०२४ में न तो जिनेश्वरसूरि का जन्म हुआ था और न राजा दुर्लभ संसार में आया था। शायद यह बात स्वप्न की हो और वह स्वप्न की बात लिपि बद्ध कर दी हो या किसी पूर्व भव में शास्त्रार्थ हुआ हो।

खरतरों के अज्ञान के पर्दे कुछ दूर हुए तब जाकर उनको भान हुआ कि हमारे पूर्वजों की भूल जरुर हुई है; अतः इस भूल को सुधारने के लिए आधुनिक खरतरों ने इसका एक रास्ता ढूँढ़ निकाला है कि सं. १०२४ में १००० तो ठीक है पर ऊपर के २४ का भाव यह है कि बीस के चार गुना करने से ८० होता है, अतः शास्त्रार्थ का समय १०८० का था। पर इस रास्ते में भी खरतरों के पूर्वजों ने ऐसे रोड़े डाले हैं कि बिचारे आधुनिक खरतर एक कदम भी आगे नहीं रख सकते हैं देखिये वह कांटे हैं या रोड़े :–

श्रीपत्तने दुर्ल्लभराज राज्ये विजित्य वादे मट्ठवासि सूरीन।
४ २ ० १
वर्षेऽब्धि पक्ष भ्रंशशि प्रमाणे लेभेऽपियैः खरतरोबिरुद॥

''वा. पूर्ण. सं. खरतर पट्टावली, पृष्ठ ३''

इस खरतर पट्टावलीकार ने संकेत शब्द में स्पष्ट १०२४ का समय लिखा है, जिसको आधुनिक खरतर किसी भी उपाय से १०८० कर ही नहीं सकते हैं। क्योंकि 'दससय चउबीस' के लिये तो विकल्प कर दिया कि २० को चार गुना करने से ८० होता है पर 'वर्षेऽब्धि पक्ष भ्रंशसि (१०२४), इसके लिये क्या करेंगे? अर्थात् खरतरों के पूर्वजों के मतानुसार जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ एवं खरतर विरुद का समय वि. सं. १०२४ का मानना ही पड़ेगा और १०२४ में न हुआ था दुर्लभ राजा का जन्म और न हुआ था जिनेश्वरसूरि का अवतार, तो शास्त्रार्थ और खरतर विरुद का तो पता ही कहाँ था?

अब रहा दूसरा विकल्प वि. सं. १०८० का। यह भी कल्पना मात्र ही है, कारण वि. सं. १०८० में जिनेश्वरसूरि जावलीपुर में स्थित रह कर आचार्य हरिभद्रसूरि के अष्टकों पर वृत्ति रच रहे थे, ऐसा खुद जिनेश्वरसूरि ने ही लिखा है। तब दुर्लभ राजा का राज वि. सं. १०६६ से १०७८ तक रहा।[१]

अर्थात् १०८० में दुर्लभ राजा का राज ही पाटण में नहीं था फिर शास्त्रार्थ किसने किया और खरतर बिरुद किसने दिये? शायद राजा दुर्लभ मर कर भूत हो गया हो और वह दो वर्ष से वापिस आकर जिनेश्वरसूरि को

१. खरतरों ने पाटण में दुर्लभ राजा का राज वि. सं. १०६६ से १०७८ होने में कुछ शंका करके एक गुजराती पत्र का प्रमाण दिया है, वि. सं. १०७८ तक का कहना शंकास्पद है इत्यादि। यह केवल भद्रिकों को भ्रम में डालने का जाल है। क्योंकि आज अच्छे अच्छे विद्वानों एवं संशोधकों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि पाटण में राजा दुर्लभ का राज ठीक वि. सं. १०७८ तक ही रहा था, इसके लिए देखों - पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का लिखा 'सिरोही राज का इतिहास'-आपने दुर्लभ का राज सं. १०७८ तक का लिखा है तथा 'गुर्जरवंश भूपावली' में दुर्लभ का राज वि. सं. १०७८ तक ही रहा था बाद उसका पट्टधर भीम राजा हुआ। अब खरतरों को कुछ भान होने लगा तो उन्होंने दुर्लभ के स्थान में भीम लिखना शुरु किया है, जैसे खरतर यति रामलालजी ने १०८० में दुर्लभ (भीम) और खरतर-वीरपुत्र आनन्दसागरजी ने श्री कल्पसूत्र के हिंदी अनुवाद में भी वि. सं. १०८० में राजा दुर्लभ (भीम) ऐसा लिखा है। इससे यही सिद्ध होता है कि वि. सं. १०८० में पाटण में दुर्लभ का राज नहीं किंतु राजा भीम का राज था। पर इनके पूर्वजों ने १०८० राजा दुर्लभ का राज लिख दिया, अतः उन्होंने दुर्लभ (भीम) अर्थात् दुर्लभ का कार्य कोष्टक में भीम कर दिया। इसका मतलब यही है कि वि.सं. १०८० में राजा दुर्लभ का नहीं पर राजा भीम का ही राज था। अतः खरतरों के लेख से खरतरों की पट्टावलियां जिसमें जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ एवं खरतर बिरुद का समय वि. सं. १०२४ तथा १०८० का ही लिखा है, वह कल्पित एवं मिथ्या साबित होती है। अब इस विषय में दूसरे प्रमाणों की जरुरत ही नहीं है।

खरतर बिरुद दे गया हो ? वरन् खरतरों का लिखना बिल्कुल मिथ्या है और यह बात आचार्य प्रभाचन्द्रसूरि के लिखे 'अभयदेवसूरि प्रबन्ध' और संघतिलकसूरि के लिखे 'दर्शन सप्ततिका' ग्रन्थों के लेख से स्पष्ट सिद्ध भी हो चुका है कि जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे, पर न तो वे राजा दुर्लभ की सभा में पधारे, न किसी चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ और न राजा दुर्लभ ने जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद ही दिया था। किन्तु खरतर शब्द की उत्पत्ति तो जिनदत्तसूरि की खर-प्रकृति से हुई थी और खरतर शब्द उस समय अपमान के रुप में समझा जाता था। यही कारण है कि कई वर्षों तक इस खरतर शब्द को किसी ने भी नहीं अपनाया। बाद दिन निकलने के जिनकुशलसूरि के समय वह अपमान जनित खरतर शब्द गच्छ के रुप में परिणित हो गया। जैसे ओसवालों में ढेढ़िया, बलाई, चंडालियादि जातियां हैं वे नाम उत्पन्न के समय तो अपमान के रुप में समझे जाते थे पर दिन निकलने के बाद वे ही नाम खुद उन जातियों वाले ही लिखने लग गये कि हम ढेढ़िये, बलाइ, चंडालिए हैं। यही हाल खरतरों का हुआ है।

अन्त में मैं अपने पाठकों से इतना ही निवेदन करुंगा कि आप सज्जनों ने खरतरमतोत्पत्ति भाग पहला-दूसरा आद्योपान्त पढ़ लिया है जिसमें मैंने प्रायः खरतरमतानुयायियों के पुष्कल प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि वि. सं. १०८० में राजा दुर्लभ का पाटण में राज तो क्या पर उसका अस्तित्व भी नहीं था। हाँ इस समय के पूर्व कभी जिनेश्वरसूरि पाटण गए थे। ऐसा प्रभाविकचरित्र और दर्शनसप्ततिका ग्रन्थों से पाया जाता है, पर न तो वे राजसभा में गए न किसी चैत्यवासियों के साथ उनका शास्त्रार्थ हुआ और न किसी राजा ने खरतरबिरुद ही दिया था। खरतरों ने केवल कँवला और खरतर शब्द के लिये यह कपोलकल्पित कल्पना कर डाली है पर इस इतिहास युग में ऐसी कल्पना कहाँ तक चल सकती है ? आखिर सत्य के सूर्य के सामने ऐसे मिथ्या लेख रुपी अन्धकार को पलायन होना ही पड़ता है, जिसको मैंने ठीक तौर से बतला दिया है।

अब पाठकों को यह जानने की उत्कंठा अवश्य होगी कि खरतर शब्द की उत्पत्ति कब, क्यों और किस पुरुष द्वारा हुई ? इसके लिए मैं खरतरमतोत्पत्ति तीसरे भाग को लिख कर शीघ्र ही आपकी सेवा में उपस्थित करुंगा, जिसके पढ़ने से आपको भली भांति रोशन हो जाएगा कि खरतरमत की उत्पत्ति क्यों और कैसे हुई है ?

इति खरतरमतोत्पत्ति भाग दूसरा समाप्तम्

जैन इतिहास ज्ञानभानुकिरण नं. २४

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः

खरतरमतोत्पत्ति-भाग तीसरा

लेखक

इतिहासप्रेमी मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु. फलौदी (मारवाड़)

ओसवाल संवत् २३९६

वीर संवत् २४६६ (वि. सं. १९९६) ई. सं. १९३९

प्रथमावृत्ति
५००

मूल्य
दो आना

श्री जैन इतिहास ज्ञानभानुकिरण नं. २४
श्रीमद्‌रत्नप्रभसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः

खरतरमतोत्पत्ति–भाग तीसरा

'खरतरमतोत्पत्ति भाग पहले–दूसरे' में प्रायः खरतरानुयायियों के प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर बतलाया है कि खरतरमत की उत्पत्ति न तो जिनेश्वरसूरि द्वारा हुई है और न अभयदेवसूरि ही खरतर थे। अब तीसरे भाग में यह बतलाया जायेगा कि खरतरमत की उत्पत्ति किस समय, किस कारण और किस पुरुष द्वारा हुई थी।

खरतरमत की नींव डालनेवाला मूल पुरुष था जिनवल्लभसूरि, अतः पहले जिनवल्लभसूरि का संक्षिप्त परिचय करवा देना बहुत जरुरी है।

जिनवल्लभ कौन था इस विषय का सबसे प्राचीन उल्लेख ''गणधर–सार्द्धशतक'' नामक ग्रन्थ में मिलता है जिसके रचयिता जिनदत्तसूरि हैं और उस ग्रन्थ पर जिनपतिसूरि के शिष्य सुमति गणि ने बृहद्‌वृत्ति रची हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में जिनवल्लभ के विषय में लिखा है कि :–

''इतश्च तस्मिन् समये आसिकाभिधानदुर्गवासी कूर्च्चपुरीय जिनेश्वराचार्य्य आसीत्, तत्र ये श्रावकपुत्रास्ते सर्वेऽपि तस्य मठे पठन्ति, तत्र च जिनवल्लभ नामा श्रावकपुत्रोऽस्ति, तस्य जनको दिवंगतः, तं जननी प्रतिपालयति, पाठयोग्यश्चासौ प्रक्षिप्तः तया तत्र मठे पठितुं... ततस्तं द्राक्षाखर्जूराक्षोटखण्डमण्डकमोदकादिदानपुरस्सरं वशीकृत्य तन्मातरं मधुरवचनैः संबोधयामास, यदुत एष त्वदीयपुत्रोऽत्यन्तप्राज्ञः मूर्तिमान् सात्त्विकः, किं बहुना ?, आचार्यपदयोग्योऽस्ति, तदेनमस्मभ्यं प्रयच्छ, एषा तावकीना देवकुलिका अन्येषां च निस्तारको भविष्यतीत्यत्रार्थे नान्यथा किंचिद्वक्तव्यमित्यभिधाय द्रम्मशतपंचकं तस्या हस्ते प्रक्षिप्य क्षिप्रं दिदीक्षे, ([१]गणधर सार्द्धशतक)
प्र. प., पृष्ठ २३१

---

१. जिनदत्तसूरि का स्वर्गवास वि. सं. १२११ में हुआ, जिन्होंने गणधर सार्द्धशतक ग्रन्थ की रचना की और वि. सं. १२२३ में जिनपतिसूरि को सूरि पद मिला और आपके शिष्य सुमति गणि ने गणधर सार्द्धशतक पर बृहद्‌वृत्ति रची, अतः मूलग्रन्थ और वृत्ति का समय बिलकुल समीप का समय है।

अर्थात् आसिका दुर्ग में कुर्चपुरागच्छीय जिनेश्वरसूरि चैत्यवासी आचार्य रहता था। उनके उपाश्रय में बहुत से श्रावकों के लड़के पढ़ते थे। उसमें एक वल्लभ नामक लड़का ऐसा भी था कि जिस का पिता तो गुजर गया था और उसकी माता ने लड़के को वहाँ पढ़ने के लिये भेजा था।... जिनेश्वरसूरि ने उस बिना बाप के लड़के को दाखें, खजूर, मोदक वगैरह से प्रलोभन कर शिष्य बनाने का निश्चय कर लिया। जब उसकी माता ने कुछ कहना सुनना किया तो उसको ५०० द्रव्य मूल्य का देकर उस लड़के को दीक्षा दे दी और उसका नाम वल्लभ रख दिया। इससे पाया जाता है कि वल्लभ ने वैराग्य से दीक्षा नहीं ली पर केवल दाखें, खजूरादि खाने पीने के लिये ही दीक्षा ली थी तथा उस लड़के की माता को भी एक छोटासा लड़के का मूल्य पाँच सौ द्रव्य हाथ लग गया। इस प्रकार मूल्य के शिष्यों से शासन को क्या क्या नुकसान होता है वह आगे चल कर आप स्वयं पढ़ लेंगे।

जिस गुरुने वल्लभ को दीक्षा देकर पढ़ा लिखा कर थोड़ासा होशियार किया, बाद उसी गुरु से क्लेश कर गुरु को छोड़ कर वल्लभ वहाँ से निकल गया। कहा है कि :-

जिणवल्लह कोहाओ कुच्चयरगणाओ खरयरया[१] (वृद्ध-सं. पट्टा-वली)-जिनवल्लभ क्रोधादितिवचनेन जिनवल्लभो मूलोत्सूत्रप्ररूपको दर्शितः क्रोध शब्देन निजगुरुणा सह कलहः सूचितः तेनायं निजगुरुणा चैत्यवासी जिनेश्वरेण सह कलहं कृत्वा निर्ग्गतो न पुनर्वैराग्यरङ्गात्।

प्रवचन परीक्षा, पृष्ठ ३१४

मूल्य का खरीदा हुआ शिष्य इससे अधिक क्या कर सकता है? खैर, वल्लभ गुरु को छोड़ कर खरतरों के मतानुसार अभयदेवसूरि के पास आया। अभयदेवसूरि ने अपनी उदारवृत्ति से वल्लभ को थोड़ा बहुत आगमों का ज्ञान करवाया, पर उस समय अभयदेवसूरि को यह स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि मैं आज इस चैत्यवासी वल्लभ को ज्ञान देता हूँ वह आगे चल कर 'पयपानं भुजंगानां केवलं विष वर्धनम्' अर्थात् वल्लभ इस प्रकार उत्सूत्र की प्ररुपणा कर शासन में भेद डाल कर नया मत निकालेगा।

एक समय का जिक्र है कि अभयदेवसूरि का अन्त समय नजदीक था उस

---

१. जिनवल्लभ ने कुर्च्चपुरा गच्छ को छोड़ कर अपना विधिमार्ग नामक नया मत निकाला। आगे चलकर उस विधिमार्ग का रुपान्तर नाम खरतर कहलाया। अतः पट्टावलीकार का आशय खरतर शब्द से विधिमार्ग का ही समझना चाहिये।

समय जिनवल्लभ ने सूरि बनने की कोशिश की होगी, परन्तु :-

''यतो देवगृहनिवासी शिष्य इति हेतोर्गच्छस्य सम्मतं न भविष्यतीति ततो गच्छाधारको वर्धमानाचार्य्यः स्वपदे निवेसितः''

गणधर सार्द्धशतक प्र. प., पृष्ठ २३५

इसमें स्पष्ट लिखा है कि जिनवल्लभ चैत्यवासी आचार्य का शिष्य होने से गच्छ वाले वल्लभ को पदाधिकार देने में सम्मत नहीं होंगे, अतः अभयदेवसूरि ने अपने पट्टधर वर्धमानसूरि को आचार्य बना कर स्वर्गवास कर दिया।

इसके साथ ही ग्रन्थकर्ता ने यह भी लिखा है कि

''जिनवल्लभगणेश्च क्रियोपसंपदं दत्तवन्त''

ग. सा. शतक प्र. प., पृ. २३५

यह कदापि संभव नहीं होता है, कारण यदि अभयदेवसूरि ने वल्लभ को उपसंपद की क्रिया करवा दी होती तो गच्छवाले उसको चैत्यवासी का शिष्य कह कर असम्मत कदापि नहीं होते। दूसरे अभयदेवसूरि अपनी चिरआयुः में ही वल्लभ को क्रियोपसंपद नहीं करवाई तो अन्त समय तो गच्छवाले जिनवल्लभ से खिलाफ होते हुये पूर्वोक्त क्रिया कैसे करा सकते ? देखिये इस विषय के और भी प्रमाण मिलते हैं।

''जिनवल्लभस्तावत् क्रीतकृतोऽपिचैत्यवास्यपि प्रव्रज्योपस्थानोपधान-शून्यः न ही जिनवल्लभेन कस्यापिसंविग्नस्य पार्श्वे प्रव्रज्यागृहीता, तदभा-वाच्च न केनाप्युपस्थापितः उपस्थापनाऽभावान्नोपधानमपि आवश्यकादि श्रुताराधनतपोविशेषयोगानुष्ठानाद्यपि न जातम्।

प्र. प., पृष्ठ २६१

इस प्रमाण से भी यही साबित होता है कि जिनवल्लभ ने चैत्यवासी गुरु को छोड़ कर आने के बाद किसी के भी पास पुनः दीक्षा नहीं ली थी। यदि जिनवल्लभ किसी संविग्नाचार्य के पास दीक्षा लेकर योगद्वाहन कर लेते तो अभयदेवसूरि के साधु यह कह कर वल्लभ का विरोध नहीं करते कि यह चैत्यवासी गुरु का शिष्य है।

कितनेक लोग गच्छराग के कारण यह भी कहते हैं कि अभयदेवसूरि अपनी अन्तिमावस्था में प्रश्नचंद्रसूरि को एकान्त में कह गये थे कि मेरे बाद वल्लभ को आचार्य बना देना इत्यादि।

पर यह बात बिल्कुल बनावटी एवं जाली मालूम होती है, कारण अभयदेवसूरि अपनी विद्यमानता में वर्धमानसूरि को अपने पट्टधर बना गये तो फिर एकान्त में

प्रश्नचंद्रसूरि को क्यों कहा था कि वल्लभ को मेरा पट्टधर बनाना ? शायद इस लेख के लिखने वाले का इरादा अभयदेवसूरि पर मायाचारी या समुदाय में फूट डलवाने का कलंक तो लगाना नहीं था न ?

जिनवल्लभ ने न ली किसी के पास दीक्षा, न किया योगोद्वाहन, अतः वह मण्डली में बैठने योग्य भी नहीं था तो उसको सूरि पद देकर अभयदेवसूरि का पट्टधर कैसे बनाया जा सकता ?

खैर प्रश्नचन्द्रसूरि को एकान्त में अभयदेवसूरि कह भी गये हों तो फिर प्रश्नचंद्रसूरि ने वल्लभ को आचार्य क्यों नहीं बनाया ? शायद यह कहा जाय कि प्रश्नचंद्रसूरि की आयु अधिक नहीं थी और वे देवभद्राचार्य को कह गये थे कि वल्लभ को अभयदेवसूरि का पट्टधर बना देना, पर देवभद्राचार्य का दीर्घ आयुष्य होने पर भी २९ वर्ष तक वल्लभ अकेला भ्रमण करता रहा, पर देवभद्र ने उनको आचार्य नहीं बनाया। इसका क्या कारण था ? वास्तव में न तो अभयदेवसूरि ने प्रश्नचंद्रसूरि को कहा था और न प्रश्नचंद्रसूरि ने देवभद्र को ही कहा था। केवल पिछले लोगों ने जिनवल्लभ के निगुरापने के कलंक को छिपाने के लिये यह झूठ-मूठ ही लिख डाला है कि अभयदेवसूरि ने प्रश्नचंद्र को एकान्त में कहा और प्रश्नचंद्रसूरि ने देवभद्र को कहा कि वल्लभ को अभयदेवसूरि का पट्टधर बनाना जिससे अभयदेवसूरि के पट्टपर दो आचार्य होकर आपस में फूट पड़ जाय। क्योंकि अभयदेवसूरि के पट्टधर वर्धमानसूरि विद्यमान थे और यह बात स्वयं वल्लभ ने भी लिखी है।

अभयदेवसूरि के स्वर्गवास के बाद २९ वें वर्ष अर्थात् वि. सं. ११६४ में वल्लभ चित्तौड़ गया था और वहां वल्लभ ने चितौड़ के किले पर चातुर्मास किया। वहां पर वल्लभ ने क्या किया जिसके विषय में खास खरतरों के माननीय ग्रन्थ गणधर सार्द्धशतक अन्तर्गत प्रकरण व बृहद्वृत्ति बतलाती है कि :-

''तत्र कृतचातुर्मासिककल्पानां श्रीजिनवल्लभवाचनाचार्याणामाश्विन-नमासस्य कृष्णपक्षत्रयोदश्यांश्रीमहावीरदेवगर्भापहारकल्याणकं समागतं। ततः श्राद्धानां पुरो भणितं जिनवल्लभगणिना। भोः श्रावका ! अद्य श्रीमहावीरस्य षष्ठं गर्भापहारकल्याणकं ''पंचहत्थुत्तरेहोत्था साइणा परि-निव्वुडे'' इति प्रकटाक्षरैरेवसिद्धान्ते प्रतिपादनादन्यच्च तथाविधं किमपि विधिचैत्यं नास्ति, ततोऽत्रैव चैत्यवासिचैत्ये गत्वा यदिदेवा वंद्यंते तदा शोभनं भवति, गुरुमुखकमलविनिर्गतवचनाराधकैः श्रावकैरुक्तं भगवन् यद्युष्माकं सम्मतं तत्क्रियते, ततः सर्वे पौषधिकाः श्रावका सुनिर्मलशरीरा निर्मलवस्त्रा

गृहीतनिर्मलपूजोपकरणा गुरुणा सह देवगृहे गंतुं प्रवृत्ताः। ततो देवगृह-स्थितयार्यिकया गुरुसमुदायेनागच्छतो गुरून्दृष्ट्वा पृष्ठं को विशेषोऽद्यके श्राद्धेनापि कथितं वीरगर्भापहारषष्ठकल्याणककरणार्थमेते समागच्छंति, तया चिंतितं पूर्वं केनापि न कृतमेतदेतेऽधुना करिष्यन्तीति न युक्तं। पश्चा-त्संयती देवगृहद्वारे पतित्वा स्थिता द्वारप्राप्तान् प्रभूनवलोक्योक्तमेतया दुष्टचित्तया मया मृतया मृतया यदि प्रविशत तादृगप्रीतिकं ज्ञात्वा निर्वर्त्य स्वस्थानं गताः पूज्याः ! श्राद्धैरुक्तं भगवन्नस्माकं बृहत्तराणि सदनानि संति, ततएकस्य गृहोपरि चतुर्विंशतिपट्टकं धृत्वा देववंदनादिसर्वं धर्मप्रयोजनं क्रियते, षष्ठकल्याणकमाराध्यते। गुरुणा भणितं तत्किमत्रायुक्तं। तत आराधितं विस्तरेण कल्याणकं''

गणधर सार्द्धशतक अन्तर्गत प्रकरण, पृष्ठ १८

यही बात जिनपतिसूरि का शिष्य सुमतिगणि ने गणधर सार्धशतक की बृहद् वृत्ति में लिखी हैं :-

इसका भावार्थ यह है कि जिनवल्लभ को आश्विनकृष्ण त्रयोदशी के दिन श्री महावीर के गर्भापहारकल्याणक का लेख प्राप्त हुआ। तब श्रावकों के सामने जिनवल्लभ कहने लगा-भो! श्रावको! आज श्रीमहावीर देव का गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक जैसे 'पंचहत्थुत्तरे होत्था साइणापरिनिव्वुडे' ऐसा प्रकट अक्षर सिद्धान्त में प्रतिपादित है, इसकी आराधना विधि के लिये यहांविधि चैत्य तो है नहीं इस लिये चैत्यवासियों के [१]चैत्य (मंदिर) में चल कर यदि देववंदन करें तो अच्छा होगा। गुरुमुख के वचन सुन कर श्रावकों ने कहा कि आप करें उसमें हमारी सम्मति है। बाद गुरु आदेश से वे सब श्रावक निर्मलशरीर, निर्मलवस्त्र और निर्मल पूजोपकरण लेकर गुरु के साथ मन्दिर जाने को प्रवृतमान हुये, पर उस मन्दिर में एक आर्यका थी, उसने श्रावकों के साथ गुरु को आते हुए देख कर पूछा कि आज क्या विशेषता है? इस पर किसी ने कहा कि वीर के गर्भापहार नामक छट्ठे कल्याणक की आराधना के लिये हम सब आ रहे हैं। इस पर उस आर्यका ने सोचा कि पूर्व किसी ने भी छट्ठा कल्याणक न तो कहा और न देववन्दनादि किया है अतः यह अयुक्त है। जब यह बात अन्य संयतियों को खबर हुई तो वे लोग देवगृहद्वार पर आकर खड़े हो गये और जिनवल्लभ की उत्सूत्र प्ररुपणा का सख्त विरोध करने लगे इत्यादि। फिर भी प्रभु के दर्शन करने पर वे शान्त होकर अपने

---

१. जिस चैत्य को जिनवल्लभ ने अवन्दनीक ठहराया था आज उस चैत्य को वन्दन करने का उपदेश दे रहा है।

अपने स्थान पर चले गये। बाद श्रावकों ने गुरु से प्रार्थना की कि अपना मकान बहुत बड़ा है उस पर एक चौबीसी पट्ट रख कर वहाँ ही सब क्रिया किया करें इत्यादि।

इस लेख से साबित होता है कि जिनवल्लभ ने महावीर के गर्भापहार रुप छट्ठा कल्याणक की चित्तौड़ में नयी प्ररुपणा की थी जो वल्लभ के निम्नलिखित वचन इस को साबित कर रहे हैं। जैसे कि :-

१. '**समागतं**' यह शब्द बतला रहा है कि गर्भापहार का कल्याणक केवल एक वल्लभ को ही मिला। वह भी उसी दिन क्योंकि जिनवल्लभ की उस समय करीबन ६५ वर्ष की उम्र होगी जब उसने बचपन में ही दीक्षा ली तो ५५-६० वर्ष की दीक्षा पाली और कई बार कल्पसूत्र भी बांचा होगा, उसमें तो उनको गर्भापहार कल्याणक नहीं मिला; केवल उस दिन ही 'समागत' हुआ अर्थात् मिला अतः यह उत्सूत्र प्ररुपणा उसी दिन की गई थी।

२. '**प्रकटाक्षरैरेव**' यह शब्द बतला रहा है कि भगवान सौधर्मस्वामि से अभयदेवसूरि तक सैंकड़ों आचार्य हुए, उन्होंने ''पंचहत्थुत्तरे होत्था साइणपरिनिव्वुडे'' यह अक्षर नहीं देखे हों और ५५-६० वर्ष तक वल्लभ ने भी नहीं देखे, परन्तु आश्विन कृष्णत्रयोदशी के दिन वल्लभ को ही वे प्रकटाक्षर दीख पड़े?

३. '**भोः श्रावका ! अद्य महावीरस्य षष्टं गर्भापहार कल्याणकं**' इसमें अद्य शब्द यह अर्थ बतला रहा है कि गर्भापहार को कल्याणक उसी दिन वल्लभ ने माना है तब ही तो श्रावकों की सम्मति लेनी पड़ी वरना सम्मति की क्या जरुरत थी?

४. वहां विधिचैत्य न होने पर अविधिचैत्य (चैत्यवासियों के चैत्य में) देववन्दन करना यह भी बतला रहा है कि यह प्रवृत्ति वल्लभ ने नयी चलाई थी।

५. मंदिर में रही आर्यका पूछती है कि आज क्या विशेष है? जब यह प्रवृत्ति नई नहीं होती तो आर्यका को इतना पूछने की जरुरत ही क्या थी? जब आर्यका को मालूम हुआ कि गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक का देववंदन करेगा तो उसने सोचा की इसके पूर्व गर्भापहार को किसी ने भी कल्याणक नहीं माना, अतः जिनवल्लभ ने यह नयी प्ररुपणा क्यों की है।

६. '**पूर्व केनापि न कृतमेतदेतेऽधुना करिष्यंतीति न युक्तं**' इससे भी निश्चय होता है कि पूर्व किसी ने भी गर्भापहार को कल्याणक नहीं माना था इस लिये ही आर्यका ने कहा था कि अयुक्तं-

७. '**पश्चात् संयति देवगृहद्वारे पतित्वा स्थिता**' यह शब्द बतला रहा है

कि वल्लभ की यह प्रवृत्ति उत्सूत्र रुप नयी थी कि सब संयति इसका विरोध करने को मंदिर के द्वार पर आकर उपस्थित हो गये।

इन उपरोक्त शब्दों के आशय से पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि वल्लभ ने महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा कर तीर्थंकर गणधर और पूर्वाचार्यों की आज्ञा का भंग कर वज्र पाप की पोट अपने सिर पर उठाई है, इतना ही क्यों पर कई भद्रिक जीवों को भी अपने अनुयायी बना कर उनको भी संसार में डुबा दिया है।

अभयदेवसूरयः स्वर्गं गताः प्रसन्नचन्द्राचार्येणापि प्रस्तावाऽभावात् गुरोरादेशो न कृतः केवलं श्रीदेवभद्राचार्याणामग्रे भणितं सुगुरूपदेशतः प्रस्तावे युष्माभिः सफलीकार्यः। इतश्च पत्तनादात्मानातृतीयः सिद्धान्तविधिना जिनवल्लभगणिश्चित्रकूटे विहृतः तत्र चामुंडाप्रतिबोधता साधारणश्राद्धस्य परिग्रहप्रमाणप्रदतं श्रीमहावीरस्य गर्भापहारऽभिधं षष्टं कल्याणकं प्रकटितं। क्रमेण साधारणश्रावकेण श्रीपार्श्वनाथ श्रीमहावीरदेवगृहद्वयं कारितं।

गणधर सार्द्धशतक लघुवृत्ति

इस लेख में स्पष्ट लिखा है कि जिनवल्लभ ने चित्तौड में जाकर चामुंडादेवी को बोध दिया, साधारण श्रावक को परिग्रह का परिमाण कराया और महावीर का गर्भापहार नामक छठा कल्याणक प्रगट किया इत्यादि। इससे निश्चय हो जाता है कि जिनवल्लभ ने यह जैनआगमों के एवं पूर्वाचार्यों की आज्ञा को भंग कर गर्भापहार नाम का छठा कल्याणक प्रगट किया, जिसको उत्सूत्र प्ररुपणा कही जा सकती है। यदि ऐसा न होता तो प्रगट शब्द की जरुरत ही क्या थी ?

असहायेणाऽवि विहि पसहिउ जो न सेससूरीहिं।
लोअणपहेवि वच्छइ पुण जिणमयण्णूणं ॥ १२२ ॥

व्याख्या। ततो येन भगवता असहायेनापि एकाकिनापि परकीय-सहायनिरपेक्षं अपिर्विस्मये अतीवाश्चर्यमेतद्विधिरागमोक्तः षष्ठकल्याणकरुप-श्चेत्यादि विषयःपूर्वप्रदर्शितश्च प्रकारः प्रकर्षेणेदमित्थमेव भवति योऽत्रार्थेऽस-हिष्णुः सवावदीत्विति स्कंधास्फालनपूर्वकं साधितः सकल प्रत्यक्षं प्रकाशितः यो न शेषसूरीणामज्ञात सिद्धान्तरहस्यानामित्यर्थः लोचनपथेऽपि दृष्टिमार्गे आस्तां श्रुतिपथे व्रजति याति। उच्यते पुनर्जिनमतज्ञैर्भगवद्वचन वेदिभिरिति।

गणधरसार्द्धशतक मूलगाथा १२२ तथा बृहद् वृत्ति

इस लेख में भी साफ साफ लिखा है कि जिनवल्लभ ने चित्तौड में कंधा ठोक कर महावीर के गर्भापहार नामक छठा कल्याणक की प्ररुपणा की, यदि यह

प्रवृत्ति नई न होती तो जिनवल्लभ को कंधे ठोकने की क्या जरुरत थी जब खास खरतरों का माननीय ग्रन्थ इस बात को प्रमाणित कर रहा है तो फिर दूसरे प्रमाणों की आवश्यकता ही क्या है? यह तो हुए खरतरों के घर के प्रमाणों की बात। अब आगे चलकर हम जैन शास्त्रों की ओर दृष्टिपात कर देखेंगे कि जैनागमों में भगवान् महावीर के कल्याणक पांच बतलाते हैं या छः ?

जिनवल्लभसूरि ने जिस कल्पसूत्र के पाठ पर अपने नये मत की नींव डाली हैं पर वल्लभ उस पाठ के आशय को ही नहीं समझा है। देखिये-

''**पंच हत्थुत्तरे होत्था साइणा परिनिव्वुडे**'' अर्थात् पंच हत्थुतरे और छट्ठा स्वाति नक्षत्र को देख कर छठ्ठा गर्भापहार कल्याणक की प्ररुपणा कर दी परन्तु श्री आचारांगसूत्र तथा कल्पचूर्णि वगैरह शास्त्रों ने नक्षत्र की गिनती करते हुए छ वस्तु बतलाई है न कि छः कल्याणक। यदि जिनवल्लभ जम्बुद्वीप प्रज्ञप्तिसूत्र को देख लेता तो वहां ही समाधान हो जाता, कारण प्रस्तुत सूत्र में भी भगवान ऋषभदेव के लिये भी छः नक्षत्र कहा है।

''**उसभेणं अरहा कोसलिए पंच उत्तरासाढ़े अभी च छट्ठे होत्था**'' जैसे महावीर के पंच हत्थुत्तरा और छट्ठा स्वाति नक्षत्र बतलाया है वैसे ही ऋषभदेव के पंच उत्तराषाढा और छट्ठा अभीच नक्षत्र बतलाया है। यदि महावीर के छः नक्षत्र होने से छः कल्याणक माना जाय तो ऋषभदेव के छः नक्षत्र बतलाये हैं वहाँ भी छः कल्याणक मानना चाहिये। यदि ऋषभदेव के राज्याभिषेक को कल्याणक नहीं माना जाय तो महावीर के भी गर्भापहार को कल्याणक नहीं मानना चाहिये? पर यह तो सरासर अन्याय है कि ऋषभदेव के छः नक्षत्र कहने पर भी राज्याभिषेक को छोड़ कर पांच कल्याणक मानना और महावीर के गर्भापहार जो नीच गौत्र के उदय से हुआ है जिसको कल्याणक मानना। लीजिये स्वयं शास्त्रकार इस विषय के लिये क्या कहते हैं-

ण खलु एयं भूयं, ण भव्वं, ण भविस्सं, जण्णं अरहंता वा, चक्कवट्टी वा, बलदेवा वा, वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा, पंतकुलेसु वा, तुच्छकुलेसु वा, दरिद्दकुलेसु वा, किविणकुलेसु वा, भिक्खागकुलेसु वा, माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा ॥ १७ ॥ एवं खलु अरिहंता वा, चक्कवट्टी वा, बलदेवा वा, वासुदेवा वा, उग्गकुलेसु वा, भोगकुलेसु वा, राइण्णकुलेसु वा, इक्खागकुलेसु वा, खत्तिअकुलेसु वा, हरिवंसकुलेसु वा, अण्णयरेसु वा, तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुलवंसेसु आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आयाइस्संति वा ॥ १८ ॥ अत्थि पुण एसेवि भावे लोगच्छेरयभूए अणंताहिं

उस्सप्पिणि ओसप्पिणीहिं वइक्कंताहिं समुप्पज्जइ''

अर्थ–निश्चय कर के ऐसा न हुआ होता और न होगा जो कि तीर्थंकर चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, अंतकुल, प्रांतकुल, तुच्छ कुल, दरिद्रकुल, कृपणकुल, भिक्षुकुल, ब्राह्मणकुल में आया आवे और आवेगा परन्तु निश्चय कर के अरिहन्त चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव उग्रकुल, भोगकुल, राजनकुल, इक्ष्वाकुकुल क्षत्रिय कुल, हरिवस कुल इनके अलावा और भी विशुद्ध जाति कुल में आया आवे और आवेंगे परन्तु यह तो एक आश्चर्यभूत अनन्तकाल से ऐसी बात होती है।

जबकि ब्राह्मणादिक कुल में तीर्थंकरों का आना अनन्तकाल से आश्चर्य बतलाया है तो उसको कल्याणक कैसे माना जाय ? आगे भगवान महावीर के लिये स्वयं शास्त्रकार फरमाते हैं कि :-

णामगुत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइस्स अणिज्जिणणस्स उदएणं ।

अर्थात् नामगोत्र कर्म को क्षीण न करने से, न वेदने से, न निर्ज्जरा करने से, उदय में आया है यह बतलाते हैं कि महावीर ने किस भव में नीच गोत्र उपार्जन किया था।

मरीचिरपि तच्छ्रुत्वा हर्षोद्रेकात्त्रिपदीं आस्फोट्य नृत्यन्निदं अवोचत् । यतः–''प्रथमो वासुदेवोऽहं, मूकायां चक्रवर्त्त्यहं । चरमस्तीर्थराजोऽहं, ममाहो ! उत्तमं कुलम् ॥ १ ॥ आद्योऽहं वासुदेवानां, पिता मे चक्रवर्त्तिनाम् । पितामहो जिनेंद्राणां ममाहो ! उत्तमं कुलम् ॥ २ ॥ इत्थं च मदकरणेन नीचैर्गौत्रं बद्धवान् ।

मरीची ने मद कर के नीच गोत्र उपार्जन किया था वह उदय में आया। जिस नीच गौत्र उदय को कल्याणक मानना कितनी अनभिज्ञता की बात है, पर जिस जीव के मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का प्रबलोदय हुआ हो उसको कौन समझा सकता है ? यह तो हुई शास्त्र की बात अब पूर्वाचार्यों के कथन को देखिये।

खुद वल्लभ ने कहीं पर ऐसा नहीं लिखा है कि मैं अभयदेवसूरि का पट्टधर हूँ। पर पिछले लोगोंने उसको अभयदेवसूरि के पट्टधर होने की मिथ्या कल्पना कर डाली है पर देखिये अभयदेवसूरिने आचार्य हरिभद्रसूरि कृत पंचासक पर टीका रची है, उसमें महावीर के पाँच कल्याणक स्पष्टतया लिखे हैं, अतः यहाँ पर हरिभद्रसूरिकृत मूल पंचासक तथा उसकी टीका ज्यों की त्यों लिख देता हूं।

तेसुअ दिणेसु धण्णा, देविंदाई करिंति भत्तिणया ।
जिणजत्तादि विहाणा, कल्लाणं अप्पणो चेव ॥ ३ ॥

इअ ते दिणा पसत्था, ता सेसेहिंपि तेसु कायव्वं ।
जिणजत्तादि सहरिसं ते, य इमे वद्धमाणस्स ॥ ४ ॥
आसाढ़ सुद्धि छट्ठी, चित्ते तह सुद्धि तेरसी चैव ।
मग्गसिर कन्हा दसमी, वहसाहि सुद्ध दसमी य ॥ ५ ॥
कति कन्हा चरिमा, गब्भाई दिणा जहक्कमं एते ।
हत्थुत्तरजोएणं चउरो, तह साइणा चरमो ॥ ६ ॥
अहिगय तित्थविहिया, भगवन्ति निदंसिआ इमे तस्स ।
सेसाणवि एवं चिअ, निअ निअ तित्थेसु विण्णेआ ॥ ७ ॥

''आ. हरिभद्रसूरिकृत यात्रा पंचासक ग्रन्थ प. प., पृ. ३२८

उपरोक्त लेख में आचार्य हरिभद्रसूरि ने भगवान महावीर के कल्याणकों के लिए अलग अलग तिथियाँ लिखी हैं जैसे-

१. आषाढ़ शुक्ल ६ को महावीर का च्यवन कल्याणक।
२. चैत्र शुक्ल १३ को महावीर का जन्म कल्याणक।
३. मार्गशीर्ष कृष्ण १० को महावीर का दीक्षा कल्याणक।
४. वैशाख शुक्ल १० को महावीर का केवलज्ञान कल्याणक
५. कार्तिक कृष्ण १४ को महावीर का निर्वाण कल्याणक

अब आगे चल कर आप देखिये इसी पंचासक ग्रंथ पर अभयदेवसूरि ने टीका रची है जिसमें आप क्या लिखते हैं।

वर्धमानस्य-महावीरजिनस्य भवन्तीतिगाथार्थ आषाढ़ गाहाआषाढ़शुद्धषष्टी-आषाढ़मासशुक्लपक्षेषष्ठीतिथिरित्येकं दिनं १ एवं चैत्रमासे तथेति समुच्चये शुद्धत्रयोदश्येवेति द्वितीयं २ चैवेत्यवधारणे, तथा मार्गशीर्षकृष्णदशमीति तृतीय ३ वैशाखे शुक्ल दशमीति चतुर्थ ४ च शब्द समुच्चयार्थः कार्तिककृष्णेचरमो पंचदशीति पंचमं ५ एतानि किमित्यह-गर्भादिदिनानि (१) गर्भ (२) जन्म (३) निष्क्रमण (४) ज्ञान (५) निर्वाण-दिवसाः यथाक्रमं क्रमेणैव ।

अभयदेवसूरि कृत पंचासक टीका, प्र. प., पृ. ३३०

इस टीका में भी भगवान महावीर के पांचकल्याणक की पांच तिथियां अलग अलग लिखी हैं जैसे-

१. आषाढ़ शुक्ला ६ को महावीर का च्यवन कल्याणक।
२. चैत्र शुक्ला १३ को महावीर का जन्म कल्याणक।
३. मार्गशीर्ष कृष्णा १० को महावीर का दीक्षा कल्याणक।

४. वैशाख शुक्ला १० को महावीर का केवलज्ञान कल्याणक।

५. कार्तिक कृष्णा १५ को महावीर का निर्वाण कल्याणक।

आचार्य हरिभद्रसूरि और अभयदेवसूरि जैसे धुरंधर आचार्यों के उपरोक्त लेखों से पाठक अच्छी तरह से समझ गये होंगे कि उन्होंने भगवान महावीर के पांच कल्याणक माने हैं पर जिनवल्लभ के मिथ्यात्व मोहनीय का प्रबलोदय था कि उसने तीर्थंकर गणधर और पूर्वाचार्य के वचनों को उस्थाप कर छट्ठा गर्भापहारकल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा कर स्वयं और दूसरे भद्रिकों को दीर्घ संसार के पात्र बना दिये और उनके अनुयायी आज पर्यन्त इस उत्सूत्र प्ररुपणा का पक्ष कर अपने संसार की वृद्धि कर रहे हैं।

वल्लभ की उत्सूत्र प्ररुपणा से जैनसमाज में बड़ा भारी उत्पात मच गया और क्या सुविहित समाज और क्या चैत्यवासी समाज ने उत्सूत्र प्ररुपक जिनवल्लभ को संघ बाहर कर दिया। देखिये :-

''असंविग्न समुदायेन संविग्न समुदायः संघ बहिष्कृतः''

प्रवचन परीक्षा, पृष्ठ २४२

इस पर भी वल्लभ ने अपने हठ कदाग्रह को नहीं छोड़ा पर कहा जाता है कि-

'हारिया जुवारी दुणा खेले' जिनवल्लभ ने इस गर्भापहार कल्याणक के अलावा भी जिनवचनों में अनेक क्रियाओं की स्थाप उस्थाप करके अपना 'विधिमार्ग' नाम का एक नया मत स्थापन कर जैनसमाज में फूट कुसम्प के ऐसे बीज बो दिये कि जिसके फल जैनसमाज आज पर्यन्त चख ही रहा है।

पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि यदि वल्लभ उत्सूत्र प्ररुपक नहीं होता और अभयदेवसूरि का पट्टधर होता तो उसको अभयदेवसूरि के समुदाय से अलग मत निकालने की जरुरत ही क्या थी ? अतः जिनवल्लभ उत्सूत्र प्ररुपक था और उसने अभयदेवसूरि के समुदाय से अलग विधिमार्ग नाम का नया मत निकाला था।

अब तो जिनवल्लभ के दिल में केवल एक बात ही पूर्ण तौर से खटकने लगी कि इतना होने पर भी मैं आचार्य नहीं बन सका। दो तीन वर्ष तक इस बात की कोशिश में भ्रमण किया परन्तु किसी ने वल्लभ को आचार्य नहीं बनाया। कारण, एक तो वल्लभ उत्सूत्रवादी था, दूसरे श्रीसंघ ने उसको संघ बाहर भी कर दिया था, तीसरे नहीं था वल्लभ के कोई शिष्य और नहीं था कोई गुरु, चौथे वल्लभ के उत्सूत्र मत में अभी तक दो ही संघ थे, एक तो श्रमणसंघ जो एक वल्लभ, दूसरा श्रावक संघ जो चित्तौड़ के चन्द व्यक्ति जो वल्लभ को मानने वाले,

इनके अलावा साध्वी या श्राविका कोई नहीं थी। कारण, उस समय का महिला समाज अपने धर्म पर इतना दृढ़ था कि कई पुरुष वल्लभ के अनुयायी बनने पर भी उनकी औरतें धर्म से विचलित नहीं हुई पर वल्लभ ने अपने अनुयायी श्रावकों के घरों में क्लेश कुसम्प डलवा कर कुछ औरतों को अपने पक्ष में बनाकर बड़ी मुश्किल से तीन संघ बनाये, पर वल्लभ की मौजूदगी में उसके पास किसी स्त्री पुरुष ने दीक्षा नहीं ली। अतः वल्लभ के दो संघ और बाद में तीन संघ ही रहे।

जिनवल्लभ को आचार्य पद की अभिलाषा तो पहले से ही थी, फिर देवभद्र का संयोग मिल गया। पर यह समझ में नहीं आता है कि देवभद्राचार्य वल्लभ के धोखे में कैसे आ गये कि उसने वल्लभ को चित्तौड़ ले जा कर वि. सं. ११६७ में आचार्य बना दिया; वह भी अभयदेवसूरि का पट्टधर। जिस अभयदेवसूरि के स्वर्गवास को उस समय ३२ वर्ष हो गुजरे थे। यही कारण था कि उस समय की जनता वल्लभ को जारगर्भ के सदृश आचार्य कहा करती थी, बात भी ठीक थी कि जिस पति के देहान्त के बाद ३२ वर्षों से पुत्र जन्म ले उसको जारगर्भ न कहा जाय तो और क्या कहा जाय? यही हाल जिनवल्लभ का हुआ।

जैनसमाज की तकदीर ही अच्छी थी कि जिनवल्लभ आचार्य बनने के बाद केवल छः मास ही जीवित रहा। यदि वह अधिक जीवित रहता तो न जाने जैनसमाज के लिये क्या क्या उजाला कर जाता!!

किसी राजाने अपनी मौजूदगी एवं अपने हाथों से अपने योग्य पुत्र को राजतिलक कर सब अधिकार सुप्रत कर दिया, पर कोई रिश्वतखोरा एक चलते फिरते इज्जतहीन को लाकर राजा बना दे तो क्या जनता उसको राजा मान लेगी? हर्गिज नहीं। यही हाल जिनवल्लभ का हुआ, अतः वल्लभ को अभयदेवसूरि के पट्टधर बना देने से अभयदेवसूरि का पट्टधर नहीं कहा जा सकता है। कारण, अभयदेवसूरि तो शुद्ध चन्द्रकुल की परम्परा में है और अभयदेवसूरि की सन्तान परम्परा भी अभयदेवसूरि के नाम से चलती आई है। देखिये–

जिनेश्वरसूरि
|
जिनचन्द्रसूरि
|
अभयदेवसूरि
|
वर्धमानसूरि
|

कुर्च्चपुरा गच्छीय चैत्यवासी विधिमार्ग स्थापक
जिनवल्लभसूरि
|
जिनदत्तसूरि (खरतर शाखा) | जिनशेखरसूरि (रुद्रपाली शाखा)
| |

पद्मप्रभसूरि	जिनचन्द्र	पद्मचन्द्र
:	।	।
:	जिनपति	विमलचन्द्र
:	।	।
धर्मघोषसूरि	जिनेश्वर	अभयदेव

इस खुर्शी नामा से पाठक समझ सकते हैं कि अभयदेवसूरि के साथ वल्लभ का क्या सम्बन्ध है ? कुछ नहीं। खरतर मत की मर्यादा का संयोजक जैसे जिनपति एवं जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) था वैसे ही रुद्रपाली मर्यादा बाँधने वाला अभयदेवसूरि था।

यह तो हुई जिनवल्लभसूरि के उत्सूत्र से 'विधिमार्ग' मतोत्पत्ति की बात। आगे चल कर इस विधिमार्ग का नाम खरतर किस प्रकार हुआ वह बतलाया जायेगा, जिसको पाठक खूब ध्यान लगाकर पढ़ें।

देवभद्राचार्य ने संघ से खिलाफ हो श्री संघ से बहिष्कृत हुए वल्लभ को आचार्य बना कर श्री संघ में एक फूट के वृक्ष का बीज बो दिया था और उसको फला फूला देखने की बड़ी बड़ी आशाओं के पुल बांध रहा था, पर भाग्यवशात् छः मास में ही वल्लभसूरि का देहान्त हो जाने से देवभद्र की सब की सब आशायें मिट्टी में मिल गई। यदि देवभद्र इतने से ही संतोष कर लेता तो वह फूट रुपी वृक्ष वहीं नष्ट हो जाता, पर देवभद्र भी एक हठीला पुरुष था कि अपने हाथों से लगाया हुआ वृक्ष अपनी मौजूदगी में ही नष्ट कैसे हो जाय ? देवभद्र ने वल्लभ के पट्टधर बनाने के लिये बहुत कोशिश की परन्तु ऐसे काले कर्म किस के थे कि उन उत्सूत्र प्ररुपक एवं श्रीसंघ से बहिष्कृत जिनवल्लभ का पट्टधर बने ? दूसरे जिनवल्लभ के न था साधु, न थी साध्वी फिर किस जायदाद पर उसका पट्टधर बने ?

कुदरत का यह एक नियम है कि जैसे को तैसा मिल ही जाता है। इस नियमानुसार देवभद्राचार्य को एक सोमचन्द्र नामक मुनि मिल गया। सोमचन्द्र ने वि. सं. ११४१ में धर्मदेवोपाध्याय के पास दीक्षा ली थी। आपकी प्रकृति उग्र एवं खरतर थी। आप पदवी के बड़े ही पिपासु थे पर पदवी के योग्य एक भी गुण आपने सम्पादित नहीं किया था। यही कारण है कि करीबन २८ वर्षों से कोशिश करने पर भी आपको किसी ने एक छोटी सी पदवी भी नहीं दी। इससे पाठक समझ सकते हैं कि साधु सोमचन्द्र के अन्दर कितनी योग्यता थी ? फिर भी सोमचन्द्र हताश न होकर पदवी के लिये कोशिश करता ही रहा। ठीक उस समय देवभद्र की भेंट सोमचन्द्र से हुई। आपस में वार्तालाप अर्थात् वचनबन्धी हो गई।

शायद यह वचनबन्धी जिनवल्लभ की षट् कल्याणकादि उत्सूत्र प्ररुपणा को मान कर उसकी ही प्ररुपणा करने की होगी। खैर, सोमचन्द्र ने देवभद्राचार्य के कहने को मंजूर कर लिया क्योंकि गरजवान् क्या नहीं करता है।

जिनवल्लभ का देहान्त होने के बाद २ वर्ष से अर्थात् वल्लभ का देहान्त वि. सं. ११६७ में हुआ तब वि. सं. ११६९ में देवभद्र ने सोमचंद्र को चित्तौड़ ले जाकर वल्लभ का पट्टधर बना दिया और उस सोमचन्द्र का नाम जिनदत्तसूरि रख दिया। इससे पाया जाता है कि इन उत्सूत्र वादियों के उस समय सिवाय चित्तौड़ के कोई स्थान ही नहीं होगा।

देवभद्र भी एक पक्षपात का बादशाह था, कारण यदि उसको वल्लभ का पट्टधर ही बनाना था तो वल्लभ के पास शेखर नाम का साधु रहता था और वह वल्लभ का संभोगी भी था तब उस संभोगी साधु को छोड़ विसंभोगी सोमचंद्र को वल्लभ का पट्टधर बनाया यह तो उसने जान बूझ कर उन दोनों को आपस में लड़ाने का ही काम किया था। शायद इसका कारण यह हो कि देवभद्र और शेखर के आपस में कलह हो गया था और देवभद्र ने शेखर का गला घोंट[१] कर निकाल दिया था। अतः देवभद्र ने द्वेष के कारण संभोगी साधु शेखर को छोड़ कर विसंभोगी सोमचन्द्र को सूरि बनाया होगा।

मुनि शेखर भी देवभद्र एवं सोमचन्द्र से कम नहीं था। उसने भी अपनी अलग पार्टी बनानी शुरु कर दी और उसमें शेखर को सफलता भी मिलती गई। कारण, जिनदत्त की खरतर प्रकृति के कारण साधु उनसे राजी नहीं पर नाराज ही रहते थे। बस मुनि शेखर को सफलता मिलने का यही विशेष कारण था। समय पाकर मुनि शेखर भी सूरि बन गया और जिनवल्लभ के 'विधिमार्ग' के दो टुकड़े हो गये। एक का आचार्य जिनदत्त तब दूसरे का आचार्य जिनशेखर।

प्रश्न-जिनदत्त सूरि तो सं. ११६९ में आचार्य हुए तब जिनशेखरसूरि आचार्य कब हुये ?

उत्तर-खरतरगच्छ की पट्टावली पृष्ठ ११ पर लिखा है कि :-

संवत् १२०५ रुद्रपल्ल्यां छद्मना सूरिपदं गृहीतं जिनशेखरेण ततो रूद्दलिया गण जातः।

अर्थात् १२०५ में जिनशेखर आचार्य हुये।

---

१. ''अपर दिने जिनशेखरेण साधु विषये किंचित्कलहादिकं युक्तं कृतं, ततो देवभद्राचार्येण गले गृहीत्वा निष्काशित इत्यादि।''

''प्रवचन परीक्षा, पृष्ठ २५१''

प्रश्न–जब सम्वत् १२०५ में जिनशेखर आचार्य हुआ तब बाबू पूर्णचन्द्रजी सम्पादित शिलालेख खण्ड तीसरा पृष्ठ १२ पर एक शिलालेख में वि. सं. ११४७ में खरतरगच्छीय जिनशेखरसूरि ने मूर्ति की प्रतिष्ठा करवाइ लिखा है।

उत्तर–यह लेख जाली है, कारण ११४७ में न तो जिनशेखर सूरि बना था न खरतर शब्द का जन्म ही हुआ था, न जिनशेखर सूरि खरतर ही था और न इस शिलालेख की मूर्ति ही जैसलमेर में है। इसकी आलोचना प्रथम भाग में कर दी गई है। खरतरों ने खरतर शब्द की प्राचीनता साबित करने को यह जाली लेख छपाया है, परन्तु इतनी अक्ल भी तो खरतरों में कहाँ है कि कल्पित लेख लिखने के पूर्व उसका समय तो मिला लेते, जैसे जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ और खरतर बिरुद का समय खरतरों ने वि. सं. १०२४ का लिख मारा है, देखो 'खरतरमतोत्पत्ति दूसरा भाग'। तथा वर्धमानसूरि को १०८८ में आबू के मंदिर की प्रतिष्ठा कराना लिख मारा है, इसी प्रकार आधुनिक खरतरों ने ११४७ का जाली लेख छपा दिया है। इस प्रकार कल्पित लेख लिखना तो खरतरों ने जन्मसिद्ध हक्क एवं अपना सिद्धान्त ही बना लिया है और कल्पित मत में कल्पित लेख लिखा जाय तो इसमें आश्चर्य करने की बात ही क्या है। खैर, जिनदत्तसूरि ने आचार्य बनने के बाद क्या किया जिनको भी मैं यहां दर्ज कर देता हूं।

जिनदत्तसूरि ने इस नूतन मत की वृद्धि के लिए एक मिथ्यात्वी चामुण्डा देवी की आराधना की। जिसके मठ में पूर्व जिनवल्लभ भी ठहरा था। पर देवी देवता भी तो इतने भोले नहीं होते हैं कि ऐसे शासन भंजकों का साथ दें अर्थात् न सफलता मिली थी जिनवल्लभ को और न मिली जिनदत्त को। फिर भी जिनदत्त भद्रिक लोगों को कहता था कि देवी चामुण्डा मेरे बस हो गई। अतः कई लोग जिनदत्त के मत को चामुण्डिक मत कहने लग गये। महोपाध्याय धर्मसागरजी के मतानुसार इस घटना का समय वि. सं. १२०१ का कहा जाता है। जिनदत्त ने जिनवल्लभ के त्रिविध संघ को बढ़ा कर चतुर्विध संघ बना दिया।

'पाखण्डे पूज्यते लोका।' संसार में तत्त्व–ज्ञान को जानने वाले लोग बहुत थोड़े होते हैं। जिनदत्तसूरि के जीवन से यह भी पता मिलता है कि वह किसी को यंत्र, किसी को मंत्र, किसी को तंत्र और किसी को रोग निवारणार्थ [१]औषधियां वगैरह बतलाया करता था। अतः जिनवल्लभ की बजाय जिनदत्त के भक्तों की संख्या बढ़ गई हो तो यह असम्भव भी नहीं है, क्योंकि जनता हमेशा भौतिक सुखों

---

१. देखो–खरतरों की महाजन वंश मुक्तावली नामक किताब।

को चाहने वाली होती है।

वि. सं. १२०४ में जिनदत्तसूरि पाटण जाता है और एक दिन वह मन्दिर में गया। वहां पर कुछ रक्त के छींटे देखे। इस निमित्त कारण से उसके मिथ्यात्व कर्म का प्रबल उदय हो आया और उसने यह मिथ्या प्ररुपणा कर डाली कि स्त्रियों को जिनप्रतिमा की पूजा करना नहीं कल्पता है। अतः कोई भी स्त्री जिन प्रतिमा की पूजा न करे इत्यादि।

उस समय का पाटण जैनों का एक केन्द्र था। केवल १८०० घर तो करोड़पतियों के ही थे। परमार्हत महाराज कुमारपाल वहां का राजा था। कलिकाल–सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य एवं राजगुरु कक्कसूरि जैसे जिनशासन के स्तम्भ आचार्य वहां विद्यमान थे। इस हालत में जिनदत्त की इस प्रकार उत्सूत्र प्ररुपणा को पट्टण का श्रीसंघ कैसे सहन कर सकता था? जब जिनदत्त की उत्सूत्र प्ररुपणा के समाचार उन शासनस्तंभ धुरंधर आचार्यों के कानों तक पहुंचे तो उनको बड़ा ही दुःख हुआ। कारण, जिनवल्लभ की वीर गर्भापहार रुपी उत्सूत्र प्ररुपणा तो अभी शासन को कांटा खीला की भांति खटक ही रही थी, फिर जिनदत्त ने इस प्रकार उत्सूत्र प्ररुपणा क्यों की है? जैनागमों में चेलना, सिवा, प्रभावती, मृगावती, जयन्ति, सुलसा और द्रौपदी वगैरह अनेक महिलाओं ने परमेश्वर की द्रव्य भाव से पूजा की, जिसके उल्लेख आगमों में स्पष्ट मिलते हैं। अतः इसके लिए सभा करके जिनदत्तसूरि को समझाना चाहिये। यदि वह समझ जाय तो ठीक, नहीं तो जिनदत्त का संघ से बहिष्कार कर देना चाहिये। जैसे कि जिनवल्लभ का श्रीसंघ ने बहिष्कार कर दिया था, इत्यादि। इस बात की नगर में खूब गरमागरम चर्चा चल पड़ी।

जिनदत्तसूरि एक हटकदाग्रही व्यक्ति था। उसने आन्दोलन की बात सुन कर सोचा कि एक तरफ तो राजा कुमारपालादि सकल श्राद्ध संघ तथा दूसरी ओर हेमचन्द्रसूरि आदि श्रमण संघ है। यहां मेरी कुछ भी चलने की नहीं है, अतः रात्रि में एक शीघ्रगामी ऊंट मंगवा कर उस पर सवार हो रात्रि में ही पलायन कर गया, जैसे पुलिस के भय से चोर पलायन कर जाते हैं। जिनदत्त पाटण से ऊंट पर सवारी कर थोड़े ही समय में जावलीपुर पहुंच गया, तब जाकर उसने थोड़ा निर्भयता का श्वास लिया, जैसे चोर पल्ली में जाकर निर्भयता का श्वास लेता है।

सुबह श्रीसंघ ने खबर मंगाई तो मालूम हुआ कि जिनदत्त तो रात्रि में ही पलायन कर गया है। अतः श्रीसंघ ने यह निश्चय किया कि जहां जिनदत्त गया हो वहां के श्रीसंघ को लिख दिया जाय कि यदि जिनदत्त आपके यहां स्त्री जिनपूजा

निषेध की मिथ्या[१] प्ररुपणा करे तो आप उसको संघ बाहर कर दें। यहां का संघ आपके सम्मत है इत्यादि।

जब जिनदत्त जावलीपुर में पहुँचा तो वहां के लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिनदत्तसूरि को तो पाटण में देखा था, आज यहां कैसे आ गये? इस शंका के निवारणार्थ श्रीसंघ के अग्रेसरों ने जाकर जिनदत्त से पूछा तो उत्तर दिया कि मैं औष्ट्री विद्या से आया हूँ। पहले तो लोगों ने समझा कि औष्ट्री कोई विद्या होगी, पर बाद में पाप का घड़ा फूट गया और लोगों को मालूम हो गया कि जिनदत्त ऊंट[२] पर सवार होकर आया है। उस समय तार या डाक का साधन नहीं था कि एक प्रान्त के समाचार दूसरे प्रान्त में जल्दी ही पहुंच जाय, फिर भी लोगों ने पता लगा ही लिया।

जिनदत्तसूरि कई दिन तो चुपचाप रहा, पर बाद तो आपने अपनी प्रकृति का परिचय देना शुरु किया अर्थात् स्त्रियों को जिनपूजा निषेध करना शुरु किया। पर जावलीपुर का श्रीसंघ इतना भोला नहीं था कि जिनदत्त की उत्सूत्र प्ररुपणा को मान कर अपना अहित करने को तैयार हो। जब संघ अग्रेसरों ने जिनदत्त से पूछा कि किसी शास्त्र में स्त्रियों को जिनपूजा करना निषेध किया है? उत्तर में जिनदत्त ने अपनी खर प्रकृति के परिचय के अलावा कुछ भी प्रमाण नहीं बतलाया। अतः लोग जिनदत्त की खर प्रकृति के कारण खरतर कहने लगे। बस, वहां के श्रीसंघ ने जिनदत्त को कहा अरे ये तो खरतर तो खरतर ही निकला। इस प्रकार कह कर संघ बाहर कर दिया। जिनदत्त के मत का नाम चामुण्ड तो पहले ही था। ऊंट पर सवार होने से लोगों ने इस मत का नाम औष्ट्रीक मत रख दिया और तीसरा खरतर नाम भी इस जिनदत्त के कपाल में ही लिखा हुआ था कि लोगों ने जिनदत्त के मत को खरतर मत कहना शुरु कर दिया। यह इनकी खरतर प्रकृति का ही द्योतक था। जिनदत्तसूरि जैसे चामुण्ड और औष्ट्रीक नाम से खीजता एवं क्रोध करता था, वैसे ही खरतर नाम से भी सख्त नाराज होता था। कारण, यह नाम भी अपमानसूचकता ही था। इस प्रकार इस मत के क्रमशः तीन नामों की सृष्टि पैदा हुई थी जिसमें खरतर नाम आज भी जीवित है।

जैन धर्म में मूर्तिपूजा का निषेध सबसे पहले जिनदत्तसूरि ने ही किया है,

---

१. **''जिणपूआ विग्घकरो हिंसाईपरायणो जयदि विग्घो ।**
जिनपूआ विघ्नकारो यज्ञपात की प्रवचन उपधानि ॥''

२. **उष्ट्रवाहनारूढौ पत्तनाज्जवालीपुरं प्राप्तः ।**

प्र. प., पृष्ठ २६८

बाद लोंकाशाह वगैरह ने तो उस जिनदत्तसूरि का अनुकरण ही किया है। हां जिनदत्तसूरि ने केवल स्त्रियों को जिनपूजा करने का निषेध किया तब लोंकाशाह ने स्त्री और पुरुष दोनों को जिनपूजा का निषेध कर दिया पर इनका मूल कारण तो जिनदत्तसूरि ही थे।

यदि जिनदत्तसूरि की मान्यता थी कि तीर्थंकर पुरुष थे उनको स्त्रियां छू नहीं सकती हैं पर वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों में उन्नीसवे मल्लिनाथ तीर्थंकर तो स्त्री थे। खरतरियों के लिये मल्लिनाथ की मूर्ति पूजना रख देते तो बिचारी खरतरियां जिनपूजा से तो वंचित नहीं रहतीं, पर जिनदत्तसूरि में उस समय इतनी अकल ही कहां थी ? उसने तो मिथ्यात्व के प्रबलोदय से स्त्रियों को जिनपूजा करना निषेध कर ही दिया। फिर भी जैन शासन की तकदीर ही अच्छी थी कि जिनदत्तसूरि ने एक स्त्री को ही आशातना करती देख स्त्रियों को ही जिनपूजा करना निषेध किया। यदि इसी प्रकार किसी पुरुष को आशातना करता देखता तो पुरुष को भी पूजा करना निषेध कर देता।

आगे चल कर जिनदत्तसूरि ने तो यहां तक आग्रह कर लिया कि स्त्रियां जिन तीर्थंकर को छू नहीं सकती थीं तो वे उन की प्रतिमाओं को कैसे छू सकती हैं। इस बात का उसने केवल जबानी जमाखर्च ही नहीं रखा था पर अपने ग्रन्थों में लेख भी लिख दिया। देखो जिनदत्तसूरि कृत कुलक जिस पर जिनकुशलसूरि ने विस्तार से टीका रची है जिसमें लिखा है कि :-

संभवइ अकालेऽविहु कुसुमं महिलाण तेण देवाणां ।
पूआई अहिगारो, न ओघओ सुत्तनिदिट्ठो ॥ १ ॥
न छिविंति तहा देहं ओसरणे, भावजिणवरिंदाणं ।
तह तप्पडिमंपि सया पूअंति न सड्ढनारिओ ॥ २ ॥

प्र. प., पृ. ३७१

यही कारण है कि खरतर मत में आज भी स्त्रियां जिनपूजा से वंचित रहती हैं। इतना ही क्यों पर जैसलमेरादि कई नगरों के मन्दिर खरतरों के अधिकार में हैं, वहाँ अन्य गच्छवालों की ओरतों को खरतर जिनपूजा नहीं करने देते हैं, इस अन्तराय का मूल कारण तो जिनदत्तसूरि ही हैं।

इसी प्रकार महोपाध्यायजी धर्मसागरजी ने अपने प्रवचन परीक्षा नामक ग्रन्थ के पृष्ठ २६७ पर लिखा है कि :-

अह अण्णया कयाई, रूहिरं दट्ठूण जिणहरे रूट्ठो ।
इत्थीण पच्छित्तं देइ, जिणपूअपडिसेहं ॥ ३५ ॥

संघुत्ति भयपलाणो, पट्टणओ उट्टवाहणारूढ़ो ।
पत्तो जावलीपुरं, जणकहणे भणइ विज्जाए ॥ ३६ ॥

इस प्रकार जिनवल्लभसूरि के 'विधिमार्ग' मत का नाम जिनदत्तसूरि की खर प्रकृति के कारण खरतर हुआ है। फिर भी उस समय यह खरतर नाम अपमानसूचक होने से किसी ने भी नहीं अपनाया था। हां बाद दिन निकल जाने से जिनकुशलसूरि के समय उस अपमानसूचक खरतर शब्द को गच्छ के रुप में परिणित कर दिया। बस उस दिन से यह खरतर शब्द गच्छ के साथ चिपक गया जैसे लोहे के साथ कीटा चिपक जाता है।

प्रश्न–यदि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की खर प्रकृति से हुई होती और यह शब्द अपमान के रुप में होता तथा इस खरतर शब्द से जिनदत्तसूरि सख्त नाराज होता तो जिनदत्तसूरि की कराई हुई प्रतिष्ठावाली मूर्तियों के शिलालेखों में खुद जिनदत्तसूरि अपने को 'खरतरगच्छ सुविहित गणाधीश' क्यों लिखते? जैसे जैतारन ग्राम में कई मूर्तियां जिनदत्तसूरि की प्रतिष्ठा करवाई हुई आज भी विद्यमान हैं और उन मूर्तियों पर शिलालेख भी खुदे हुये मौजूद हैं। देखिये नमूने के तौर पर कतिपय शिलालेख।

"सं. ११७१ माघ शुक्ल ५ गुरौ सं. हेमराजभार्यहेमादे पु. सा. रुपचन्द रामचन्द्र श्रीपार्श्वनाथ विंव करापितं अ. खरतर गच्छे सुविहित गणाधीश श्री जिनदत्तसूरिभिः"

"सं. ११७४ वैशाख शुक्ला ३ सं. म............भार्यहेमादें पु........ चन्द्रप्रभविव .... प्र. खरतर गच्छे सुविहित गणाधीश श्री जिनदत्तसूरिभिः"

"सं. ११८१ माघ शुक्ल ५ गुरौ प्राग्वट ज्ञातिय सं. दीपचन्द्र भार्य दीपादें पु. अबीरचन्द्र अमीचन्द्र श्री शान्तिनाथ बिंब करापितं प्र. खरतर गच्छे सुविहित गणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः"

"सं. ११६७ जेठ वदी ५ गुरौ स. रेनुलाल भार्य रत्नादें पु. सा. कुनणमल श्रीचन्द्रप्रभ विंव करापित प्र. सुविहित खरतर गच्छेगणाधीश्वर श्रीजिनदत्तसूरिभिः"

इनके अलावा जैसलमेर के शिलालेखों में सं. ११४७ के शिलालेख में खरतर गच्छे जिनशेखरसूरि का नाम आता है तथा और भी किसी स्थान पर ऐसी मूर्तियां होगी। अतः इन शिलालेखों से पाया जाता है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि से नहीं पर आपके पूर्ववर्ती आचार्य जिनेश्वरसूरि से ही हुई होगी।

उत्तर–११४७ की मूर्ति एवं शिलालेख के लिये तो मैंने प्रथम भाग में समालोचना कर दी थी कि न तो जैसलमेर में ११४७ वाली मूर्ति है और न ११४७

में जिनशेखरसूरि का अस्तित्व ही था। कारण, खरतरगच्छ की पट्टावली में जिनशेखरसूरि का समय वि. सं. १२०५ का लिखा है। अतः यह लेख खरतरों ने खरतर शब्द को प्राचीन बनाने के लिये जाली छपाया है।

इसी प्रकार जैतारण की मूर्तियों के लेख भी कल्पित हैं। चोर चोरी करता है पर उसमें कहीं न कहीं चोरी पकड़ी जाने के लिये त्रुटि रह ही जाती है। उपरोक्त शिलालेखों में चतुर्थ शिलालेख ११६७ का है जब जिनदत्तसूरि को सूरि पद वि. सं. ११६९ में हुआ था ? उसके पूर्व जिनदत्त का नाम सोमचन्द्र था। जब जिनदत्त नाम का जन्म ही ११६९ में हुआ तो ११६७ के शिलालेख में जिनदत्त का नाम आ ही कैसे सकता था ? क्योंकि जन्म के पूर्व नाम हो ही नहीं सकता है। अतः पूर्वोक्त सब लेख जाली एवं कल्पित हैं। इन लेखों की लिपि की ओर दृष्टिपात करने से साफ साफ मालूम होता है कि यह लिपि बारहवीं शताब्दी की नहीं पर सत्रहवीं शताब्दी की है कि जिस समय महोपाध्यायजी धर्मसागरजी और जिनचन्द्रसूरि की आपस में खरतर शब्द की उत्पत्ति के विषय में खूब द्वन्द्वता चल रही थी। उस समय जिनचन्द्रसूरि ने भविष्य में खरतर शब्द को प्राचीन सिद्ध करने के लिये इस प्रकार नीच कर्म किया है। पर उस समय जिनचन्द्र को यह विश्वास नहीं था कि आगे चल कर एक जमाना ऐसा आवेगा कि लिपि शास्त्र के जानकार सौ सौ वर्ष की लिपियों को पहचान कर जाली लेखों के पर्दे चीर डालेंगे।

भला जिनदत्तसूरि ने जैसे मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाई है वैसे कोई ग्रन्थ भी निर्माण किया है। दो पंक्तियों के शिलालेख में तो उन्होंने अपने को सुविहित खरतरगच्छे गणाधीश होना लिख दिया, तब उनके ग्रन्थों की लम्बी चौड़ी प्रशस्तियों में खरतर शब्द की गन्ध तक भी नहीं। इतना ही क्यों पर उनके पीछे जिनचन्द्र और जिनपति के ग्रन्थों में भी खरतर शब्द की बू तक न मिले। यह सत्रहवीं शताब्दी के जिनचन्द्र की काली करतूतों को स्पष्ट सिद्ध जाहिर कर रही हैं। अतः उसके खुदाये हुए जाली शिलालेखों से खरतर शब्द प्राचीन नहीं पर अर्वाचीन ही सिद्ध होता है। क्योंकि जो व्यक्ति झूठा होता है वही ऐसा नीच कर्म करता है।

मेरी लिखी खरतरमतोत्पत्ति भाग १-२ के प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि खरतर शब्द गच्छ के रुप में विक्रम की चौदहवीं शताब्दी से लिखा जाना शुरु हुआ है। इसके पूर्व यह अपमान के रुप में ही समझा जाता था। क्योंकि जिनदत्तसूरि की प्रकृति से पैदा हुआ बारहवीं शताब्दी का खरतर शब्द चौदहवीं शताब्दी तक गुप्त रुप में रहे, इसका कारण यही हो सकता है कि यह अपमानसूचक शब्द था कि किसीने इसको नहीं अपनाया था।

झूठ बोलना झूठ लिखना तो इस खरतरमत का शुरु से मूल सिद्धान्त ही है। जब ये खास भगवान और पूर्वाचार्यों के वचनों को अन्यथा करने का भी डर नहीं रखते हैं तो झूठ लेख लिखने का तो भय ही क्यों रक्खें? खरतरों ने जिनेश्वरसूरि को ही क्यों पर वर्धमानसूरि, उद्योतनसूरि और गणधर सौधर्म एवं गौतम को भी खरतर लिख दिया। यह भी खरतरों के ही लिखे हुए लेख हैं। अतः जैतारनादिकी मूर्तियों पर खरतरों के खुदाये हुए जाली लेखों पर कोई भी व्यक्ति विश्वास कर धोखे में न आवे। क्योंकि वे लेख सत्रहवीं शताब्दी में जिनचन्द्र ने खुदाये हैं और उन शिलालेखों की लिपि भी सत्रहवीं शताब्दी की लिपि से मिलती जुलती है।

यह तो एक नमूना मात्र ही बतलाया है पर इस प्रकार तो खरतरों ने कई अनर्थ किये हैं। प्रवचन परीक्षा नामक ग्रन्थ में उपाध्याय धर्मसागरजी महाराज लिखते हैं कि :-

जेणं जिणदत्तमए, पुराणपाढणमण्णहा करणे ।
परलोअभयभीआ, अज्जवि दीसंति वेसहरा ॥ ४६ ॥

अर्थात् जिनदत्त के मत में पुराणे पाठों को चुराने एवं रद्दोबदल करने वाले आज भी कई वेषधारी विद्यमान हैं। यह बात उपाध्यायजी ने केवल इधर उधर की सुनी हुई बातों के आधार पर ही नहीं लिखी है, पर अपने नाडोल (नारदपुरी) के भंडार की पुराणी प्रतियों से जैसलमेर की प्रतियों का मिलान करके ही लिखी है। पर जब खास गणधर भगवान के आगमों को भी अन्य या प्ररुपने में खरतरों को भय एवं लज्जा नहीं है तो दूसरों का तो कहना ही क्या है? अतः खरतर मत चौरासी गच्छों में गच्छ नहीं पर उत्सूत्रवादी मतों में एक मत है जो उपरोक्त प्रमाणों से साबित हो चुका है।

प्रश्न-यदि आपके कथनानुसार विधिमार्ग एवं खरतरमत उत्सूत्र से ही पैदा हुआ है तो फिर इस मत की इस प्रकार वृद्धि होना और हजारों लोगों का इसको मानना और आज सात आठ सौ वर्षों से अविच्छिन्न रुप से चला आना कैसे माना जा सकता है?

उत्तर-इसके लिये पहले तो आपको 'खरतरों की बातें' नाम की पुस्तक मंगवा कर पढ़ना चाहिये जो श्रीमान् केसरचन्दजी चोरड़िया की लिखी हुई है। बस! आपका समाधान स्वयं हो जायेगा। दूसरे मत चलना तथा उसकी वृद्धि होना या हजारों लोगों का मानना और सात आठ सौ वर्ष तक चला आना यह सब बातें एकान्त सत्यता के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखती हैं क्योंकि आप स्वयं सोच

सकते हो कि आज दुनिया में सैंकड़ों धर्म प्रचलित हैं जिसमें कई ऐसे भी धर्म हैं कि जिनको खरतर भाई भी मिथ्या धर्म मानते हैं वे सैंकड़ों हजारों वर्षो से अविच्छिन्न रुप में चले आते हैं। उनकी वृद्धि एवं मानने के लिए लाखों करोड़ों आदमी उनको मानते भी हैं फिर भी सत्य की कसौटी पर कसने से वे मिथ्या धर्म ही साबित होते हैं। अतः केवल किसी मत की वृद्धि एवं उसको हजारों लाखों आदमियों के मानने मात्र से ही सत्यता नहीं कही जाती है। आप दूर क्यों जावें खास जैनों में ही देखिये एक दिगम्बर समुदाय है जिसको हमारे खरतर मत वाले जैन सिद्धान्त से खिलाफ समझते हैं उनको भी लाखों मनुष्य मानते हैं, वैसे ही लोंकामत एवं ढूंढ़िया मत को भी समझ लीजिये कि उन्होंने बिना गुरु मत निकाला वह आज तक चल ही रहे हैं और करीब दो तीन लाख मनुष्य उनको पूज्यदृष्टि से भी देखते हैं। इसी माफिक खरतर मत को भी समझ लीजिये, फिर भी यह कहना पड़ता है कि खरतरों ने तो करोड़ों को जैन संख्या से थोड़े से अनभिज्ञों को भगवान महावीर के छः कल्याणक मनाकर तथा स्त्रियों को जिनपूजा छुड़ाकर अपने अनुयायी बनाये पर लोंका-ढूँढ़ियों ने तो लाखों जैनों से ही दो तीन लाख मनुष्यों को मूर्तिपूजा छुडाकर अपने अनुयायी बना लिये। बतलाइये इसमें विशेषता खरतरों की है या ढूँढ़ियों की ? अतः आप समझ सकते हो कि मत चलने में तथा उसको बहुत मनुष्य मानने मात्र से ही सत्यता नहीं समझी जाती है। अतः मेरे पूर्व प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि जिनवल्लभ का 'विधिमार्ग' और जिनदत्त के खरतरमत ने उत्सूत्रभाषण से जन्म लिया है और कदाग्रह से ही यह आज पर्यन्त जीवित रहा है।

प्रश्न-कई लोग यह भी कहते हैं कि यदि जिनदत्तसूरि आदि आचार्य उत्सूत्र प्ररुपक होते तो ग्राम ग्राम उनकी छत्रियें, पादुकाएं, मूर्तियें और दादाबाड़ियें क्यों बनतीं तथा तीर्थंकरों के मन्दिरों में उनकी पादुका क्यों होती ?

उत्तर-दादाजी ने अपने गुणों से पूजा नहीं पाई थी। उन्होंने अपने पर उत्सूत्र प्ररुपणा के कलंक को छिपाने के लिये एक जाल रच कर ऐसा जघन्य काम किया था, वरना इनके पूर्व सैकड़ों हजारों आचार्य हुए थे, पर किसी ने अपने हाथों से अपनी मूर्तियें एवं पादुकायें पुजवाने की कोशिश नहीं की थी। देखिये जिनदत्तसूरि के थोड़े ही वर्षों बाद आंचलगच्छ में एक धर्मघोषसूरि नाम से आचार्य हुए, उन्होंने अपने शतपदी नामक ग्रन्थ में जिनदत्तसूरि के लिये लिखा है कि :-

१. श्राविका स्त्रियों ने पूजा नो निषेध कर्यो।

२. लवण (निमक) जल, अग्नि में नोखवुं ठेराख्यो।

३. देरासर में जुवान वेश्या नहीं नचावी, किन्तु जे नानी के वृद्ध वेश्या होय ते नचाववी एवी देशना करी।

४. गोत्रदेवी तथा क्षेत्रपालादिकनी पूजा थी सम्यक्त्व भागे नहीं एम ठेराव्युं।

५. अमे ज युगप्रधान छीए एम मनावा मांड्युं।

६. वली एवी देशना करवा मांडी के एक साधारण खातानुं बाजोठ (पेटी) राखवुं, तेने आचार्य नो हुकम लई उघाडवुं। तेमांना पैसामांथी आचार्यादिकना अग्नि-संस्कार स्थाने स्तूपादिक कराववी तथा त्यां यात्रा अने उजणीओ करवी।

७. आचार्योनी मूर्तियो कराववी।

८. चक्रेश्वरीनी स्तुतिमां जिनदत्तसूरिए कह्युं छे के विधिमार्गना शत्रुओना गला कापी नाखनार चक्रेश्वरी मोक्षार्थी जनना विघ्न निवारो।

शतपदी[१] गुर्जर अनुवाद, पृष्ठ १४९

ऐसी पच्चीस बातें जिनदत्तसूरि के लिये लिखी हैं जिसके अन्दर से केवल नमूने के तौर पर मैंने ८ बातें ऊपर लिखी हैं, जिससे पाठक समझ सकते हैं कि जिनदत्तसूरि की अन्य गच्छीयों के साथ कैसी भावना थी कि उन सबके गले कटवा डालने की चक्रेश्वरी देवी से प्रार्थना करते हैं। इसका कारण यह हो सकता है कि जिनवल्लभ ने महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक की प्ररुपणा कर अपना 'विधिमार्ग' नामक मत निकाला तथा उनके पट्टधर जिनदत्तसूरि ने स्त्रियों को जिनपूजा निषेध कर उत्सूत्र प्ररुपणा की। यही कारण था कि श्रीसंघ ने उनको संघ बाहर कर दिया, जिससे रुष्टमान होकर उनका कुछ बश नहीं पहुँचा तब जाकर चक्रेश्वरीदेवी से प्रार्थना कर अपने तप्त ह्रदय को शीतल किया। ऐसा व्यक्ति आप पुजाने के लिये मकान में पेटी रखवा कर पैसा डलवावे और उन पैसों से दादावाड़ी एवं पादुकाऐं स्थापन कराये इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि जहाँ दिवाला होता है वहां इस प्रकार कल्पित आडम्बर की जरुरत रहा ही करती है। कालान्तर में इधर तो जैन साधुओं का मरुधरादि प्रान्तों में विहार कम हुआ, उधर खरतरों के यतियों ने जनता को धनपुत्रादिक का प्रलोभन देकर दादाजी की झूठी झूठी तारीफें करके बहका दिया एवं उन बिचारे भद्रिक लोगों को धोखा देकर उनके द्रव्य से दादावाड़ी वगैरह बना लीं और वे लोग अपनायत के कारण जहाँ तक उन उत्सूत्रवादियों की कुटिलता को नहीं जानते थे वहाँ तक मानते भी थे, इससे क्या हुआ ? कर्म सिद्धान्त से अज्ञात लोग धन पुत्रादि के पिपासु दादाजी तो क्या पर

१. **संवत् १२६३ में धर्मघोषसूरि ने प्राकृत भाषा का शतपदी नामक ग्रंथ रचा था, जिसको सं. १२९४ में आचार्य महेन्द्रसिंहसूरि ने उस प्राकृत शतपदी से संस्कृत शतपदी लिखी, जिसको वि. सं. १९५१ में श्रावक रवजी देवराज ने गुजराती अनुवाद छपाया।**

भैरव भवानी और पीर पैगम्बर के यहाँ भी जाकर शिर झुका देते हैं तो इसमें दादाजी की क्या विशेषता है? परन्तु जब वे लोग ठीक तरह से समझने लगे कि इन उत्सूत्रवादियों के मुंह देखने से ही पाप लगता है एवं वे खुद उत्सूत्र की प्ररुपणा करके संसार में डूबे हैं तो उनकी उपासना करने में सिवाय नुकसान के क्या हो सकता है? अतः आज वे दादावाड़ियें भूत एवं पिशाच के स्थानों की वृद्धि कर रही हैं। इतना ही क्यों पर जो लोग खरतर अनुयायी कहलाते हैं और धनपुत्रार्थ कई दादाजी के भक्त बन उनकी उपासना करते थे, उनको उल्टा फल मिलने से उनकी भी श्रद्धा हट गई है। शेष रहे हुये भक्तों की भी यही दशा होगी।

अब जैन सिद्धान्त की ओर भी जरा देखिये कि जैन सिद्धान्त खास कर्मों को मानने वाला है। पूर्वसंचित शुभाशुभ कर्म को अवश्य झुकना पड़ता है, न इसको देव छुड़ा सकता है न गुरु छुड़ा सकता है। इतना ही क्यों पर लौकिक सुख यानी धन सम्पत्ति के लिये देवगुरु की उपासना करना ये खास लोकोत्तर मिथ्यात्व का ही कारण है और जो लोग तीर्थंकर देवों की सेवा उपासना छोड़ उन उत्सूत्रवादियों की सेवा उपासना करते हैं तो वे उत्सूत्रवादी अपने संसार की वृद्धि से कुछ हिस्सा उन उपासकों को भी देंगे, इनके अलावा और क्या फल हो सकता है?

अन्त में अपने पाठकों को सावधान कर देता हूँ कि इस खरतर मत के जाल से सदैव बच कर रहें। कई अर्सा तक तो यह लोग भद्रिकों को यह कह कर धोखा दिया करते थे कि आप दादाजी की मान्यता रखो आपको खूब धन मिलेगा। पर अब वे हिमायत करने वाले भी सफाचट हो बैठे हैं, अतः कर्म सिद्धान्त को मानने वाले इस प्रकार के धोखे में नहीं आते हैं। इन चमत्कार के लिये श्रीमान् केसरीचन्द्रजी चोरडिया की लिखी 'खरतरों की बातें' नाम की पुस्तक मँगा कर पढ़िये कि जिससे आपको ठीक रोशन हो जायेगा कि इन धूर्त लोगों ने किस किस प्रकार कल्पित बातें बना कर जनता को धोखा दिया हैं और अब इनकी किस प्रकार से कलई खुल गई और कैसे हँसी के पात्र बन गये हैं। खैर इस तीसरे भाग को मैं यहाँ ही समाप्त कर देता हूँ। यदि इस विषय में खरतर ज्यादा बकवाद करेंगे तो यहाँ भी मसाले की कमी नहीं है।

एक मछली समुद्र को गन्दा बना देती है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि खरतरमत क्लेश कदाग्रह एवं उत्सूत्र भाषण से पैदा हुआ है। इस मत के लोगों ने कई प्रकार से षड़यन्त्र रच कर जैनजगत को नुकसान पहुँचाया और आज भी पहुँचा रहे हैं, इतना ही नहीं पर वे राजा बादशाहों से भी नहीं चूके थे। उनके लिये भी कई प्रकार के षड़यन्त्र

रच कर उनको नुकसान पहुँचाने के मिथ्या प्रयत्न किये थे। जैसे विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी में खरतरमत में एक मानसिंह नाम का साधु था जो जिनसिंहसूरि नाम से कहलाया जाता था तथा वह अपने को ज्योतिष-विद्या में प्रवीण होना भी कहता था। उस मानसिंह ने बादशाह जहाँगीर के लिये एक ऐसा षड़यन्त्र रचा कि जिसके लिये बादशाह जहाँगीर को उसके विरुद्ध एक कठोर फरमान निकालना पड़ा। इतना ही क्यों पर बादशाह ने अपने राज में आने की भी मनाई कर दी थी। इन सब बातों को स्वयं बादशाह ने अपनी 'तुजुक जहाँगीरी' नामक किताब में लिखी थी जिसको मुन्शी देवीप्रसादजी जोधपुर वालों ने हिन्दी अनुवाद कर 'जहाँगीर नामा' नाम से ई. स. १९०५ में छपवाया है। वह किताब जोधपुर में मिलती है तथा इस समय मेरे सामने मौजूद भी है। उस किताब के पृष्ठ ३०९ पर निम्नलिखित लेख मुद्रित है। जिसको पढ़ने से पाठक स्वयं सोच लेंगे कि एक गन्दी मछली तमाम समुद्र को कैसे गन्दा बना देती है अर्थात् एक कुलकलंक कुपात्र के जरिये शासन पर किस प्रकार कलंक लगता है।

मानसिंह सेवड़ा

''बादशाह लिखता है कि सेवड़े हिन्दू नास्तिकों में से हैं जो सदैव नंगे सिर और नंगे पांव रहते हैं। उनमें कोई तो सिर और दाढ़ी मूछ के बाल उखाड़ते हैं और कोई मुंड़ाते हैं। सिला हुआ कपड़ा नहीं पहनते। उनके धर्म का मूलमन्त्र यह है कि किसी जीव को दुःख न दिया जावे। बनिये लोग इनको अपना गुरु मानते हैं, दण्डवत करते हैं और पूजते हैं। इन सेवड़ों के दो पंथ हैं। एक तपा दूसरा करतल (खरतर)। मानसिंह करतर वालों का सरदार था और बालचन्द तपा का। दोनों सदा स्वर्गवासी श्रीमान् की सेवा में रहते थे। जब श्रीमान् के स्वर्गारोहण पर खुसरो भागा और मैं उसके पीछे दौड़ा तो उस समय बीकानेर का जमीदार रायसिंह भुरटिया जो उक्त श्रीमान् के प्रताप से अमीरी के पद को पहुंचा था, मानसिंह से मेरे राज्य की अवधि और दिन दशा पूछता है और वह कलजीभा जो अपने को ज्योतिष विद्या और मोहनमारण और वशीकरणादि में निपुण कहा करता था उससे कहता है कि इसके राज्य की अवधि दो वर्ष की है। वह तुच्छ जीव उसकी बात का विश्वास करके बिना छुट्टी ही अपने देश को चला गया। फिर जब पवित्र परमात्मा प्रभु ने मुझ निज भक्त को अपनी दया से सुशोभित किया और मैं विजयी होकर राजधानी आगरे में उपस्थित हुआ तो लज्जित होकर सिर नीचा किये हुए दरबार में आया। शेष वृत्तान्त उसका अपनी जगह पर लिखा जा

चुका है। और मानसिंह उन्हीं तीन चार महीने में कोढ़ी हो गया। उसके अंग प्रत्यङ्ग गिरने लगे। वह अब तक अपना जीवन बीकानेर में ऐसी दुर्दशा से व्यतीत कर रहा था कि जिससे मृत्यु कई अंशों में उत्तम थी। इन दिनों में जो मुझको उसकी याद आई तो उसके बुलाने का हुक्म दिया। उसको दरगाह में लाते थे पर वह डर के मारे रास्ते में ही जहर खाकर नरकगामी हो गया।

जब मुझ भगवद्भक्त की इच्छा न्याय और नीति में लीन हो तो जो कोई मेरा बुरा चेतेगा वह अपनी इच्छा के अनुसार ही फल पावेगा।

सेवड़े हिन्दुस्तान के बहुधा नगरों में रहते हैं। गुजरात देश में व्यापार और लेनदेन का आधार बनियों पर है इस लिये सेवड़े यहाँ अधिकतर हैं।

मन्दिरों के सिवाय इनके रहने और तपस्या करने के लिये स्थान बने हुये हैं जो वास्तव में दुराचार के आगार हैं। बनिये अपनी स्त्रियों और बेटियों को सेवड़ों के पास भेजते हैं, लज्जा और शीलवृत्ति बिल्कुल नहीं है। नाना प्रकार की अनीति और निर्लज्जता इनसे होती है। इस लिए मैंने सेवड़ों के निकालने का हुकम दे दिया है और सब जगह आज्ञापत्र भेजे गये हैं कि जहाँ कहीं सेवड़ा हो मेरे राज्य में से निकाल दिया जावे।''

इस लेख में एक तो लिखा है कि मानसिंह रास्ते में ही डर के मारे जहर खाकर मर गया और दूसरा लिखा है कि मेरे राज में आने की मनाई कर दी। इस विषय में खरतर मत वाले क्या कहते हैं?

ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह नामक पुस्तक खरतरों की तरफ से हाल ही में मुद्रित हुई है, जिसके पृष्ठ १५० पर जिनराजसूरि का रास छपाया है। उसमें लिखा है कि :-

बीकानेर थी चलिया, मनह मनोरथ फलिया।
साधु तणइ परिवारइ, 'मेडतई' नयरि पधारइ॥ ६॥
श्रावक लोक प्रधान, उच्छव हुआ असमान।
श्रीगच्छनायक आयउ, सिगले आनन्द पायउ॥ ७॥
तिहाँ रह्या मास एक, दिन-दिन बधतई विवेक।
चलिवा उद्यम कीधउ, 'एक-पयाणउ' दीधउ॥ ८॥
काल धर्म तिहाँ भेटइ, लिखत लेख कुण मेटई।
'श्री जिनसिंह' गुरुराया, पाछा 'मेडतई' काया॥ ९॥
सइंमुखि लीधउ संथारउ, कीधउ सफल जमारो।
शुद्ध मनइ गहगहता, 'पहिलइ देवलोक' पहुता॥ १०॥

इस रास में बादशाह मानसिंह (जिनसिंहसूरि) को बुलाता है और मानसिंह बीकानेर से रवाना हो आगरे जा रहा है। मेड़ता में एक मास ठहर कर विहार किया, एक मुकाम पर जाते ही उसकी काल से भेंट हुई, अतः वापिस मेड़ते आकर स्वयं संथारा (अनशन) करके काल को प्राप्त हुये। बात दोनों की मिलती जुलती है, शायद खरतरों ने गुरुभक्ति के कारण कुछ बात को सुधार के लिखी हो तो यह उनकी गुरुभक्ति प्रशंसनीय कही जा सकती है।

दूसरी बात बादशाह का हुक्म अपने राज से सेवड़ों (खरतर मतियों) को निकाल देने का था। तब खरतरों के रास में लिखा मिलता है कि मानसिंह (जिनसिंहसूरि) के पट्टधर जिनराजसूरि आगरे गये और यतियों का विहार खुल्ला करवाया।

''अन्ये कितरेक देशे यति रै न सकते ते पण तिंवारे पच्छि रैता थया।''

अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर वालों का लेख

जैन सत्यप्रकाश वर्ष ३, अंक ४, पृष्ठ १३५।

उपरोक्त शब्दों से यह सिद्ध हो सकता है कि जिनसिंह के समय खरतर यतियों का विहार बन्द हुआ था। वह विहार जिनराजसूरि के समय वापिस खुला होगा।

'तुजुक जहांगीरी' का हिन्दी अनुवाद मुद्रित हुये को आज ३४ वर्ष हो गुजरे हैं जिसमें किसी खरतर ने इसका विरोध नहीं किया। शायद उनको ऊपर दिये हुये दो प्रमाणों का ही भय होगा। खैर! खरतरों के यति ऐसे ही थे और उन्होंने लज्जा के मारे ऊंचा मुंह नहीं किया पर जैन समाज को तो इस बात का सख्त विरोध करना था। क्या जैन भाई घर के घर में ही जंग मचाना जानते हैं कि थोड़ी थोड़ी बातों में जंग कर बैठते हैं? परन्तु ऐसे आक्षेप करने वालों के सामने चूं तक भी नहीं करते हैं, क्या अब भी जैन समाज में जीवन है कि वे इसका कुछ प्रतिकार करे?

मंत्री कर्मचन्द वच्छावत

मंत्री कर्मचन्द जैन समाज में प्रख्यात मुशदियों में एक है। आपके जीवन के विषय में कई खरतर यतियों ने रास वगैरह भी लिखे हैं क्योंकि ख. यतियों की इन पर पूर्ण कृपा थी। यही कारण है कि ख. यतियों के षड्यंत्र में इनका सहयोग रहता था। अतः कई ऐतिहासिक पुस्तकों में खर. यतियों के साथ साथ मन्त्री कर्मचन्द पर भी ऐसे ऐसे लांछन लगाये गये हैं कि जिसको पढ़कर जैन समाज को दुःख हुये बिना नहीं रहता है पर बिचारा जैन समाज इसके लिये कर भी तो क्या सके? क्योंकि यह तो केवल घर शूरा अर्थात् घर के घर ही लड़ना

झगड़ना जानता है, जिस पुस्तक को छपे आज ३३ वर्ष हो गुजरा है किसी ने चूं तक भी नहीं किया। यदि जैन समाज इन बातों को नहीं जानता हो तो मैं आज एक दो उदाहरण आपके सामने रख देता हूँ।

''वि. सं. १६५२ में इनके मंत्री मेहता कर्मचन्द आदि कुछ लोगों ने इनको मारने की और इनके स्थान में इनके पुत्र दलपतसिंहजी को गद्दी पर बिठाने की साजिश की। परन्तु यह भेद खुल गया। इस पर कर्मचन्द भाग कर अकबर की शरण में चला गया और उसे रायसिंहजी की तरफ से भड़काने लगा। अकबर ने भी उसके कहने में आकर बीकानेर राज्य के भरथनेर आदि कई परगने राजकुमार दलपतसिंहजी को जागीर में दे दिये। इसी दीन से बाप बेटों में अनबन शुरु हुई। दलपतसिंहजी ने राज्य के कई परगनों पर कब्जा कर लिया। जिस समय वि. सं. १६६४ में रायसिंहजी दिल्ही गये उस समय कर्मचन्द मृत्युशय्या पर पड़ा था। अतः ये भी उससे मिलने को गये और उसका अन्तिम समय निकट देख बड़ा शोक[१] प्रकट किया। जब कर्मचंद मर गया तब उसके पुत्रों को भी इन्होंने बहुत कुछ दिलासा दिया।

इसी बीच वि. सं. १६६२ में बादशाह अकबर मर चुका था और जहांगीर दिल्ही के तख्त पर बैठा था। परन्तु वह भी इनसे नाराज[२] हो गया, इस लिये यह लौट कर बीकानेर चले आये।''

भारत के प्राचीन राजवंश, भाग तीसरा, पृष्ठ ३२७

मंत्री कर्मचंद को बीकानेर नरेश ने क्यों निकाल दिया इसका कारण तो आपने पढ़ लिया, पर मंत्री कर्मचन्द बादशाह अकबर के पास आकर क्या करता था और बादशाह अकबर उस पर क्यों प्रसन्न रहता था जिसके लिये एक किताब में लिखा है कि :-

''बादशाह के यहां नौ रोज के जलसों में मीनाबाजार लगता था, जिसमें अमीरों की औरतें भी बुलाई जाती थी। पृथ्वीराज ने अपनी रानी

---

१. कहते हैं कि कर्मचंद ने मरते समय अपने पुत्रों को समझा दिया था कि वे राजा रायसिंहजी के प्रलोभन में पड़ कर कभी बीकानेर न जावें। राजाजी ने जो शोक प्रकाशित किया है वह केवल इस कारण से है कि वे मुझ से बदला न ले सके और पहले ही मेरा अन्त समय निकट आ पहुंचा है।

२. इस नाराजी का कारण हम ऊपर मछली के लेख में लिख आये हैं कि राजा रायसिंह खरतरयति मानसिंह से जहाँगीर के राज की अवधि पूछता है इत्यादि परन्तु इस षडयंत्र का भेद जहाँगीर को मिल जाने से वह सख्त नाराज था।

चांपादेवी को वहां जाने से मना कर रखा था। मगर रायसिंहजी के दीवान करमचन्द के भेद दे देने से (जो बीकानेर से निकाला हुआ बादशाह के पास रहता था) बादशाह पृथ्वीराज से उनकी अंगूठी देखने के बहाने लेकर महल में चले गये। जहां से वह अंगूठी चांपादे रानी के पास पृथ्वीराज के नाम से भेज कर कहलाया कि तुमको मीनाबाजार में जाने की आज्ञा है। रानी धोखे में आकर चली गई।''

राजरसनामृत, पृष्ठ ४०

'दीवान कर्मचंद के भेद दे देने से' – इस शब्द का क्या अर्थ हो सकता है? क्या राठौर वीर पृथ्वीराज की रानी चम्पादेवी को बादशाह अकबर से मिलाने का उपाय कर्मचन्द ने बतलाया था ? जिससे बादशाह चम्पादेवी को मीनाबाजार में बुला कर उससे मिला। यदि यह बात गलत है तो जैनसमाज को इसका जोरों से विरोध करना चाहिये।

मैंने ये दो बातें लिखी हैं, इसमें मेरा आशय जैन समाज को चैतन्य कर उनको अपने कर्तव्य का भान कराना है।

इनके अलावा श्रीयुत छोटेलाल शर्मा फुलेरा वालों ने ई. सन् १९१४ में एक ''जाति अन्वेषण प्रथम भाग'' नामक किताब मुद्रित करवाई थी, जिसके पृष्ठ १३२ से १३८ तक ओसवालों की जातियों के लिये ऐसा मिथ्या आक्षेप किया था कि ओसवालों में शूद्र जातियां जो भंगी, ढेढ़, चमार आदि भी शामिल हैं अतः इनको शूद्र जाति में ही दर्ज करना चाहिये। वह किताब मैंने सन् १९२६ में पीपाड़ में देखी तो पीपाड़ श्रीसंघ को उपदेश दिया और उन्होंने शर्माजी को एक नोटिस भी दिया। जवाब में शर्माजी ने अपनी भूल को स्वीकार कर ली, इतना ही क्यों पर उन्होंने लिखा कि इस विषय में जो आप सत्य बात भेजेंगे तो मैं छापने को तैयार हूँ इत्यादि।

इस प्रकार जैनधर्म के सुयोग्य पुरुषों पर अन्य लोगों ने कई प्रकार के आक्षेप किये हैं, परन्तु जैनियों को घर के झगड़ों के अलावा इतना समय कहां मिलता है कि वे इस प्रकार साहित्य का अन्वेषण करके अपने पूर्वजों पर लगाये हुये लांछनों का मुंहतोड़ उत्तर दें। इतना ही क्यों पर कोई व्यक्ति इस प्रकार की बातें समाज के सामने प्रगट करे तो उल्टा अपमान समझ कर उस पर एक दम टूट पड़ते हैं परन्तु यह नहीं सोचते हैं कि यदि हम इन बातों का प्रतिकार न करें तो भविष्य में इसका क्या बुरा परिणाम होगा ? खैर, मैंने तो इसको ठीक समझ कर ही जैनसमाज के सामने रक्खा है। अब इस पर योग्य विचार करना जैन समाज का कर्तव्य है।

इति खरतरमतोत्पत्ति भाग तीसरा समाप्तम्

जैन इतिहास ज्ञानभानुकिरण नं. २५

श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः

खरतरमतोत्पत्ति-भाग चौथा

लेखक

इतिहासप्रेमी मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु. फलौदी (मारवाड़)

ओसवाल संवत् २३९६

वीर संवत् २४६६ (वि. सं. १९९६) ई. सं. १९३९

प्रथमावृत्ति
५००

मूल्य
दो आना

श्री जैन इतिहास ज्ञानभानुकिरण नं. २५
श्रीरत्नप्रभसूरीश्वरपादपद्मेभ्यो नमः

खरतरमतोत्पत्ति-भाग चौथा

खरतरमतोत्पत्ति भाग १-२-३ आपकी सेवा में उपस्थित कर दिये थे। जिनको आद्योपान्त पढ़ने से आपको ठीक विदित हो गया होगा कि खरतर मत की उत्पत्ति उत्सूत्र से ही हुई है और जो व्यक्ति एक उत्सूत्र भाषण करता है उसको और किस किस प्रकार अनर्थ करने पड़ते हैं? जैसे व्यापारी लोग बदनीयती से अपनी एक बही से निकालते हैं तब उसको और भी कई बहियों से पन्ना निकाल कर रद्दोबदल करना पड़ता है, यही हाल हमारे खरतर भाइयों का हुआ है, जिसके लिये यह चतुर्थ भाग आपके कर कमलों में रक्खा जाता है, जिसको पढ़ने से आपको अच्छी तरह से रोशन हो जायेगा कि इन उत्सूत्रवादियों ने जैनधर्म में परम्परा से चली आई क्रिया समाचारी में कैसे एवं किस प्रकार रद्दोबदल करके बिचारे भद्रिक जीवों को उन्मार्ग पर लगा कर संसार के पात्र बनाये हैं।

१. नमस्कार मंत्र

१. श्रीभगवतीजी आदि सूत्रों के मंगलाचरण में ''नमो अरिहन्ताणं'' कहा है और सब गच्छों वाले 'नमो' ही बोलते हैं पर खरतरे 'णमो अरिहन्ताणं' कहते एवं लिखते हैं। नमो और णमो का अर्थ तो एक ही होता है, पर और गच्छवाले करें वैसे खरतर नहीं करते हैं। यह एक उनका हठ ही है।

२. स्थापनाचार्य

१. जब श्रावक सामायिकादि धर्म-क्रिया करते हैं तब उस समय पुस्तकादि की स्थापना करते हैं और पंचेंदिया की दो गाथा कहकर आचार्य के ३६ गुणों की स्थापना करते हैं तब खरतर तीन नवकार कहते हैं।

२. वर्तमान शासन के आचार्य सौधर्मगणधर हैं और उनकी ही स्थापना की जाती है पर खरतरे स्थापना पंच परमेष्ठी की करते हैं। यह गलत है क्योंकि क्रिया गुरु आदेश से की जाती है।

३. आचार्य भद्रबाहुस्वामी ने स्थापना कुलक में स्थापनाचार्य के लक्षण कहे हैं वह स्वाभाविक स्थापनाजी में ही होते हैं। पर खरतरे चन्दन के स्थापनाजी

बनाकर रखते हैं।

३. सामायिक

१. सामायिक लेने के पूर्व क्षेत्रविशुद्धि के लिये श्रावक को इर्यावही करना शास्त्र में लिखा है पर खरतर क्षेत्र विशुद्धि न करके पहले सामायिक दंडक उच्चार कर बाद में इर्यावही करते हैं। यदि उनको पूछा जाय कि सामायिक लेते समय सावद्य योगों का प्रत्याख्यान कर लिया फिर तत्काल ही कौन सा पाप लगा कि जिसकी इर्यावही की जाती है? शायद खरतरमत में सामायिक दंडक उच्चारना भी पाप माना गया हो कि सामायिक दंडक उच्चरते ही इर्यावही करना पड़े पर उल्टे मत के सब रास्ते ही उल्टे होते हैं।

२. सामायिक लेने के पूर्व अब्भुट्ठिओं कहने का विधान न होने पर भी खरतरों ने यह पाठ कहना शुरु कर दिया है।

३. साधु दीक्षा लेते हैं तब उनको नान्द के तीन प्रदक्षिणा करवाते हुये तीन बार सामयिक दंडक उच्चराया जाता है जो जावजीव के लिये है। पर खरतरों ने श्रावक के इतरकाल की सामयिक भी तीन बार उच्चरानी शुरु कर दी। यह कैसी अनभिज्ञता है?

४. सामायिक लेने के बाद 'पांगरणुसंदिसाहूँ' का किसी स्थान पर विधान न होने पर भी खरतरों ने यह नयी ही क्रिया कर डाली है।

५. सामायिक में स्वाध्याय के स्थान तीन नवकार कहा जाता है। पर खरतरों ने ८ नवकार कहना शुरु कर दिया। यह नये मत की नयी क्रिया है।

६. दो घड़ी की सामायिक में मन वचन काया के योगों से किसी प्रकार अतिचार लगा हो तो सामायिक पारने के पूर्व इर्यावही करना खास जरुरी है। पर खरतरे नहीं करते हैं।

७. सामायिक पारते समय 'सामाइयवयजुत्तो' पाठ कहना चाहिये पर खरतरों ने एक नया ही पाठ बना रखा है जो 'भयवंदंसण्णभद्दो' कहते हैं।

४. पौषधव्रत

१. पर्वतिथि में श्रावक नियमित पौषधव्रत करे पर पर्व के अलावा अन्य दिन भी अवकाश मिले तो श्रावक पौषधव्रत कर सकते हैं पर खरतरों ने अज्ञानवश यह हठ पकड़ लिया है कि श्रावक पर्व के अलावा पौषधव्रत नहीं कर सकते। इसमें सिवाय अन्तराय कर्मबन्ध के कोई लाभ नहीं है। कारण, सुखविपाक सूत्र में सुबाहुकुमार और ज्ञातासूत्र में नन्दन मिणियार ने एक साथ तीन दिन पौषध किये हैं। इसी प्रकार और भी बहुत से श्रावक तीन तीन दिन पौषधव्रत करते थे। इसमें

शायद चौदस–पूर्णिमा को तो पर्व तिथि कही जा सकती है पर साथ में प्रतिपदा अथवा त्रयोदशी तिथि भी आती थी। अतः पर्व के अलावा जब कभी श्रावक को अवकाश मिले उस दिन ही पौषधव्रत कर सकते हैं, ऐसा जैनागमों में कहा है।

२. श्रावक जैसे चोविहार तिविहार उपवास कर पौषधव्रत करते हैं वैसे ही एकासना आंबिल करके भी पौषध कर सकते हैं। श्रीभगवतीजी सूत्र में पोक्खली आदि अनेक श्रावकों के लिए खा पीकर पौषध करने का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, फिर भी खरतरों ने एकासना कर पौषध करना निषेध कर दिया, जिससे सैकड़ों वर्षों से बिचारे खरतरों के विश्वास पर रहने वाले श्रावक इस प्रकार पौषधव्रत से वंचित ही रहे। इसके अन्तराय कर्म के भागी वही होंगे कि जिन्होंने ऐसी उत्सूत्र प्ररुपणा की थी। आखिर अब खरतरे भी एकासना कर पौषध करने लग गये हैं जैसे हाल ही फलौदी के खरतर श्रावकों ने किया है।

३. पौषध के साथ में सामायिक दंडक भी उच्चारा जाता है और पौषध पारते हैं तब सामायिक भी पारा जाता है पर खरतरे आठ पहर का पौषध करते हैं तब पिछली रात्रि में पुनः सामायिक करते हैं और कहते हैं कि पौषध के साथ की हुई सामायिक में निद्रा आ जाने से सामायिक का भंग हो जाता है। अतः हम पुनः सामायिक करते हैं पर यह केवल हठकदाग्रह ही है। कारण दो करण तीन योग से जैसे सामायिक है वैसे ही दो करण तीन योग से पौषध है तब निद्रा लेने से पौषधव्रत का भंग नहीं होता है तो सामायिक का कैसे भंग हो जाता है। यदि ऐसा ही है तो साधु के तीन करण तीन योग से सामायिक है और वे भी संथारा पौरसी भणा के निद्रा लेते हैं, इतना ही क्यों पर उत्तराध्ययनसूत्र के २६वें अध्याय में ऐसा भी कहा है कि साधु रात्रि के समय पहले पहर में स्वाध्याय करे, दूसरे पहर में ध्यान करे, तीसरे पहर में निद्रा ले और चौथे पहर में पुनः स्वाध्याय करे। अतः श्रावक पौषध में संथारा पौरसी भणाकर प्रमादनिवार्णार्थ निद्रा ले तो उसके न तो पौषधव्रत का भंग होता है और न सामायिकव्रत का ही भंग होता है।

४. पौषध में तीन बार देववन्दन करने का शास्त्रों में विधान है पर खरतरे दो वक्त ही देववंदन करते हैं।

५. प्रतिक्रमण

१. अतिचारों में सात लाख तथा अठारह पापों का विधान है पर खरतरों ने 'ज्ञान दर्शन' आदि नया ही विधान मिला दिया है। जिससे पुनरुक्ति दोष लगता है।

२. तीसरा आवश्यक की मुँहपत्ति का आदेश लेने का कहीं भी विधान नहीं

है पर नये मत में यह एक नयी प्रथा कर डाली है कि तीसरा आवश्यक की मुँहपत्ति का आदेश मांगते हैं।

३. वंदितुसूत्र में 'तस्स धम्मस्स केवलि पन्नत्तस्स' यह पाठ प्रकट बोलने का है पर खरतर इस पाठ को स्पष्ट बोलने की मनाई करते हैं और धीरे से चुपचाप बोलते हैं।

४. सुबह के चैत्यवंदन और प्रतिक्रमण के बीच स्वाध्याय करने का विधान होने पर खरतर उस जगह स्वाध्याय नहीं करते हैं।

५. प्रतिक्रमण के अन्दर 'अड्ढाईजेसुदीवसमुद्देसु' कहने का विधान होने पर भी कई खरतर इस पाठ को नहीं कहते हैं।

६. क्षुद्रोपद्रव का काउस्सग्ग और इसके साथ में चैत्यवंदन का विधान नहीं है वह तो खरतर करते हैं और दुःखक्खओ कम्मक्खओ का विधान होने पर भी वह नहीं करते हैं।

७. दुःखक्खओ कम्मक्खओ का काउस्सग्ग के बाद लघुशान्ति कहने की परम्परा है, खरतर नहीं कहते हैं पर उसको ही आगे चलकर कहते हैं।

८. प्रतिक्रमण में किसी आचार्य का काउस्सग्ग करने का विधान नहीं है तब खरतर अपने आचार्यों के काउस्सग्ग करते हैं फिर भी गणधर सौधर्म और जम्बु केवलि जैसे आचार्यों को तो वे भूल ही जाते हैं।

९. पक्खी, चौमासी और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के देववंदन में जयतिहुण स्तोत्र जो आचार्य अभयदेवसूरि ने कारणवसात् बनाया था, चैत्यवंदन किया जाता है जिसमें :-

तइ समरंत लहंति झत्ति वर पुत्तकलत्तइ,
धण्णसुवण्णहिरण्णपुण्ण जण भुंजई रज्जइ।
पिक्खइ मुक्ख असंखसुक्ख तुह पास पसाइण,
इअ तिहुअणवरकप्परुक्ख सुक्खइकुण महजिण ॥

निर्वृत्ति भाव से प्रतिक्रमण में ऐसे श्लोकों को कहना एक विचारणीय विषय है।

६. असठ आचरण

१. जिस आचरण को असठ भावों से बनाया है और सब लोगों ने उसको स्वीकार किया है वह आचरण सकल श्रीसंघ को मानने योग्य है, जैसे सिद्धाणं बुद्धाणं के मूल दो श्लोक हैं, अभी पांच श्लोक कहे जाते हैं, जयवीयराय के दो श्लोक हैं, अभी पांच श्लोक कहे जाते हैं पर खरतर सिद्धाणं बुद्धाणं के तो पांच

श्लोक मानते हैं तब जयवीयराय के दो श्लोक कहकर तीन श्लोक छोड़ देते हैं।

२. वादीवैताल[१] शान्तिसूरि की बनाई बृहद्शान्ति में खरतरों ने अपने मताग्रह से कई नये पाठ मिला दिये हैं जिसको किसी गच्छवालों ने मंजूर नहीं किया।

७. कल्याणक

१. भगवान् महावीर के च्यवन, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण एवं पांच कल्याणक मूलसूत्रों में एवं हरिभद्रसूरि के पंचासक में तथा अभयदेवसूरि की टीका में स्पष्टतया माने हैं पर जिनवल्लभसूरि ने वि. सं. ११६४ के आश्विनकृष्णत्रयोदशी के दिन चितौड़ में गर्भापहार नामक छट्ठे कल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा कर डाली, जिसको खरतर आज पर्यंत मानते हैं और उस उत्सूत्र की पुष्टि के लिये आगमों के झूठे अर्थ कर भद्रिकों को बहकाते हैं। पर खास खरतरों के माननीय ग्रन्थ जिनदत्तसूरि रचित 'गणधरसार्द्धशतक' की बृहद्वृत्ति आदि को नहीं देखते हैं कि वे खुद क्या लिखते हैं जैसे कि–

१. चित्तौड़ में जाकर जिनवल्लभसूरि ने चामुण्डा देवी को प्रतिबोध किया और महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठे कल्याणक को प्रगट किया।

'गणधर सार्द्धशतक लघुवृत्ति'

२. जिनवल्लभसूरि ने चित्तौड़ में कन्धा ठोककर छट्ठा कल्याणक को प्रकट किया।

'गणधर सार्द्धशतक बृहद्वृत्ति'

३. जिनवल्लभसूरि ने चित्तौड़ में चातुर्मास किया। वहाँ आश्विन कृष्णा त्रयोदशी को महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठे कल्याणक के अक्षर सूत्र में मिले, अतः उन्होंने वीर के गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक की प्ररुपणा की इत्यादि।

'गणधर सार्द्धशतकान्तर्गत प्रकरण'

इत्यादि खरतरों के खास घर के प्रमाणों से ही सिद्ध होता है कि जिनवल्लभसूरि ने महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठे कल्याणक की नयी प्ररुपणा की थी। यही कारण है कि उस समय के संविग्नसमुदाय और असंविग्नसमुदाय ने जिनवल्लभ को संघ से बहिष्कृत कर दिया था। इस विषय में देखो खरतरमतोत्पत्ति भाग तीसरा।

---

१. वादीवैताल शान्तिसूरि के बनाये चैत्यवंदन बृहद् भाष्य में जयवीयराय की दो गाथाओं के साथ 'वारिज्जइ' तथा 'दुःक्खक्खओ कम्मक्खओ' की गाथा कहना लिखा है। पूर्वोक्त आचार्य की बनाई बृहद्शांति तो खरतर मानते हैं पर उपरोक्त दो गाथा नहीं मानते हैं। वह नये मत की विशेषता है।

८. जिनप्रतिमा की पूजा

१. जैसा पुरुषों को प्रभुपूजा कर आत्मकल्याण करने का अधिकार है वैसा ही स्त्रियों को भी जिनपूजा कर आत्मकल्याण करने का अधिकार है। और जैनागमों में प्रभावती, चैलना, मृगावती, जयन्ति, सुलसा, सेवानन्दा, देवानन्दा और द्रौपदी वगैरह महिलाओं ने परमेश्वर की द्रव्यभाव से पूजा की भी है पर प्रबल मोहनीयकर्म के उदय से वि. सं. १२०४ में जिनदत्तसूरि ने पाटण के जिनमंदिर में रक्त के छींटे देख स्त्रीजाति के लिये जिनपूजा करना निषेध कर दिया। आज करीब सात आठ सौ वर्ष हुए बिचारी खरतरियां जिन-पूजा से वंचित रहती हैं। इस धर्मान्तराय का मूल कारण जिनदत्तसूरि ही हैं।

फिर भी पुरुषों की तकदीर ही अच्छी थी कि जिनदत्तसूरि ने किसी पुरुष को आशातना करते नहीं देखा वरना वे तो पुरुषों को भी जिनपूजा करने का निषेध कर देते जैसे स्त्रियों को किया था। अर्थात् शासन के एक अंग के बजाय दोनों अंग काट डालते।

९. तिथि क्षय एवं वृद्धि

१. तिथि का क्षय[१] हो तो क्षय के पूर्व की तिथि का क्षय मानना चाहिये, जैसे अष्टमी का क्षय हो तो उसके पूर्व की तिथि सातम का क्षय समझ कर सातम को अष्टमी मान कर पर्वाराधन करना चाहिये तथा पूर्णिमा का क्षय हो तो तेरस का क्षय करके दूसरे दिन चौदस और तीसरे दिन पूर्णिमा का पर्वआराधन करना चाहिये।

यदि तिथि की वृद्धि हो तो पूर्व की तिथि को वृद्धि करके दूसरी तिथि को पर्वतिथि मानना चाहिये, जैसे अष्टमी दो हों तो पहली अष्टमी को दूसरी सातम समझना और पूर्णिमा दो हों तो तेरस दो समझना ऐसा शास्त्रकारों का स्पष्ट मत है, पर खरतरों का तो मत ही उलटा है कि वे अष्टमी का क्षय होने से अष्टमी का पर्व नौमी को करते हैं कि जिसमें अष्टमी का अंश मात्र भी नहीं रहता है तथा

---

१. **'यथा क्षये पूर्वा तिथि कार्या वृद्धौ कार्या तथोत्तराः।**

(उमास्वाति वाचक)

'अह जह कहवि न लभई। तताउ सूरूगामेण जुत्ताउ।
ता अवरविद्ध अवरावि। हुज्ज नहु पुव्व तव्विद्धा'॥
एवं हीणचऊदसी। तेरसिजुत्ता न दोसमावहई।
सरणंगउवि राया। लोआणं होइ जह पुज्जो॥

अष्टमी की वृद्धि होने से पहली अष्टमी को पर्व मानते हैं फिर भी विशेषता यह है कि चौदस का क्षय होने पर पाक्षीक प्रतिक्रमण पूर्णिमा को करते हैं जो खास तौर अपनी मान्यता से भी खिलाफ है।

१०. पर्व

१. अधिक मास को शास्त्रकारों ने कालचूला एवं लुनमास माना है। यदि श्रावण मास दो हों तो प्रथम श्रावण को लुनमास समझ कर सांवत्सरिक प्रतिक्रमण भाद्रपद में ही किया जाता है तथा भाद्रपद दो हों तो प्रथम भाद्रपद को लुनमास समझ कर दूसरे भाद्रपद में ही सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना चाहिये पर खरतरे कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ मास दो हों तो चतुर्मासिक प्रतिक्रमण दूसरे कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ में करते हैं तथा आश्विन एवं चैत्र मास दो हों तो आंबिल की ओलियां दूसरे आसोज एवं दूसरे चैत्र मास में करते हैं। पर श्रावण भाद्रपद मास दो हों तो दूसरा श्रावण या पहले भाद्रपद में सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करते हैं। यह एक शास्त्रों की अनभिज्ञता या मिथ्या हठ ही कहा जा सकता है।

यदि खरतर भाई कहते हैं कि आषाढ़ चातुर्मासी से ५० वे दिन सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना चाहिये। जब श्रावण दो हों तो दूसरे श्रावण और भाद्रपद दो हों तो पहले भाद्रपद में सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने से ही ५० दिन माने कहा जा सकता है पर वे भाई समवायांगजी सूत्र के पाठ को नहीं देखते हैं कि आषाढ़ चातुर्मासिक से ५० दिन तथा कार्तिक चातुर्मास के ७० दिन पूर्व सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना चाहिये। जब दूसरे श्रावण तथा पहले भाद्रपद में सांवत्सरिक प्रतिक्रमण किया जाय तो पिछले ७० दिनों के बजाय १०० रह जायेगा अतः एक तरफ आज्ञापालन करने को जाते हैं तो दूसरी तरफ जिनाज्ञा भंग की गठरी सिर पर उठानी पड़ती है। इसमें भी विशेषता यह है कि पूर्व के ५० दिन अध्रुव हैं और पिछले ७० दिन ध्रुव हैं। अतः अब किसकी रक्षा करना जरुरी है?

अगर हमारे खरतर भाई कार्तिक, फाल्गुन, आषाढ़, आश्विन और चैत्र मास दो होने पर पहले मास को लुनमास मानकर सब धर्मकृत्य दूसरे मास में करते हैं तो इसी मुताबिक दो श्रावण भाद्रपद होने पर पहले को लुनमास एवं कालचूला मान लें तो पहले के ५० दिन भी रह सकते हैं और पिछले ७० दिन भी रह सकते हैं।

जैसे सोलह दिनों का पक्ष होने पर भी चौदस को पक्षी प्रतिक्रमण कर उसको पक्ष ही कहते हैं। ११८ एवं १२२ दिन का चौमासी प्रतिक्रमण कर उसे चौमासी

प्रतिक्रमण कहते हैं। इसी भांति एक अधिक मास को भी लुनमास समझ सांवत्सरिक प्रतिक्रमण कर लेना चाहिये। विशेष खुलासा देखो 'प्रवचन परीक्षा हिन्दी अनुवाद' नामक ग्रंथ में।

११. प्रत्याख्यान

१. श्रावक शाम को तिविहार के पच्चक्खान करते हैं उनके लिये रात्रि में कच्चा पानी का त्याग नहीं होता है पर खरतर कच्चा पानी पीने वालों को दुविहार के ही प्रत्याख्यान करवाते हैं और कहते हैं कि तिविहार के प्रत्याख्यान करने वालों को रात्रि में अचित पानी पीना चाहिये, फिर ऐसे भी कुतर्क करते हैं कि तिविहार उपवास में भी कच्चा पानी पीना खुल्ला रहता हो तो तिविहार उपवास में भी कच्चा पानी क्यों नहीं पी लिया जाय? पर उन जैनागमों के अनभिज्ञों को इतना भी ज्ञान नहीं है कि जिस पानी को पीना खुल्ला रक्खा जाता है और उसमें पानी के छः आगार कहा जाता है वह अचित पानी पीता है और जिसको पानी के छः आगार नहीं कहा जाता है वह सचित पानी पी भी सकता है।

२. श्रावकों के तिविहार उपवास तथा एकासना आंबिल के प्रत्याख्यान में पानी के छः आगार[1] कहना लिखे होने पर भी खरतर पानी के आगार नहीं कहते हैं।

१२. भक्ष्याभक्ष्य

शास्त्रों में पानी में पकाये हुये पदार्थों अर्थात् सचलित होने से उसे अभक्ष्य बतलाया है। उसको खरतर लोग खा जाते हैं और संगरियो आदि में किसी स्थान पर विद्वल नहीं कहा है उसको विद्वल बतलाते हैं। इस विषय को विस्तार से देखो प्रवचनपरीक्षा नामक ग्रन्थ में।

१३. श्रावक की प्रतिमा

श्रावक को प्रतिमावाहन का किसी सूत्र में निषेध नहीं किया है पर खरतरों ने पंचारा का नाम लेकर श्रावक को प्रतिमावाहन करने का निषेध कर दिया पर

---

१. **'अचित भोइयाणं सड्ढाण मुणीणं हुंति आगारा पाणस्स य छच्चैव उ निसिनो तिविहे सचित्ताण'॥**

लघुप्रवचनसारोद्धार कर्ता चन्द्रसूरि मलधार

तह तिविह पच्चक्खाणे भणंति अ पाणग छ आगारा दुविहारे अचित्तभोइणो तहय फासुजले '।

प्रत्याख्यान भाष्य कर्ता देवेन्द्रसूरि

यह विचार नहीं किया कि पंचम आरा में जब साधु साधुपना भी पालन करता है जो श्रावक के प्रतिमावाहन से कई गुणा कष्ट परिसह सहन करना पड़ता है तो फिर श्रावक प्रतिवाहन क्यों नहीं कर सकेगा ? यदि कहो कि श्रावक से इतने परिसह सहन नहीं हो सकते हैं तो सोचना चाहिये कि साधु होते हैं वह सब श्रावक के घरों से ही होते हैं, यदि वे श्रावक परिसह सहन करने में इतने कमजोर होंगे तो वे साधुत्व को कैसे पालन कर सकेंगे ? खरतरों को तो ज्यों त्यों कर शासन के अंग प्रत्यंगों को काटना था।

१४. मासकल्प

१. बृहत्कल्पादि सूत्रों में साधुओं के नौकल्पी विहार का अधिकार लिखा हुआ मिलता है। अतः शीतोष्ण काल के आठ मास के आठ कल्प और चातुर्मास के चार मास का एक कल्प एवं नौकल्प कहा है। पर खरतरों ने पंचमारा का नाम लेकर मासकल्प का भी निषेध कर दिया। इसमें मुख्य कारण क्षेत्र-ममत्व और जिह्वा की लोलुपता ही है।

१५. उपधान

१. शास्त्रकारों ने साधुओं के योगद्वाहन और श्रावकों के उपधान तप का शास्त्रों में प्रतिपादन किया है पर खरतरों ने योगद्वाहन को तो माना है पर उपधान का निषेध कर दिया था, फिर भी कृपाचन्द्रसूरि ने खरतर होते हुये भी अपने पूर्वजों के निषेध किये उपधान करवाये थे।

१६-पूर्वाचार्योंने आंबिल के लिये लिखा है कि जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट एवं तीन प्रकार के आंबिल होते हैं। अतः आंबिल में दो द्रव्य एवं दो से अधिक द्रव्य[१] भी खा सकते हैं पर खरतरों ने आंबिल में दो द्रव्य का ही आग्रह कर रखा है।

१७. जिनवल्लभसूरि कुर्च्चपुरागच्छ के चैत्यवासी जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे और उन्होंने गुरु को छोड़ अपना विधि मार्ग नामक एक नया मत चलाया था पर खरतर कहते हैं कि जिनवल्लभसूरि अभयदेवसूरि के पट्टधर थे किन्तु यह बात बिलकुल गलत है। कारण अभयदेवसूरि अपनी विद्यमानता में वर्धमानसूरि को अपना पट्टधर बना गये थे। अतः जिनवल्लभ अभयदेवसूरि के पट्टधर नहीं हो

---

१. **मलधारगच्छिय हेमचंद्रसूरि के शिष्य चंद्रसूरि ने लघुप्रवचन सारोद्धार ग्रन्थ में कहा है कि आंबिल में दो द्रव्य के अलावा और भी कई द्रव्य खा सकते हैं।**

सकता है, दूसरा अभयदेवसूरि शुद्ध चन्द्रकुल की परम्परा में थे तब जिनवल्लभसूरि कुर्च्चपुरीया गच्छ के चैत्यवासी साधु था।

१८. जगचिन्तामणि के चैत्यवंदन में भी खरतरों ने न्यूनाधिक कर दिया है जैसे कि–

''सत्ताणवइ सहस्सा, लक्खा छप्पन्न अट्ठ कोडीओ।
बत्तिसय बासिआइं, तिअलोए चेइए वंदे॥
पनरस कोडिसयाइं, कोडी बायाल लक्ख अडवन्ना।
छत्तीस सहस असिइं, सासयबिंबाइं पणमामि॥''

इसके बदले में खरतरों ने दो गाथा इस प्रकार लिख दी हैं।

''सत्ताणवइ सहस्सा, लक्खा छप्पन्न अट्ट कोडीओ।
चउसय छायासीया, तिअलोए चेइए वंदे॥
वन्दे नवकोडिसयं, पणवीसं कोडि लक्ख तेवन्ना।
अट्ठावीस सहस्सा, चउसय अट्ठासिया पड़िमा॥''

और भी कई ऐसी बातें हैं कि खरतरे परम्परा से विरुद्ध करते हैं जैसे कि–

१. प्रतिक्रमण के आदि में 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्' कहना शास्त्रों में कहा है तब खरतर इसको नहीं कहते हैं।

(शुद्ध समाचारी प्रकाश, पृष्ठ १८५)

२. प्रतिक्रमण में साधु [१]आयरिय उवज्जाये तीन गाथा कहते हैं परन्तु खरतर नहीं कहते हैं।

(शुद्ध समाचारी, पृष्ठ १९६)

१९. खरतरमत

(१) आचार्य जिनेश्वरसूरि और अभयदेवसूरि शुद्ध चान्द्रकुल की परम्परा में हैं ऐसा खुद अभयदेवसूरि ने अपनी टीका में लिखा है, पर आधुनिक खरतर इन आचार्य को खरतर बनाने का मिथ्या प्रयत्न कर रहे हैं। देखो खरतरमतोत्पत्ति भाग १–२–३।

(२) यह बात निश्चित हो चुकी है कि खरतर मत की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण हुई है, पर खरतरलोग कहते हैं कि वि. सं. १०८० में पाटण

---

१. **'खामणाणिमितं पडिक्कमणणिवेदणत्थं वंदंति ततो आयरियमादी पडिक्कमणत्थमे वदंसेमाणा खामेति। उक्तं च आयरिय उवज्जाए सीसे साहम्मिए कुलगणेवा' इत्यादि गाथात्रिक पढ़ने को कहा है।**

के राजा दुर्लभ की राजसभा में जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों के आपस में शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें जिनेश्वरसूरि खरा रहने से राजा ने उनको खरतर बिरुद दिया इत्यादि, पर यह बात बिलकुल जाली एवं बनावटी है कारण खास खरतरों के ही ग्रन्थ इस बात को झूठी साबित कर रहे हैं जैसे कि :-

१. खरतरों ने जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का समय वि. सं. १०२४ का लिखा है पर उस समय न तो जिनेश्वरसूरि ने अवतार लिया था और न राजा दुर्लभ का जन्म ही हुआ था।

२. अगर खरतर कहते हों कि वि. सं. १०२४ लिखना तो हमारे पूर्वजों की भूल है पर हम १०८० का कहते हैं तो भी बात ठीक नहीं जचती क्योंकि पाटण में राजा दुर्लभ का राज वि. सं. १०७८ तक ही रहा ऐसा इतिहास स्पष्ट जाहिर कर रहा है।

३. खरतरों ने उद्योतनसूरि, वर्धमानसूरि को भी खरतर लिखा है, इससे भी जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिलना मिथ्या साबित होता है क्योंकि वर्धमानसूरि जिनेश्वरसूरि के गुरु और वर्धमानसूरि के गुरु उद्योतनसूरि थे जब कि उद्योतनसूरि और वर्धमानसूरि ही खरतर थे तो जिनेश्वरसूरि के लिये खरतर बिरुद मिलना लिखना तो स्वयं मिथ्या साबित हो जाता है।

(३) खरतर आप अपने को चान्द्रकुल के होने बतलाते हैं पर खरतरों की कई पट्टावलियों से वे चन्द्रकुल के होने साबित नहीं होते हैं, उन पट्टावलियों से एक पट्टावली केवल नमूना के तौर पर यहां उद्धृत कर दी जाती है।

पट्टावलियों में सौधर्माचार्य से सुहस्तीसूरि तक के नाम तथा उद्योतनसूरि के बाद के नाम तो ठिक मिलते झुलते हैं पर सुहस्ती से उद्योतनसूरि तक के बीच के आचार्यों की नामावली में इतना अन्तर है कि किसी ने कुछ लिख दिया तो किसी ने कुछ लिख दिया है। इस समय खरतरों की बारह पट्टावलियां मेरे पास मौजूद हैं, पर उसमें शायद ही एक पट्टावली दूसरी पट्टावली से मिलती हों। देखिये नमूना।

चरित्रसिंह कृत (२) गुर्वावली

१. आचार्य सुहस्ती	३. आचार्य हरिभद्र	५. आचार्य संडिलसूरि
२. आचार्य शांतिसूरि	४. आचार्य स्यामाचार्य	६. आचार्य रेवतीमित्र

७. आचार्य धर्माचार्य
८ आचार्य गुप्त
९ आचार्य समुद्र
१० आचार्य मंगु
११ आचार्य सुधर्म
१२ आचार्य हरिबल
१३ आचार्य भद्रगुप्त
१४ आचार्य सिंहगिरि
१५ आचार्य वज्र
१६ आचार्य रक्षित
१७ आचार्य दुर्बलि का पुष्प
१८ आचार्य नन्दी
१९ आचार्य नागहस्ती
२० आचार्य रेवती
२१ आचार्य ब्रह्मद्वीपि
२२ आचार्य संडिल
२३ आचार्य हेमवन्त
२४ आचार्य नागार्जुन
२५ आचार्य गोविन्द
२६ आचार्य संभूतिदीन
२७ आचार्य लोकहित
२८ आचार्य दुष्यगणि
२९ आचार्य उमास्वाति
३० आचार्य जिनभद्र
३१ आचार्य हरिभद्र
३२ आचार्य देवाचार्य
३३ आचार्य नेमिचन्द्रसूरि
३४ आचार्य उद्योतनसूरि

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह, पृष्ठ २१८

यह पट्टावली शांतिसूरि शाखा की है न कि चान्द्रकुल की। एक दूसरी शान्तिसूरि की पट्टावली है जिसमें भी नामक्रम नहीं मिलते हैं। ऊपर की पट्टावली के नम्बर ११ तक ठीक हैं परन्तु वहां से आगे के नाम ठीक नहीं मिलते हैं। देखिये नं. १२-१३-१४ के आचार्य ऊपर की पट्टावली में हैं तब दूसरी पट्टावली में पूर्वोक्त नाम नहीं हैं। इसी प्रकार शान्तिसूरि की शाखा की जितनी पट्टावलियां खरतरों ने लिखी हैं वे सब इस प्रकार गड़बड़ वाली हैं।

दूसरे कई खरतरों ने चान्द्रकुल शाखा के नामों से भी पट्टावलियां लिखी हैं। उसमें भी नामों की बड़ी गड़बड़ है कि जैसे शान्तिसूरि की शाखा के नामों की पट्टावलियों में है। इससे स्पष्ट पाया जाता है कि खरतर मत एक समुत्सम पैदा हुआ मत है और इसका अस्तित्व जिनवल्लभसूरि के पूर्व कहीं भी नहीं मिलता है, जैसे बिना बाप के पुत्र से उसके पिता का नाम पूछो तो वह जी चाहे उसका ही नाम बतला सकता है, यही हाल खरतरों का है। खरतरों की पट्टावलियों के विषय में मैं एक स्वतन्त्र पुस्तक लिखकर थोड़े ही समय में आपकी सेवा में उपस्थित कर दूँगा। पाठक थोड़े समय के लिये धैर्य रखें।

खरतरमतोत्पत्ति विषय एक और भी प्रमाण

पं. हीरालाल हंसराज जामनगर वालों ने अपने ''जैनधर्म नो प्राचीन इतिहास भाग बीजो'' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १८ पर महोपाध्याय धर्मसागरजी महाराज की 'प्रवचन परीक्षा' का प्रमाण देते हुए गुजराती में खरतर-गच्छ के विषय में जो कुछ

लिखा है उसका सार यह है कि[१] जिनदत्तसूरि के बनाए हुए गणधर सार्द्धशतक नामक ग्रन्थ पर जिनपतिसूरि के शिष्य सुमतिगणि ने बृहद्वृत्ति रची है जिसके एक पैरेग्राफ में जिनवल्लभसूरि का वर्णन है जिसमें जिनवल्लभसूरि ने चित्तौड़ के किले में रह कर भगवान महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठे कल्याणक की प्ररुपणा की इत्यादि। दूसरे पैरेग्राफ में जिनदत्तसूरि के विषय में लिखा है कि जिनदत्तसूरि का स्वभाव ऐसा था कि उनको कोई भी व्यक्ति प्रश्न पूछता तो वे मगरुरी के साथ उत्तर देते थे; इसलिये उनको लोग खरतर-खरतर कहने लग गये थे; अतः खरतर मत की उत्पत्ति वि. सं. १२०४ में जिनदत्तसूरि से हुई।

इस विषय में पाश्चात्य संशोधकों का भी यही खयाल है कि खरतर मत की उत्पत्ति वि. सं. १२०४ में जिनदत्तसूरि से ही हुई है जैसे कि :-

डॉक्टर बुलर अपनी रिपोर्ट पृष्ठ १४९ पर लिखता है कि :-

"The Kharatara sect then arose according to an old Gatha in Samvat 1204. Jinadatta was a proud man and even in his pert answers to others mentioned by Sumatigani, pride can be clearly detected. He was therefore called Kharatara by the people, but he gloried in the new appellation and willingly accepted it."

एशियाटिक सोसायटी के रिपोर्ट पृष्ठ १३९ पर लिखा है कि :-

In this Dharamasagar tries to prove that it owed its rise not to Jineshwara the pupil of Vardhmana in Samvat 1024 as is commonly believed, but to Jinadatta in Samvat 1204.

जैन धर्म नो प्राचीन इतिहास, भा. २, पृष्ठ १८

इति खरतरमतोत्पत्ति भाग चौथा
समाप्तम्

---

१. **गणधर सार्द्धशतक ग्रन्थ के रचयिता जिनदत्तसूरि थे और उनका स्वर्गवास वि. सं. १२११ में हुआ, तब उस पर बृहद्वृत्ति निर्माण-कर्ता सुमति गणि के गुरु जिनपतिसूरि का आचार्य पद का समय वि. सं. १२२३ का है, अतः उस मूल ग्रन्थ और उस पर बृहद्वृत्ति का समय निकटवर्ती कहा जा सकता है।**

खरतरगच्छोत्पत्ति

लेखक

इतिहासप्रेमी मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला
मु. फलौदी (मारवाड़)

खरतरगच्छोत्पत्ति ।

श्री जैन श्वेताम्बर समुदाय में मुख्यतया चौरासी गच्छ माने जाते हैं, जिनमें खरतर गच्छ भी एक है। इस गच्छ में बड़े बड़े प्रभावशाली आचार्य हुए हैं और इनकी परम्परा भगवान् महावीर से जाकर मिलती है, पर खरतर गच्छ की उत्पत्ति किस निमित्त, कब और किस आचार्य से हुई यह एक विवादास्पद प्रश्न है, जिसका ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा निर्णय करना इस प्रबन्ध का मुख्य लक्ष्य है। क्योंकि इस विषय में आज जनता में अनेको भ्रम फैल रहे हैं, जैसे :-

(१) खरतर गच्छ वाले कहते हैं कि वि. सं. १०८० में पाटण के राजा दुर्लभ की राजसभा में आचार्य जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों के आपस में शास्त्रार्थ हुआ, जिनेश्वरसूरि का पक्ष खरा होने से राजा दुर्लभ ने आचार्य को 'खरतरबिरुद' दिया, बस ! उसी दिन से जिनेश्वरसूरि की सन्तान खरतर कहलाई, जो आज पर्यन्त भी विद्यमान है।

(२) खरतरों के सिवाय जितने गच्छ हैं उन सबका एक ही मत है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति आचार्य जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण वि. सं. १२०४ में हुई है।

(३) नई रोशनी की शोध एवं खोज से कई लोगों का यह मत है कि खरतर गच्छ की उत्पत्ति न तो शास्त्रार्थ की विजय से हुई और न गच्छ के रुप में, किन्तु जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण ही, उस देश और काल की प्रचलित भाषा में लोग उन्हें ''खरतर-खरतर'' इस नाम से कहा करते थे और इस शब्द से जिनदत्तसूरि प्रसन्न नहीं पर सख्त नाराज भी थे, क्योंकि यह एक अपमान सूचक शब्द था, परन्तु समयान्तर में यह अपमान-सूचक शब्द भी गच्छ के रुपमें परिणत हो गया। जैसे 'ओसवालों में ढेढिया, बलाई, चामड़, चण्डालिया आदि जातिएँ हैं, ये भी मूल में तो राजपूत ही थीं और इनके गोत्र भी अन्य थे, पर कई एक कारणों से लोगों द्वारा उपरोक्त उपनाम पड़ गए। उस समय इन पूर्वोक्त जातियों के मूल पुरुष इन भद्दे नामों से प्रसन्न नहीं किन्तु अप्रसन्न ही थे, परन्तु कालान्तर में लोकमत के बाहुल्य एवं समय प्रभाव से ये शब्द इतने रुढ़ हो गए कि स्वयं वे लोग भी अपने को ढेढिये, बलाई आदि नामों से परिचित कराने लगे और अपने हाथों से अपने आप को ढेढिये, बलाई आदि लिखने लग गए। कारण मूल पुरुषों

को प्रारंभ में जिस अपमान से जितना दु:ख होता है वह कालान्तर में पिछले मनुष्यों को नहीं होता, क्योंकि उनके संस्कार ही बदल जाते हैं, यही हाल यदि खरतर शब्द का हुआ हो तो आश्चर्य नहीं इत्यादि।

उपरोक्त इन तीन प्रकार की मान्यताओं में कौन सी मान्यता सत्य और प्रामाणिक हैं? यह हम निम्नांकित प्रमाणों द्वारा निर्णय कर पाठकों की सेवा में रख देना चाहते हैं। निर्णय के पूर्व इस स्थान पर यह कहना भी अप्रासङ्गिक नहीं होगा कि जिनकी परम्परा भगवान् महावीर से जाकर मिलती है उन्हें यदि शासन का एक अङ्ग कहे तो कोई अनुचित नहीं। यदि कोई प्रश्न करे कि जिसको शासन का एक अंग माना जाय फिर किसी को कोई विशेषण सौ दो सौ वर्ष पहले मिला हो या सौ दो सौ वर्ष बाद मिला हो, इसका विवाद करने में क्या हानि लाभ है कि जिसकी समालोचना की जाय?

प्रकृति का नियम है कि जब तक कोई काल्पनिक वस्तु अपने कल्पित रुप में ही रहे तब तक तो उस पर समालोचना की आवश्यकता नहीं रहती है, परंतु जब उस कल्पित वस्तु पर भी सत्यता का सिक्का लगाने का दावा किया जाता हो, अर्थात् सत्यता का खून कर इतिहास पर परदा डाला जाता हो, तब समालोचना की परम आवश्यकता होती है यह न्याय संयुक्त है।

(१) जिन लोगों का मत है कि वि. सं. १०८० में पाटण के राजा दुर्लभ की राजसभा में चैत्यवासियों के साथ जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ हुआ और जिनेश्वरसूरि को विजय के उपलक्ष्य में राजा दुर्लभ ने ''खरतर-बिरुद'' दिया इत्यादि, किंतु यह बात ऐतिहासिक प्रमाणों से बिलकुल असत्य एवं निराधार ठहरती है, कारण किन्ही भी प्राचीन ग्रंथ व शिलालेखों में इसका जिक्र तक नहीं है और न इसकी सबूती के लिए खुद खरतरों की ओर से आज पर्यन्त कोई प्रमाण दिया गया है, जिस पर कि सभ्य समाज विश्वास कर सके। केवल कागजी घुड़-दौड़ से सफलता मिलने का यह समय नहीं है। प्रथम तो यह बात सर्व विदित एवं इतिहास-प्रसिद्ध है कि वि. सं. १०८० में दुर्लभ राजा का पाटण में राज्य ही नहीं था, इतना ही नहीं पर विश्व के रङ्ग-मञ्च पर उस समय राजा दुर्लभ का अस्तित्व भी असंगत था, इस दशा में वि. सं. १०८० में दुर्लभ राजा ने ''खरतर'' बिरुद कैसे दिया? वि. सं. १०८० में पाटण में भीमराज का राज्य था, इस विषय में इतिहासज्ञों के अग्रणी पंडित गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझा ने सिरोही राज्य के इतिहास में पाटण के राजाओं की निम्नलिखित वंशावली दी है। पाटण की स्थापना वि. सं. ८०२ में हुई थी। वंशावली यह है :-

चावड़ा वंश के राजा

१. वनराज चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ८०२ से ८६२ तक कुल ६० वर्ष
२. योगराज चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ८६२ से ८९७ तक कुल ३५ वर्ष
३. खेमराज चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ८९७ से ९२२ तक कुल २५ वर्ष
४. भूवड़ चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ९२२ से ९५१ तक कुल २९ वर्ष
५. वैरीसिंह चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ९५१ से ९७६ तक कुल २५ वर्ष
६. रत्नादित्य चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ९७६ से ९९१ तक कुल १५ वर्ष
७. सामन्तसिंह चावड़ा, राज्य काल	– वि. सं. ९९१ से ९९८ तक कुल ०७ वर्ष

इस तरह चावड़ा वंश के राजाओं ने १९६ वर्ष राज्य किया, अनन्तर सोलंकी वंश का राज हुआ वह क्रम इस प्रकार है :–

सोलंकी वंश के राजा

८. मूलराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. ९९८ से १०५३ तक कुल ५५ वर्ष
९. चामुण्डराय सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १०५३ से १०६६ तक कुल १३ वर्ष
१०. वल्लभराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १०६६ से १०६६॥ तक केवल ६ मास
११. दुर्लभराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १०६६॥ से ११७८ तक कुल ११॥ वर्ष
१२. भीमराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. ११७८ से ११२० तक कुल ४२ वर्ष
१३. करणराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. ११२० से ११५० तक कुल ३० वर्ष
१४. जयसिंह सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. ११५० से ११९९ तक कुल ४९ वर्ष
१५. कुमारपाल सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. ११९९ से १२३० तक कुल ३१ वर्ष
१६. अजयपाल सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १२३० से १२६६ तक कुल ३६ वर्ष
१७. मूलराज सोलंकी, राज्य काल	– वि. सं. १२६६ से १२७४ तक कुल ८ वर्ष

सोलंकी वंश के राजाओं ने २७६ वर्ष तक राज्य किया, बाद में पाटण का राज बाघलावंश के हस्तगत हुआ। उन्होंने विक्रम सं. १३५८ तक कुल ८४ वर्ष राज्य किया, फिर पाटण की प्रभुता आर्यों छिनकर मुसलमानों के अधिकार में चली गई।

इस भूपावली से यह सिद्ध होता है कि वि. सं. १०८० में पाटण में दुर्लभ राजा का राज्य नहीं पर भीमराज का राज्य था। इस हालत में यह बात बिलकुल निराधार ठहरती है कि वि. सं. १०८० में दुर्लभ की राज्यसभा में शास्त्रार्थ हुआ और वहाँ दुर्लभ राज ने जिनेश्वरसूरि को ''खरतरबिरुद'' दिया। इसी प्रकार जैनाचार्य मेरुतुंगसूरि ने भी अपनी ''विचार श्रेणी में दुर्लभ राज का राज्य काल

वि. सं. १०७८ में ही समाप्त हो चुका था'' ऐसा लिखा है। और भी अनेक प्रमाण[1] इसकी पुष्टि में मिलते हैं। इतना ही नहीं पर खुद जिनेश्वरसूरि वि.सं. १०८० में जावलीपुर में स्थित रह कर हरिभद्रसूरि कृत अष्टको पर वृत्ति लिख रहे थे, इससे भी सुस्पष्ट होता है कि वि. सं. १०८० में जिनेश्वर का दुर्लभ राजा की राजसभा में शास्त्रार्थ होना केवल मनःकल्पित कल्पना ही है।

पूर्वोक्त ऐतिहासिक प्रमाणों से यह साबित हो गया कि वि. सं. १०८० में न तो पाटण में दुर्लभराज का राज्य था और न उस समय कोई शास्त्रार्थ ही हुआ, न जिनेश्वरसूरि को दुर्लभ राजा ने 'खरतर बिरुद' ही दिया। यदि खरतरगच्छ वाले इस बात को प्रमाणित करने को कोई भी विश्वसनीय प्रमाण पेश करें तो हमें इस बात को मानने में कोई आपत्ति नहीं है। अन्यथा खरतर गच्छीय विद्वानों को अपनी भूल स्वीकार करनी चाहिए या सुधार लेनी चाहिए कि हमने वि. सं. १०८० में दुर्लभ राजा के यहाँ शास्त्रार्थ होने का लिखा वह गलत है। शास्त्रार्थ वि. सं. १०७८ के पहले किसी समय हुआ हो, तो यह बात संभव हो सकती है। कारण उस समय राजसभाओं में व्याख्यान देना व धार्मिक विषयों के निर्णयार्थ शास्त्रार्थ करना प्रचलित था। जिनेश्वरसूरि वर्धमानसूरि के पट्टधर थे और वर्धमानसूरि चैत्यवासियों में अग्रेसर थे, अर्थात् ८४ चैत्यों के मालिक थे। यदि जिनेश्वरसूरि ने किसी समय चैत्यवास का त्याग एवं क्रियोद्धार कर चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ किया हो और उनको इस कार्य में विजय भी मिली हो तो यह बात सर्वथा असम्भव प्रतीत नहीं होती। पर यहाँ तो प्रश्न है ''खरतर बिरुद'' का, न कि शास्त्रार्थ का। राजा दुर्लभ या अन्य किसी नृपति ने श्री जिनेश्वरसूरि को ''खरतर बिरुद'' दिया या नहीं ? कारण शास्त्रार्थ की विजय के उपलक्ष्य में बिरुद मिलना यह कोई साधारण बात नहीं पर बड़े महत्व का विषय है। ऐसे महत्व के विषय को जिनेश्वरसूरि तथा आपकी सन्तान भूल जायँ और बाद में १२५ वर्षों से फिर वह बिरुद प्रकाश में आवे ? इसे मानने में जरा जीव हिचकिचाता है। क्योंकि हम प्रायः देखते हैं कि अन्याचार्यों को राजाओं की ओर से जो बिरुद मिले हैं, वे उनके नाम के साथ सदैव के लिए उसी समय से जुड़ जाते हैं। जैसे :-

१. बप्पभट्टसूरि को - वादी-कुञ्जर-केसरी बप्पभट्टसूरि।
२. शान्तिसूरि को - वादीवेताल शान्तिसूरि।
३. देवसूरि को - वादी-देवसूरि।

---

१. देखो मेरा लिखा ''निराकरण निरीक्षण'' नामक प्रबन्ध।

४. धर्मघोषसूरि को – वादी चूड़ामणि धर्मघोषसूरि।
५. अमरचन्द्रसूरि को – सिंहशिशुक अमरचन्द्रसूरि।
६. आनन्दसूरि को – व्याघ्रशिशुक आनन्दसूरि।
७. जगच्चन्द्रसूरि को – तपा जगच्चन्द्रसूरि।
८. हेमचन्द्रसूरि को – कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि।
९. कक्कसूरि को – राजगुरु कक्कसूरि।
१०. विजयसिंहसूरि को – खड्गाचार्य विजयसिंहसूरि।
११. नेमिचन्द्रसूरि को – सिद्धान्त चूड़ामणि नेमिचन्द्रसूरि।

अनेक आचार्यों को बिरुद मिला और उनके नाम के साथ प्रसिद्ध भी हुआ। पर जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में एक भूपति बिरुद दे और वह इस भाँति गुप्त रह जाय, यह विचारणीय विषय है। आचार्य जिनेश्वरसूरि ने पंच लिंगी प्रकरण, वीर चरित्र, निर्वाण लीलावती, कथाकोष, प्रमाण लक्षण, षट्स्थान प्रकरण और हरिभद्रसूरि के अष्टकों पर वृत्ति आदि अनेक ग्रंथों की रचना की। इन ग्रन्थों का रचना समय वि. सं. १०८० से १०९५ तक का होने पर भी किसी ग्रन्थ की रचना, प्रस्तावना या प्रशस्ति में कहीं पर भी जिनेश्वरसूरि ने खरतर शब्द का प्रयोग तक नहीं किया।

बुद्धिसागरसूरि जो जिनेश्वरसूरि के गुरुभाई थे, उन्होंने ''बुद्धिसागर नामक व्याकरण'' आदि कई एक ग्रंथों की रचना की, पर किसी स्थान पर यह नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि को ''खरतर'' बिरुद मिला था।

जिनेश्वरसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि हुए, जिन्होंने सुरसुन्दरी कथा आदि कई ग्रन्थ लिखे, पर उन्होंने भी कहीं पर यह नहीं लिखा कि हम ''खरतर गच्छ'' के हैं, या जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में 'खरतर बिरुद' मिला था।

जिनेश्वरसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि हुए, आपने ''संवेग रंगशालादि'' कई ग्रंथों की रचना की, परन्तु कहीं पर खरतर होना नहीं लिखा।

आचार्य अभयदेवसूरि ''जो जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर थे'' ने नौ अंग की टीका तथा हरिभद्रसूरि रचित चाशक पर टीका, जिनेश्वरसूरि कृत षट्स्थान प्रकरण पर भाष्य और आराधना कुलक आदि कई ग्रन्थों की रचना की, पर इन्होंने किसी स्थान पर यह नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि को ''खरतर बिरुद'' मिला या मैं खरतर गच्छ में हूँ। उन्होंने तो स्पष्ट लिखा है कि मैं चन्द्रकुल में हूँ। इस विषय के अनेक प्रमाण भी मिल सकते हैं। मैं यहाँ पर खास अभयदेवसूरि के ही प्रमाण उद्धृत कर बतला देना चाहता हूँ कि जिनेश्वरसूरि से अभयदेवसूरि तक कहीं पर ''खरतर''

शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। देखिए अभयदेवसूरि रचित टीकाएँ :-

तीसरा अंग श्री स्थानायांग सूत्र की टीका।

''तच्चंद्रकुलीनप्रवचनप्रणीताप्रतिबद्धविहारहारिचरितश्रीवर्धमा-नाऽभिधानमुनिपतिपादोपसेविनः, प्रमाणादिव्युत्पादनप्रवणप्रकरणप्रबन्ध-प्रणायिनः प्रबुद्धप्रतिबंधप्रवक्तृप्रवीणाऽप्रतिहतप्रवचनार्थप्रधानवाक्प्रसारस्य, सुविहितमुनिजनमुख्यस्य श्रीजिनेश्वराचार्यस्य तदनुजस्य च व्याकरणा-दिशास्त्रकर्त्तुः श्रीबुद्धिसागराचार्यस्य चरणकमलचंचरीककल्पेन श्रीमदभय-देवसूरिनाम्ना मया महावीरजिनराजसंतानवर्त्तिना''

इस टीका में जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागरसूरि और अभयदेवसूरि को चंद्रकुलीन लिखा है। आगे चतुर्थांग समवायांग सूत्र की टीका को भी देखने का कष्ट करें।

'' निःसम्बन्धविहारहारिचरितान्, श्रीवर्धमानाऽभिधान ।
सूरीन् ध्यातवतोऽति तीव्रतपसो, ग्रन्थप्रणीति प्रभोः ॥ ५ ॥
श्रीमत्सूरिजिनेश्वरस्य जयिनो; दर्पीयसां वाग्मिनां ।
तद्बन्धोरपि बुद्धिसागर, इति ख्यातस्य सूरेर्भुवि ॥ ६ ॥
शिष्येणाऽभयदेवाख्य; सूरिणा विवृतिः कृता ।
श्रीमतः समवायाख्य; तुर्यांगस्य समासतः ॥ ७ ॥
एकादशसु शतेष्वथ विंशत्यधिकेषु विक्रमसमानाम् ।
अणहिलपाटकनगरे रचिता समवायटीकेयम् ॥ ८ ॥''

इस समवायांग सूत्र की टीका में जिनेश्वरसूरि के नाम के साथ कहीं भी खरतर शब्द नहीं लिखा है। आगे भगवतीसूत्र की टीका में भी देखिये-

यदुक्तमादाविह साधुबोधैः श्रीपञ्चमाङ्गोन्नतकुञ्जरोऽयम् ।
सुखाधिगम्योऽस्त्विति पूर्वगुर्वी, प्रारभ्यते वृत्तिवरत्रिकेयम् ॥ १ ॥
समर्थितं तत्पटुबुद्धिसाधु - साहायकात् केवलमत्र सन्तः ।
सद्बुद्धिदात्र्याऽपगुणाँल्लुनन्तु, सुखग्रहा येन भवत्यथैषा ॥ २ ॥
चान्द्रेकुले सद्वनकक्षकल्पे, महाद्रुमो धर्म्मफलप्रदानात् ।
छायाऽन्वितः शस्तविशालशाखः, श्री वर्धमानो मुनिनायकोऽभूत् ।। ३ ॥
तत्पुष्पकल्पौ विलसद्विहार-सद्ग्रंथसम्पूर्णदिशौ समन्तात् ।
बभूवतुः शिष्यवरावनीच-वृत्तीः श्रुतज्ञानपरागवन्तौ ॥ ४ ॥
एकस्तयोः सूरिवरो जिनेश्वरः ख्यातस्तथाऽन्यो भुवि बुद्धिसागरः ।
तयोर्विनेयेन विबुद्धिनाऽप्यलं, वृत्तिः कृतैषाऽभयदेवसूरिणा ॥ ५ ॥

तयोरेव विनेयानां, तत्पदञ्चाऽनुकुर्वताम् ।
श्रीमतां जिनचंद्राख्य, सत्प्रभूणां नियोगतः ॥ ६ ॥
श्रीमज्जिनेश्वराचार्य-शिष्याणां गुणशालिनाम् ।
जिनभद्रमुनीन्द्राणामस्माकं चांघ्रिहिसेविनः ॥ ७ ॥
यशश्चन्द्रगणेर्गाढ़साहाय्यात् सिद्धिमागता ।
परित्यक्ताऽन्यकृत्यस्य, युक्तायुक्तविवेकिनः॥ ८ ॥
शास्त्रार्थनिर्णयसुसौरभलम्पटस्य,
विद्वन्मधुव्रतगणस्य सदैव सेव्यः ।
श्रीनिर्वृताख्यकुलसन्नदपद्मकल्पः,
श्रीद्रोणसूरिरनवद्ययशःपरागः ॥ ९ ॥
शोधितवान् वृत्तिमिमां, युक्तो विदुषां महासमूहेन ।
शास्त्रार्थ-निष्कनिकषण, कषपट्टककल्पबुद्धिनाम् ॥ १० ॥

इस टीका में अभयदेवसूरि अपने को चन्द्रकुल के बताते हैं और अपनी रची हुई टीका निर्वृत्तिकुल के द्रोणाचार्य (चैत्यवासी) से संशोधित कराई ऐसा लिखते हैं। जिसके प्रत्युपकार में जिनवल्लभसूरि ने 'संघपट्टक' ग्रंथ में उनको खूब फटकारा है । यहां तक कि उनकी मानी हुई जिनप्रतिमा को मांस की बोटी की उपमा दी है और स्वयं आपने साधारण श्रावक से नया मन्दिर बनवाके उसके द्वार पर पत्थर में संघपट्टक के ४० श्लोक खुदवाये थे, क्या यह सावद्य कार्य नहीं था ?

अब आगे चल कर ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र की टीका देखिये :-

तस्याचार्यजिनेश्वरस्य मदवद्वादिप्रतिस्पर्धिनः ।
तद्वन्धोरपि ''बुद्धिसागर'' इति ख्यातस्य सूरेर्भुवि ॥
छन्दोबन्धनिबन्धबन्धुरवचः शब्दादिसल्लक्ष्मणः ।
श्रीसंविग्नविहारिणः श्रुतनिधेश्चारित्रचूड़ामणेः ॥ ८ ॥
शिष्येणाऽभयदेवाख्यसूरिणा विवृतिः कृता ।
ज्ञाताधर्मकथाङ्गस्य, श्रुतभक्त्या समासतः ॥ ९ ॥

आगे फिर श्रीऔपपातिक वृत्ति का विलोकन करें ।

चन्द्रकुलविपुलभूतल-युगप्रवरवर्धमानकल्पतरोः ।
कुसुमोपमस्य सूरेर्गुणसौरभभरितभवनस्य ॥ १ ॥
निस्सम्बन्धविहारस्य, सर्वदा श्रीजिनेश्वराह्वस्य ।
शिष्येणाऽभयदेवाख्यसूरिणेयं कृता वृत्तिः ॥ २ ॥

अभयदेवसूरि ने वर्धमानसूरि एवं जिनेश्वरसूरि को चन्द्रकुल के प्रदीप बताया है। यदि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में ''खरतर बिरुद'' मिला होता तो इस महत्त्वपूर्ण बिरुद का उल्लेख भी कहीं न कहीं अवश्य करते; परन्तु ऐसा न करने से ज्ञात होता है कि उस समय ''खरतर'' भविष्य के गर्भ में ही अन्तर्निहित था।

आगे अब जिनवल्लभसूरि के ग्रन्थों की ओर जरा दृष्टि-पात कर देखेंगे कि ''खरतर'' शब्द कहीं उपलब्ध होता है या नहीं ? जिनवल्लभसूरि कूर्च्चपुरीया गच्छ के चैत्यवासी जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे, उन्होंने अभयदेवसूरि के पास क्रियोद्धार कर पुनः दीक्षा ग्रहण की और स्वयं भी जिनेश्वरसूरि की भाँति चैत्यवासियों से खिलाफ हो विधिचैत्य अर्थात् विधिमार्ग की स्थापना की थी। यदि जिनेश्वरसूरि को चैत्यवासियों से शास्त्रार्थ की विजय में ''खरतरबिरुद'' मिला होता तो वल्लभसूरि चैत्यवासियों के सामने उस बिरुद को कभी छिपाये नहीं रखते, किन्तु बड़े गौरव के साथ कहते कि पहले भी जिनेश्वरसूरि ने चैत्यवासियों को पराजित कर ''खरतरबिरुद'' प्राप्त किया था। परन्तु जिनवल्लभसूरि की विद्यमानता में ''खरतर'' शब्द का नाम तक नहीं था। यदि जिनवल्लभसूरि को यह मालूम होता कि जिनेश्वरसूरि को चैत्यवासियों से शास्त्रार्थ की विजय में ''खरतर बिरुद'' मिला है, तो उन्होंने जो ''संघपट्टक'', सिद्धान्तविचारसार, आगमवस्तुविचारसार, पिण्ड विशुद्धिप्रकरण, पौषधविधिप्रकरण, प्रतिक्रमणसमाचारी, धर्मशिक्षा, प्रश्नोत्तरशतक, श्रृंगारशतक आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की है, उनमें कम से कम वह उल्लेख तो जरुर करते कि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला था पर किसी जगह उन्होंने यह नहीं लिखा है कि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला, या हम खरतर गच्छ के हैं। इस पर प्रत्येक विचारशील विद्वान् को विचारना चाहिये कि यदि जिनेश्वरसूरि को वि. सं. १०८० में दुर्लभ राजा ने शास्त्रार्थ की विजय के उपलक्ष्य में ''खरतर बिरुद'' दिया होता तो, सम्भव है-कदाचित् स्वयं जिनेश्वरसूरि निज आत्मश्लाघा के भय से अपने नाम के साथ खरतर शब्द जोड़ने में सकुचाते, पर आपके पश्चात् जो बुद्धिसागरसूरि, धनेश्वरसूरि, जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि और जिनवल्लभसूरि हुए, वे तो इस गौरवास्पद शब्द को कहीं न कहीं जरुर लिखते, क्या सब के सब इस सम्मानप्रद शब्द को भूल गये थे ? या कहीं रख दिया था, कि पिछले किसी आचार्य को भी इस बिरुद की स्मृति तक नहीं हुई ?

वस्तुतः जिनेश्वरसूरि को ''खरतर बिरुद'' मिला ही नहीं था, अभयदेवसूरि तक तो वे सब चन्द्रकुली ही कहलाते थे, जो हमने अभयदेवसूरि रचित टीकाओं

के प्रमाण दे सिद्ध किया हैं। इतना ही नहीं पर जिनवल्लभसूरि को भी खरतर न कह कर, पूर्व आचार्यों ने चन्द्रकुली कहा है। तद्यथा :-

''सूरिः श्रीजिनवल्लभोऽजनि बुधश्चान्द्रे कुले तेजसा।
सम्पूर्णोऽभयदेवसूरिचरणाऽम्भोजालिलीलायितः ॥''

इस प्रमाण से स्पष्ट सिद्ध होता है कि जिनवल्लभसूरि तक तो वह सब चन्द्रकुल के साधु कहलाते थे।

प्रश्न-खरतर गच्छ वाले जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में ''खरतर बिरुद'' मिलने का कहते हैं, वे भी तो कोई आधार पर कहते होंगे?

खरतर गच्छ वालों के पास 'खरतर बिरुद' मिलने का कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, कारण 'खरतर बिरुद' किसी आचार्य को किसी एक व्यक्ति से नहीं मिला है, न यह कोई मानसूचक शब्द है, कि जो किसी महत्व के कार्य से प्राप्त हुआ है। संघ पट्टकादि ग्रन्थों से पाया जाता है कि जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों से शास्त्रार्थ जरुर हुआ था। फिर अर्वाचीन लोगों ने उनके साथ 'खरतर बिरुद' को जोड़ दिया है पर प्राचीन ग्रन्थ व शिलालेखों में कहीं पर खरतर शब्द खोजने से भी नहीं मिलता है। यदि वास्तव में यह सत्य होता तो प्रायः १२५ वर्षों में चार पाँच पाट हुए, उनमें कोई न कोई आचार्य तो अपने ग्रन्थों में खरतर शब्द का उपयोग जरुर करता। पर यह कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। हाँ आंशिक सम्बन्ध जिनदत्तसूरि के साथ खरतर शब्द का जरुर है।

दर असल में यह बात ऐसी बनी प्रतीत होती है कि जिनवल्लभसूरि चैत्यवासी आचार्य के शिष्य थे, बाद में अभयदेवसूरि के पास उन्होंने पुनः क्रियोद्धार किया अर्थात् फिर से दीक्षित हुए और पठन पाठन के पश्चात् उन्होंने चैत्यवास को शास्त्र-विरुद्ध समझ उसे मूलोच्छिन्न करने को जोर शोर से उपदेश देना प्रारम्भ किया, पर प्रकृति (कुदरत) आपके अनुकूल नहीं थी। आपने चित्रकूट पर भगवान् महावीर के पंच कल्याणक के बजाय छः कल्याणक की प्ररुपणा की। चैत्यवासियों को यह ठीक अवसर मिला। उन लोगों ने जिनवल्लभसूरि को उत्सूत्रवादी घोषित कर दिया। कारण जैनशास्त्रों में सर्वत्र महावीर के पाँच कल्याणक ही माने गए हैं। आचार्य हरिभद्रसूरि ने अपने ''पंचाशक'' नाम के ग्रन्थ में महावीर के पाँच कल्याणक और उनकी अलग-अलग तिथियों का उल्लेख किया है और उन पर आचार्य अभयदेवसूरि ने टीका करके भी पाँच कल्याणक ही सिद्ध किए हैं। जब जिनवल्लभसूरि ने छः कल्याणक बताये तो लोगों को यह प्रत्यक्ष ही उत्सूत्र जँचा। चैत्यवासी तो पहले ही से जिनवल्लभसूरि के विरोध में थे, फिर यह मौका

उनके हाथ लग गया। उन्होंने जिनवल्लभसूरि का यत्र तत्र तिरस्कार किया। इधर जिनवल्लभसूरि ने अपना नया मत (विधिमार्ग) स्थापित किया। उन्होंने परम्परा से चली आती हुई कई क्रियाओं में फेरफार किया। जैसे पाँच के बदले छः कल्याणक, अधिक मास उदयतिथि आदि कई नई प्ररुपणा की, परन्तु उसमें आप सफल नहीं हो सके। आपका आयुष्य भी बहुत कम था। आचार्य होने के अनन्तर केवल छः मास ही जीवित रहे। उनके बाद उनके समुदाय में एक महान् मतभेद पैदा हुआ और वह था आचार्य पदवी के निमित्त। एक पार्टी का यह कहना था कि आचार्य जिनदत्तसूरि को बनाया जाय और दूसरी पार्टी का आग्रह था कि जिनशेखरसूरि को आचार्य बनाया जाय। इस मतभेद ने इतना उग्र रुप धारण किया कि आपस में फूट पड़ने से दोनों आचार्य बन गये और क्लेश कदाग्रह बढ़ते ही रहे। आचार्य जिनदत्तसूरि की प्रकृति खरतर होने से लोग उनको खरतर खरतर कहने लगे। इस शब्द से नाराजी पैदा होना स्वाभाविक है। जिनवल्लभसूरि की छः कल्याणकादि की नई प्ररुपणा जिनदत्तसूरि भी करते थे। इस विषय में कई लोग उनसे प्रश्न करते थे, तो उसका उत्तर भी बड़ी तीक्ष्णता (कठोरता) से दिया जाता था। इस कारण लोग उनको खरतर कहा करते थे।

यह बात केवल दन्तकथा ही नहीं है, पर आचार्य जिनदत्तसूरि के समकालीन या उनके आसपास के समय के प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होती हैं, जैसे आचार्य जिनपत्तिसूरि (वि. सं. १२३३ में विद्यमान थे जब जिनदत्तसूरि का स्वर्गवास वि. सं. १२११ में हुआ। इस वास्ते यह समय बहुत निकट का कहा जा सकता है) के शिष्य सुमतिगणि ने गणधर सार्द्धशतक की बृहत् वृत्ति में लिखा है कि आचार्य जिनदत्तसूरि प्रकृति के बड़े ही तेज (कठोर) थे। प्रश्नों के उत्तर तेजी से देने के कारण लोग आपको खरतर खरतर कहा करते थे, इतना ही नहीं पर सुमतिगणि ने तो इस बृहद् वृत्ति में जिनदत्तसूरि का सम्पूर्ण जीवन चरित्र भी लिख दिया है, कि कई एक लोगों ने जिनदत्तसूरि के साथ कई तरह की अघटित घटनाओं को जोड़ जनता को कैसा धोखा दिया है, जिसकी गन्ध भी आपके जीवन में नहीं है। खैर, यदि खरतर शब्द पुराना होता तो जिनशेखरसूरि भी जिनेश्वरसूरि के साथ खरतर शब्द लिखते, पर जिनशेखरसूरि के बाद भी जिनेश्वरसूरि के साथ किसी ने खरतर बिरुद नहीं माना है। देखिये श्री वर्धमानसूरि कृत ''आचार दिनकर'' की टीका जो वि. सं. १४५८ में जयानन्दसूरि ने बनाई, जिसमें लिखा है :-

श्रीमज्जिनेश्वरः सूरिर्जिनेश्वरमतं ततः ।
शरद्राकाशशिस्पष्ट-समुद्रसदृशं व्यधात् ॥ १२ ॥

नवांगवृत्तिकृत् पट्टेऽभयदेवप्रभुर्गुरो ।
तस्य स्तम्भनकाधीश-माविश्चक्रे समं गुणैः ॥ १३ ॥
श्राद्धप्रबोधप्रवणस्तत्पदे जिन वल्लभः ।
सूरिर्वल्लभतां भेजे, त्रिदशानां नृणामपि ॥ १४ ॥
ततः श्री रुद्रपल्लीय-गच्छसंज्ञा, लसद्यशाः ।
नृपशेखरतां भेजे, सूरीन्द्रो जिनशेखरः ॥ १५ ॥

इस प्रमाण से भी स्पष्ट होता है कि जिनेश्वरसूरि से जिनवल्लभसूरि तक तो खरतर का नाम निशान भी नहीं था, बाद में जिनदत्तसूरि को लोग खरतर खरतर कहने लगे। इसलिए ही तो जिनदत्तसूरि के खिलाफ जिनशेखरसूरि की परम्परा में खरतर शब्द को स्थान नहीं मिला है। अर्थात् जिनवल्लभसूरि के पट्टधर जैसे जिनदत्तसूरि हुए वैसे जिनशेखरसूरि भी जिनवल्लभसूरि के पट्टधर आचार्य हुए हैं और उनका गच्छ खरतर नहीं पर रुद्रपाली गच्छ हुआ है। यदि जिनेश्वरसूरि से ही खरतर गच्छ प्रचलित हुआ होता तो जिनशेखरसूरि अपने को रुद्रपाली गच्छ नहीं लिखकर खरतर गच्छ की एक शाखा लिखते। इस प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है कि वि. सं. १४६८ तक तो किसी की यह मान्यता नहीं थी कि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद कभी मिला था। खुद जिनदत्तसूरि ने गणधरसार्द्धशतक, सन्देहदोहावली, गणधरसप्तति, अवस्थाकुलक, चैत्यवन्दनाकुलक, चर्चरी, उपदेश रसायन, कालस्वरुपकुलक आदि अनेक ग्रंथों की रचना की पर आपने कहीं पर यह नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला और हम उनकी सन्तति श्रेणी में खरतर हैं।

'खरतर' शब्द की उत्पत्ति तो जिनदत्तसूरि से हो गई थी, पर यह अपमान-सूचक होने से किसी ने इस शब्द को अपनाया नहीं था। जिनदत्तसूरि के पट्टधर जिनचन्द्रसूरि हुए, उन्होंने भी किसी स्थान पर ऐसा नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि या जिनदत्तसूरि से हम खरतर हुए हैं। यही नहीं पर जिनपतिसूरि ने तो (वि. सं. १२३३ में सूरिपद) जिनवल्लभसूरि कृत संघपट्टक पर जो टीका रची है, उसमें उन्होंने जिनेश्वरसूरि से जिनवल्लभसूरि तक के आचार्यों का अत्युक्ति पूर्ण गुण वर्णन करते हुए भी चैत्यवासियों की विजय में उपलब्ध खरतर बिरुद को चैत्यवासियों के खण्डन विषयक ग्रंथ में भी ग्रंथित नहीं किया तो यह बात हम दावे के साथ कह सकते हैं कि जिनेश्वरसूरि से जिनवल्लभसूरि तक खरतर शब्द का नाम तक भी नहीं था। उपर्युक्त उद्धरण संघपट्टक ग्रन्थ के पृष्ठ ४ पर इस प्रकार है :-

चौलुक्यवंशमुक्तामाणिक्यचारुतत्त्वविचारचातुरीधुरीणविलस-दंगरंगनित्यन्नीत्यङ्गनारंजितजगज्जनसमाजश्रीदुर्लभराजमहाराजराजसभायां, अनल्पजल्पजलधिसमुच्छलदतुच्छविकल्पकल्लोलमालाकवलितवहलप्रतिवा-दिकोविदग्रामण्यासंविग्नसाधुनिवहाऽग्रण्या, सुविहितवसतिपथप्रथनरविणा, वादिकेसरिणा, श्रीजिनेश्वरसूरिणा, श्रुतयुक्तिभिर्बहुधा चैत्यवासव्यवस्थापनं प्रति प्रतिक्षिप्तेष्वपि लांपट्याभिनेवेशाभ्यां तन्निर्बन्धमजहत्सु यथाछन्देषु तत-स्तदुत्सूत्रदेशनाविरलगरललहरीचरीकृष्यमाणहृदयभूमिनिहितचेतनाबीजमु-दग्रदुर्निग्रहकुग्रहाऽवग्रहशोशुष्यमाणविवेकांकुरं निरर्गलमुखकुहरनिःसरद्दु-र्वाणीकृपाणीकृतधार्म्मिकमर्म्माणं श्राद्धसंघं निरीक्ष्य तदुपचिकीर्षया हृद्या नवद्यऽसमग्रविद्यानितंबिनीचुम्बितवदनतामरससान्द्रसंवेगशास्त्रार्थरसायनपा-नवांतकामरसः, सुविहितमुनिचक्रवालशिखामणि सिद्धान्तविपर्यास्तप्ररूपण-महान्धकारनिकारतरणिः सुगृहीतनामधेयः प्रणतप्राणिसंदोहतितीर्णशुभाभाग-धेयः चैत्यवासदोषभासनसिद्धान्ताकर्णनापासितकृतचतुर्गतिसंसारायासजिन-भवनवासः सर्वज्ञशासनोत्तमांगस्थानादिनवाङ्गवृत्तिकृत् श्रीमदभयदेवसूरिपा-दसरोजमूले गृहीतचरित्रोऽयं संपत्तिः करुणासुधातरंगिणीतरंगरंग-त्स्वान्तःसु-विधिमार्गाविभासन प्रादुःषद्विशदकीर्तिकौमुदीनिषूदितदिक्सीमन्ति नीवदन-ध्वांतः, स्वस्योपसर्गमभ्युपगम्याऽपिविदुषा दुरध्वविध्वंसनमेवाधेयमिति सत्पु-रुष पदवीमदवीयसीं विदधानः समुज्जितभूरिर्भगवान् श्रीजिनवल्लभसूरिः ।

इस टीका प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि विक्रम की तेरहवीं शताब्दी तक अर्थात् जिनपतिसूरि के समय तक तो किसीने भी खरतर शब्द को नहीं अपनाया था। यदि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में ही खरतर बिरुद मिला होता तो जिनेश्वरसूरि के लम्बे चौड़े विशेषणों के साथ यह खरतर बिरुद कभी छिपा हुआ नहीं रहता।

उपरोक्त खरतराचार्यों के प्राचीन ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनेश्वरसूरि से नहीं पर जिनदत्तसूरि से हुई है और खरतर गच्छ के सिवाय तपागच्छ, आंचलगच्छ, उपकेशगच्छ आदि अन्य गच्छवालों की भी यही मान्यता है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि से ही हुई थी। अब आगे चल कर हम सर्वमान्य शिलालेखों का अवलोकन करेंगे कि किस समय से खरतर शब्द का प्रयोग किस आचार्य से हुआ है। इस समय हमारे सामने निम्नलिखित शिलालेख मौजूद हैं :-

श्रीमान् बाबू पूर्णचंद्रजी नाहर कलकत्ता वालों के संग्रह किये हुए ''प्राचीन शिलालेख संग्रह'' खण्ड १-२-३ जिनमें २५९२ शिलालेख हैं, जिसमें खरतर गच्छाचार्यों के वि. सं. १३७९ से १९८० तक के कुल ६६५ शिलालेख हैं।

श्रीमान् जिनविजयजी सम्पादित ''प्राचीनलेखसंग्रह'' भाग दूसरे में कुल ५५७ शिलालेखों का संग्रह है, जिनमें वि. सं. १४१२ से १९०३ तक के २५ शिलालेख खरतरगच्छ के आचार्यों के हैं।

श्रीमान् आचार्य विजयेन्द्रसूरि सम्पादित 'प्राचीनलेखसंग्रह' भाग पहले में कुल ५०० लेख हैं जिनमें वि. सं. १४४४ से १५४३ तक के शिलालेख हैं उनमें २९ लेख खरतर गच्छ सम्बन्धी है।

श्रीमान् आचार्य बुद्धिसागरसूरि संग्रहीत ''धातु प्रतिमालेख संग्रह'' भाग पहले में १५२३, भाग दूसरे में ११५० कुल २६७३ शिलालेख हैं। जिनमें वि. सं. १२५२ से १७९५ तक के ५० शिलालेख खरतराचार्यों के हैं।

एवं कुल ६३२२ शिलालेखों में ७७९ शिलालेख खरतराचार्यों के हैं। अब देखना यह है कि वि. सं. १२५२ से शिलालेख शुरु होते हैं। यदि जिनेश्वरसूरि को वि. सं. १०८० में शास्त्रार्थ के विजयोपलक्ष्य में खरतर-बिरुद मिला होता तो इन शिलालेखों में उन आचार्यों के नाम के साथ खरतर-शब्द का प्रचुरता से प्रयोग होना चाहिये था, हम यहाँ कतिपय शिलालेख उद्धृत करके पाठकों का ध्यान निर्णय की ओर खींचते हैं।

संवत् १२५२ ज्येष्ठ वदि १० श्रीमहावीरदेवप्रतिमा अश्वराज श्रेयोऽर्थं पुत्रभोजराजदेवेन कारियिता प्रतिष्ठा जिनचंद्रसूरिभिः ॥

आ. बुद्धि धातु प्र. ले. सं., लेखांक ९३०

ये आचार्य श्रीजिनदत्तसूरि के पट्टधर थे, इन तक तो खरतर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ था।

''संवत् १२८१ वैशाख सुदि ३ शनौ पितामह श्रे. साम्ब पितृ श्रे. जसवीर मातृलाष एतेषां श्रेयोऽर्थं सुतगांधीगोसलेन बिंबं कारितं प्रतिष्ठितञ्च श्रीचन्द्रसूरिशिष्यः श्रीजिनेश्वरसूरिभिः ॥''

आ. बु. धातु ले. सं., लेखांक ६२७

ये आचार्य जिनपतिसूरि के पट्टधर थे, इनके समय तक भी खरतर शब्द का प्रयोग अपमान बोधक होने से नहीं हुआ था।

''सं. १३५१ माघ वदि १ श्रीप्रल्हादनपुरे श्रीयुगादिदेवविधिचैत्य

श्रीजिनप्रबोधसूरिशिष्यश्रीजिनचंद्रसूरिभिः श्रीजिनप्रबोधसूरिमूर्ति प्रतिष्ठा कारिता रामसिंहसुताभ्यां सा. नोहा कर्मण श्रावकाभ्यां स्वमातृ राई मई श्रेयोऽर्थं ॥''

आ. बु. धा. ले. सं., लेखांक ७३४

ये आचार्य जिनदत्तसूरि के पांचवे पट्टधर थे। इनके समय तक भी खरतर शब्द को गच्छ का स्थान नहीं मिला था।

''ॐ संवत् १३७९ मार्ग. वदि ५ प्रभु जिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्रीकुशल-सूरिभि श्री शान्तिनाथबिंबं प्रतिष्ठितं कारितञ्च सा. सहजपालपुत्रैः सा. धाधल गयधर थिरचंद्र सुश्रावकैः स्वपितृ पुण्यार्थं ॥''

बाबू पूर्ण., खंड तीसरा, लेखांक २३८९

ॐ सं. १३८१ वैशाख वदि ५ श्रीपत्तने श्रीशांतिनाथविधिचैत्ये श्री जिनचंद्रसूरिशिष्यैः श्री जिनकुशलसूरिभिः श्रीजिनप्रबोधसूरिमूर्ति प्रतिष्ठा कारिता च सा. कुमारपाल रत्नैः सा. महणसिंह सा. देवाल सा. जगसिंह सा. मेहा सुश्रावकैः सपरिवारैः स्वश्रेयोऽर्थम् ॥

बाबू पूर्ण., खण्ड दूसरा, लेखांक १९८८

''संवत् १३९१ मा. सु. १५ खरतरगच्छीय श्रीजिनकुशलसूरिशिष्यैः जिनपद्मसूरिभिः श्री पार्श्वनाथप्रतिमाप्रतिष्ठिता कारिता च भव. बाहिसुतेन रत्नसिंहेन पुत्र आल्हानादि परिवृतेन स्वपितृ-सर्व-पितृव्य पुण्यार्थं ॥''

''सं. १३९९ भ. श्रीजिनचन्द्रसूरिशिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः श्रीपा-र्श्वनाथबिंबं प्रतिष्ठितं कारितं च सा. केशवपुत्ररत्न सा. जेहदु सुश्रावकेन पुण्यार्थं ।''

बाबू पूर्ण., खं. दूसरा

यह आचार्य जिनदत्तसूरि के छठे पट्टधर हुए हैं।

पूर्वोक्त शिलालेखों से पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि जिनकुशलसूरि के पूर्व किन्हीं आचार्यों के नाम के साथ खरतर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ पर जिनकुशलसूरि के कई शिलालेखों में खरतर शब्द नहीं है और कई लेखों में खरतरगच्छ का प्रयोग हुआ है, इससे यह स्पष्ट पाया जाता है कि खरतर शब्द गच्छ के रुप में जिनकुशलसूरि के समय अर्थात् विक्रम की चौदहवीं शताब्दी ही में परिणत हुआ है। इसका अभिप्राय यह है कि खरतर शब्द न तो राजाओं का दिया हुआ बिरुद है और न कोई गच्छ का नाम है। यदि वि. सं. १०८० में

जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में राजा दुर्लभ ने खरतर बिरुद दिया होता तो करीब ३०० वर्षों तक यह महत्त्वपूर्ण बिरुद गुप्त नहीं रहता। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में खरतर गच्छाचार्यों की यह मान्यता थी कि खरतर गच्छ के आदि पुरुष जिनदत्तसूरि ही थे। और यही उन्होंने शिलालेखों में लिखा है। यहाँ एक शिलालेख इस बारे में नीचे उद्धृत करते हैं।

''संवत् १५३६ वर्षे फागुणसुदि ५ भौमवासरे श्री उपकेशवंशे छाजहड़गोत्रे मंत्रिफलधराऽन्वये मं. जूठल पुत्र मकालु भा. कर्म्मादे पु. नयणा भा. नामल दे तयो पुत्र मं. सीहा भार्यया चोपड़ा सा. सवा पुत्र स. जिनदत्त भा. लखाई पुत्र्या श्राविका अपुरव नाम्न्या पुत्र समधर समरा संदू संही तया स्वपुण्यार्थं श्रीआदिदेव-प्रथम-पुत्ररत्न-प्रथम-चक्रवर्ति-श्रीभरतेश्वरस्यकायो-त्सर्गस्थितस्य प्रतिमा कारिता प्रतिष्ठिता खरतरगच्छमण्डनश्रीजिनदत्तसूरि श्रीजिनकुशलसूरिसंतानीय श्रीजिनचन्द्रसूरि पं. जिनेश्वरसूरिशाखायां श्री-जिनशेखरसूरिपट्टे श्रीजिनधर्मसूरिपट्टाऽलंकारश्रीपूज्यश्रीजिनचन्द्रसूरिभिः''

इस लेख से पाया जाता है कि सोलहवीं शताब्दी में खरतर गच्छ के आदि पुरुष जिनेश्वरसूरि नहीं पर जिनदत्तसूरि ही माने जाते थे। खरतरों के पास इससे प्राचीन कोई भी प्रमाण नहीं है कि वह जनता के सामने पेश कर सके। अधुना खरतर गच्छ अनुयायी प्रतिक्रमण के अन्त में दादाजी के काउस्सग्ग करते हैं। उसमें भी जिनेश्वरसूरि का नहीं पर जिनदत्तसूरि का ही करते हैं और कहते हैं कि खरतरगच्छ शृंगारहार जिनदत्तसूरि आराधनार्थं... इससे भी स्पष्ट होता है कि खरतर गच्छ के आदि पुरुष जिनदत्तसूरि ही हैं।

खरतर गच्छ को प्राचीन साबित करने वाला एक प्रमाण उनको ऐसा उपलब्ध हुआ है कि जिस पर वे लोग विश्वास कर कहते हैं कि बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर के संग्रह किये हुए शिलालेख खण्ड तीसरे में जिसमें वि. सं. ११४७ का एक शिलालेख विद्यमान है। नमूना नीचे उद्धृत है।

''संवत् ११४७ वर्षे श्रीऋषभबिंबं श्रीखरतरगच्छे श्री जिनशेखर-सूरिभिः करापितं ॥''

इस शिलालेख को पढ़कर सभ्य संसार में यह शंका स्वयं समुत्थित हो सकती है कि जिनेश्वरसूरि से लेके ३०० वर्षों तक के ग्रन्थ व शिलालेखों में तो कहीं पर भी खरतर गच्छ ऐसा शब्द नहीं आया और केवल एकमात्र पंक्ति में वि. सं. ११४७ के शिलालेख में सहसा यह खरतर गच्छ का शब्द कहाँ से आ धमका ?

क्या बाबूजी की यह निज शोध है या किसी खरतर अनुयायी की पक्षपात वृत्ति का उदाहरण है? पाठक स्वयं सोचें।

पूर्वोक्त शिलालेख जैसलमेर के किल्ले के अन्दर स्थित चिन्तामणि पार्श्वनाथ के मन्दिर में है। जो विनोपवासन भूमि पर बीस विहरमान तीर्थंकरों की मूर्तियाँ स्थापित है, उनमें एक मूर्ति में यह लेख भी बताया जाता है। परन्तु जब फलोदी के वैद्य मुहता पांचूलालजी के संघ में मुझे जैसलमेर जाने का सौभाग्य मिला तो मैंने दिल की शङ्का निवारणार्थ प्राचीन लेख संग्रह खण्ड तीसरा जिसमें निर्दिष्ट लेख मुद्रित था साथ में लेकर मन्दिर में जा खोज शुरु की। परन्तु अत्यधिक अन्वेषण करने पर भी ११४७ के संवत् वाली उक्त मूर्ति उपलब्ध नहीं हुई। अनन्तर शिलालेख के नम्बरों से मिलान किया, पर न तो वह मूर्ति ही मिली और न उस मूर्ति का कोई रिक्त स्थान मिला (शायद जहाँ से मूर्ति उठा ली गई हो) इस खोज के लिये मैंने यतिवर्य प्रतापरत्नजी नाडोल वाले और मेघराजजी मुनौत फलोदीवालों को बुलाके जाँच कराई, अनन्तर अन्य स्थानों की मूर्तियों की तलाश की, पर प्रस्तुत मूर्ति कहीं पर भी नहीं मिली। शिलालेख संग्रह के नम्बर २१२० से क्रमशः २१३७ तक की सारी मूर्तिएँ सोलहवीं शताब्दी की हैं। फिर उनके बीच २१२४ नम्बर की मूर्ति वि. सं. ११४७ की कैसे मानी जाय? क्योंकि न तो इस सम्वत् की मूर्ति ही वहाँ है और न उसके लिए कोई स्थान खाली है। जैसलमेर में प्रायः ६००० मूर्तिएँ बताते हैं, पर किसी शिलालेख में बारहवीं सदी में खरतर गच्छ का नाम नहीं है। फिर भी लेख छपाने वालों ने इतना ध्यान भी नहीं रक्खा कि शिलालेख के समय के साथ जिनशेखरसूरि का अस्तित्व था या नहीं?

अस्तु! अब हमारे जिनशेखरसूरि का समय देखते हैं तो वह वि. सं. ११४७ तक तो आचार्य ही नहीं हुए थे, यह ज्ञात होता है। जिनवल्लभसूरि सं. ११५९ में स्वर्गस्थ हुए, तत्पश्चात् उनके पट्ट पर जिनदत्त और जिनशेखरसूरि आचार्य हुए तो ११४७ संवत् में जिनशेखरसूरि का अस्तित्व कैसे सिद्ध हो सकता है?

खरतर शब्द खास कर जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण ही पैदा हुआ था और जिनशेखरसूरि और जिनदत्तसूरि के परस्पर में खूब क्लेश चलता था। ऐसी स्थिति में जिनशेखरसूरि खरतर शब्द को गच्छ के रुप में मान ले या लिख दे यह सर्वथा असम्भव है। उन्होंने तो अपने गच्छ का नाम ही रुद्रपाली गच्छ रक्खा था। इस विषय में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी का उल्लेख हम उपर लिख आए हैं। अतः इस लेख के लिए अब हम दावे के साथ यह निःशंकतया कह सकते हैं कि उक्त ११४७ सम्वत् का शिलालेख किसी खरतरानुयायी ने जाली (कल्पित)

छपा दिया है। नहीं तो यदि बाबूजी आज भी उस मूर्ति का दर्शन करवा दें तो इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ सकता है एवं साथ ही खरतरों का[१] प्राचीनत्व भी पुष्ट प्रमाणों से आम जनता में जाहिर हो सकता है।

भला ! यह समझ में नहीं पडता कि खरतर लोग खरतर शब्द को प्राचीन मानने में इतना आकाश पाताल एक न कर यदि अर्वाचीन ही मान लें तो क्या हर्ज है ?

जिनदत्तसूरि के पहले खरतर शब्द इनके किन्हीं आचार्यों ने नहीं माना था। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी का शिलालेख हम पूर्व लिख ही आये हैं। वहाँ तक तो खरतरगच्छ मंडन जिनदत्तसूरि को ही लिखा मिलता है। पर तपागच्छ और खरतरों के आपस में वाद-विवाद होने से, इधर खरतरों ने देखा कि जिनेश्वरसूरि के और चैत्यवासियों के आपस में शास्त्रार्थ तो हुआ ही था, यदि उनकी विजय में 'खरतर बिरुद' मान लिया जाय तो क्या हानि है, क्योंकि यह बात प्रसङ्गवशात् मिलती जान पड़ सकती है और प्राचीन भी है। और भविष्य में कोई आशा नहीं कि इसका निर्णय भी होगा तथा नौ अङ्ग वृत्तिकार अभयदेवसूरि भी खरतर गच्छ में माने जायेंगे और इनकी बनाई नौ अंग की टीका सर्वमान्य है। अतः सर्व गच्छ हमारे आधीन रहेंगे। बस इसी हेतु से इन लोगों ने कल्पित ढाँचा खड़ा कर दिया। पर अन्त में वह कहाँ तक सच्चा रह सकता है ? जब सत्य की शोध की जाती है तो सबकी कलई खुल जाती है।

खरतर गच्छ को प्राचीन प्रमाणित करनेवाला एक लेख खरतरों को फिर अनायास मिल गया है और वह पल्ह कवि कृत खरतर पट्टावली में है। जो यहाँ लिखते हैं-

---

१. **श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर वालों द्वारा मालूम हुआ कि वि. सं. ११४७ वाली मूर्ति पर का लेख दब गया है। आठ सौ वर्षों का लेख लेते समय तक तो स्पष्ट बचता था केवल ३-४ वर्षों में ही दब गया, यह आश्चर्य की बात है। भीनासर में भी वि. सं. ११८१ की मूर्ति पर शिलालेख में 'खरतर गच्छ' का नाम बतलाया जाता है। इसकी शोध के लिये एक आदमी भेजा गया, पर वह लेख स्पष्ट नहीं बचता है, केवल अनुमान से ही ११८१ मान लिया है। खैर इसी प्रकार बारहवीं शताब्दी का यह हाल है तब हम चाहते हैं जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागर और अभयदेवसूरि के समय के प्रमाण। यदि जिनवल्लभसूरि के समय, सोमचन्द्र मुनि (होने वाले जिनदत्तसूरि) की प्रकृति के कारण खरतर कहलाये हों और किसीने खरतर लिख भी दिया हो तो इससे जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिलना साबित नहीं हो सकता है। खरतर गच्छ वालों को चाहिये कि वे जिनेश्वरसूरि के समय के प्रमाणों की खोज कर जनता के सामने रखें।**

''देव सूरि पहु नेमि वहु, वहु गुणिहि पसिद्धउ।
उज्जोयणु तह वद्धमाणु, खरतरवरलद्धउ॥''

इस लेख से स्पष्ट सिद्ध है कि 'खरतर बिरुद' प्राप्त करने वाले जिनेश्वरसूरि नहीं किन्तु उद्योतनसूरि और वर्धमानसूरि हैं। जिन लोगों का कहना था कि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में दुर्लभराज ने खरतर बिरुद इनायत किया यह तो बिलकुल मिथ्या ठहरता है। क्योंकि जिनेश्वरसूरि के गुरु वर्धमानसूरि और वर्धमानसूरि के गुरु उद्योतनसूरि थे। यदि उद्योतनसूरि को ही ''खरतरबिरुद'' मिल गया था तो फिर जिनेश्वरसूरि के लिए शास्त्रार्थ की विजय में खरतरबिरुद मिला कहना तो स्वयं असत्य साबित होता है। पर यह विषय भी विचारणीय हैं क्योंकि पल्ह कवि कृत खरतरपट्टावली और उनका खुद का समय भी विक्रम की बारहवीं शताब्दी में जिनदत्तसूरि के समकालीन है और यह कविता भी जिनदत्तसूरि को ही लक्ष्य में रख कर बनाई गई है। फिर भी कवि का ह्रदय ही संकीर्ण था क्योंकि उसने खरतर की महत्ता बताने को खरतरबिरुद का संयोग श्रीउद्योतनसूरि से ही किया। अच्छा तो यह होता कि कवि श्रीमहावीर प्रभु के पट्टधर सौधर्माचार्य को ही खरतर बिरुद से विभूषित कर देता। उसके ऐसा करने से सारा झगड़ा बखेड़ा स्वयं मिट जाता और जैनसमाज खरतरगच्छ का ही उपासक बन जाता। वास्तव में तो कविता का आशय जिनदत्तसूरि को ही खरतर कहने का था। यदि ऐसा न होता तो उद्योतनसूरि, वर्धमानसूरि, जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागरसूरि, जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि और जिनपतिसूरि तक के सैकड़ों ग्रन्थ और शिलालेख मिलते हैं, जिनमें कतिपय का उल्लेख तो हम उपर कर आये हैं कि तीन सौ वर्षों में किसीने ही खरतर शब्द का उल्लेख तक भी नहीं किया है और एक अप्रसिद्ध अपभ्रंश भाषा के पल्ह नामक कवि ने उद्योतनसूरि को खरतर बिरुदधारक लिख दिया और खरतरों का उस पर यकायक बिना सोचे समझे विश्वास कर लेना सभ्य समाज को सन्तोषप्रद नहीं हो सकता।

कई अज्ञ लोगों का यह भी कथन है कि पाटण के राजा दुर्लभ की राज-सभा में आचार्य जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों के बीच शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें 'खरा' रहने वालों को 'खरतर' और हार जाने वालों को 'कँवला' कहा। और वह खरतर तथा कँवला शब्द आज भी मौजूद हैं।

पूर्वोक्त बात कहने वालों का अभिगम शायद यह हो कि यह शास्त्रार्थ केवल उपकेशगच्छ वालों के साथ ही हुआ, कारण कँवला आजकल उपकेशगच्छवालों को ही कहते हैं। इस शास्त्रार्थ के समय पाटण में अनेकाचार्यों के उपाश्रय और

वहाँ बहुत आचार्य व साधु रहा करते थे, जिनमें सर्वाऽग्रणी केवल उपकेशगच्छ वालों को ही माना जाता हो और शास्त्रार्थ भी उन्हीं के ही साथ हुआ हो ऐसा प्रतित होता है। खैर यदि थोड़ी देर के लिये खरतरों का कहना मान भी लिया जाय कि दुर्लभ राजा की राजसभा में शास्त्रार्थ हुआ और खरा रहने वाले खरतर और हार जाने वाले कँवला कहलाये। पर यह बात बुद्धिगम्य तो होनी चाहिए ? कारण दुर्लभ राजा स्वयं बड़ा भारी विद्वान एवं असाधारण पुरुष था। संस्कृत साहित्य का प्रौढ़ पण्डित एवं पूर्ण प्रेमी था। और यह शास्त्रार्थ भी विद्वानों का था, फिर जय और पराजय के उपलक्ष्य में बिरुद देने को उस समय के कोषों में कोई ऐसा सुन्दर और शुद्ध शब्द नहीं था, जो इन ग्रामीण भाषा के अर्थशून्य असभ्य शब्दों को (जय के लिए खरतर और पराजय के लिये कँवला) ही विजय के उपहार स्वरुप स्थान मिला ? परन्तु वस्तुत: देखा जाय तो यह बात ऐसी नहीं है। क्योंकि कुदरत का नियम है कि कोई भी विरुद्ध अर्थवाची प्रतिपक्षी दो शब्द बराबर विरुद्ध अर्थ में ही आते हैं। जैसे उदाहरणार्थ देखिये :-

धर्म–अधर्म	कठोर–कोमल	दिन–रात
सत्य–असत्य	करड़ा–कँवला	मीठा–खारा
जय–पराजय	दया–निर्दयी	लोक–अलोक
खरा–खोटा	सुख–दु:ख	भला–बुरा

अब जरा सोचना चाहिये कि 'खरा का प्रतिपक्षी शब्द' खोटा होना चाहिये या कँवला ? खोटा का अर्थ होता है झूठा (असत्य) और कँवला का अर्थ होता है नरम (कोमल)। जब कँवला का अर्थ कोमल है तो उसका प्रतिपक्षी "करड़ा" शब्द जिसका अर्थ कठोर होता है, यह उपयुक्त है। 'खर' शब्द कठोर का भी पर्याय नहीं है। हाँ ! लौकिक में यद्यपि 'खरतर' शब्द जरुर विशेष कठोरता का द्योतक हो सकता है परन्तु 'खरा' शब्द नहीं, जब खरा शब्द से यहाँ कठोरता अर्थ न ले सही (सच्चा) यह लिया गया है तो यौगिक शब्द 'खरतर' में भी 'खरातर' ऐसा होना चाहिए और उसका प्रतिपक्षी 'खोटा' याने "खोटा तर" ही होना चाहिए, केवल मात्र 'कँवला' नहीं। खर का असली अर्थ उग्र याने तेज, तीक्ष्ण, यह है सत्य (सच्चा) और कठोर नहीं। यदि इसका अर्थ थोड़ी देर के लिए कठोर भी मान लें तो फिर आपका मनगढ़न्त आशाद्रुम अकाल ही में उखड़ जाता है क्योंकि इससे तो लौकिक में यही प्रसिद्ध होगा कि "खरतर" अर्थात् तेज प्रकृति, अशान्त स्वभाव वाला और कँवला कोमल प्रकृति, शान्त स्वभाव वाला। वास्तव में यही

अर्थ लेके इन शब्दों का निर्माण हुआ है जिसे हम आगे चलकर बता देते हैं। पहले एक सन्दिग्ध सवाल फिर उठता है वह है कि इस ग्रामीण शब्द के साथ अतिशय अर्थ के ज्ञापक तरप् प्रत्यय का संयोग करना, विशेष आश्चर्य तो इस बात का है कि जो महानुभाव शुद्ध प्रत्यय लगा सकते हों वे इन अशुद्ध शब्दों को भरी राजसभा में पण्डित मण्डली के समक्ष हार जीत के उपहार स्वरुप कैसे दे सकते हैं ? अतः सभ्य समाज में यह थोथी कल्पना स्वयं गन्धर्व नगर लेखा के समान भ्रांति का हेतु सिद्ध होती है।

अब हम उपसंहार स्वरुप इस बात को वास्तविकतया निर्णीत कर जल्दी ही लेखनी को विश्राम देते हैं। वह यह है कि खरतर और कँवला जय पराजय के द्योतक नहीं पर आपसी द्वेष के हेतु-भूत हैं। कारण यह है कि उपकेशगच्छीय साधुओं का और चन्द्रकुलीय साधुओं का विहार क्षेत्र प्रायः एक ही था। जब भगवान् महावीर के पांच छः कल्याणकादि का वाद-विवाद चल रहा था, तब जिनदत्तसूरि की कठोर प्रकृति के कारण लोग उन्हें खरतर-खरतर कहा करते थे और उपकेशगच्छीय लोग इस वाद-विवाद में सम्मिलित नहीं होते थे, अतः इन्हें कँवले-कँवले कहते थे। खरतरों ने इस शब्द को प्रायः दो सौ वर्षों के बाद अवसर पाकर गच्छ के रुप में परिणत कर दिया और कँवलो ने कँवला शब्द को कतई काम में नहीं लिया। आज तक भी उपकेशगच्छ के आचार्यों से कराई हुई प्रतिष्ठा, शिलालेख व ग्रन्थों में कहीं कँवला गच्छ का प्रयोग नहीं हुआ है। जहाँ तहाँ उपकेशगच्छ का ही उल्लेख नजर आता है।

खरतर शब्द की उत्पत्ति किस कारण, कब और कैसे हुई इस विषय में हमने जिनेश्वरसूरि से लगा कर जिनपतिसूरि तक के ग्रन्थों एवं शिलालेखों के उदाहरण देकर यह परिस्फुट कर दिया है कि खरतर शब्द का प्रादुर्भाव उद्योतनसूरि, वर्धमानसूरि और जिनेश्वरसूरि से नहीं पर जिनदत्तसूरि से ही हुआ और यह भी कोई मान, महत्ता या बिरुद और गच्छ के रुप में नहीं, किन्तु खास कर जिनदत्तसूरि के स्वभाव के कारण ही हुआ है। यदि खरतर गच्छीय कोई भी सज्जन प्रामाणिक प्रमाण द्वारा अपने पक्ष की पुष्टि कर बतावें तो हम अपनी भूल सहर्ष स्वीकार कर उनके मत को मानने में सहमत बन जावेंगे, कारण हम सत्य संशोधक हैं वितण्डावादी नहीं। हमें सत्य की शोध चाहिए, व्यर्थ के वाद विवाद और खण्डन-मण्डन नहीं। यह विषय ही सत्य की कसौटी पर कसने काबिल है। अतः यह सारा श्रम किया है। ''मेरा सो सच्चा यह नहीं किंतु सच्चा सो मेरा'' यही मानना आत्मार्थी सत्पुरुष का काम है।

उपरोक्त निर्णय से खरतरगच्छ के अलावा तपागच्छ, उपकेशगच्छ, आंचलगच्छ आदि सभी की मान्यता है कि खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण हुई है और यह मानना न्याय संगत भी है।

अन्त में खरतरगच्छीय विद्वद् समाज से निवेदन करुँगा कि आप इस छोटी सी किताब को आद्योपान्त ध्यानपूर्वक पढ़ें। यदि मेरी ओर से किसी प्रकार की भूल हुई हो तो आप सप्रमाण सूचना करें कि उसका मैं द्वितीयावृत्ति में ठीक सुधार करवा दूँ। यदि इसके उत्तर में कोई सज्जन किताब लिखना चाहें तो भी कोई हर्ज नहीं है क्योंकि ऐसे विषय की ज्यों ज्यों अधिक चर्चा की जाय त्यों त्यों इसमें विशेष तथ्य प्राप्त होता जायेगा और आखिर सत्य अपना प्रकाश किये बिना कदापि नहीं रहेगा, पर साथ में यह बात भी लक्ष्य बाहर न रहे कि आज कल जमाना सभ्यता का है, विद्वद् समाज में प्रमाणों का प्रेम है, सभ्यता एवं सत्यता की ही कीमत है।

इति खरतरगच्छोत्पत्ति
समाप्तम्

खर-तरों की बातें

लेखक

इतिहासप्रेमी मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला
मु. फलौदी (मारवाड़)

भूमिका

'खरयरमय मूलं उस्सुत्तं' खरतरमत मूल उत्सूत्र से पैदा हुआ है और इस मत के उत्पादकों की अक्ल के लिये इस मत का नाम खर-तर होना यह 'यथानामस्तथागुण' सार्थक भी है।

कल्पित एवं झूठा मत चलाने वालों के पास सिवाय असभ्य शब्दों में गालियों के और क्या मिल सकता है? देखिये तपागच्छादि अनेक गच्छों के आचार्यों को इन खर-तरोंने असभ्य शब्दों में सेकड़ों हजारों गालियाँ प्रदान की हैं। जैसे मिथ्यात्वी कदाग्रही उत्सूत्र प्ररुपक निन्हव और अनंतसंसारी आदि और यह क्रम इस मत की आदि से आज पर्यन्त चला ही आया है, हाल ही में 'बृहद्पर्युषण निर्णय' तथा 'युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि' नामक ग्रन्थों को उठा कर देखिये जिसमें खरतरों ने किस प्रकार पागल की तरह वैभान हो कर महापुरुषों पर गालियों की वोच्छावर की है।

खैर ! खरतरों को इतने से ही संतोष नहीं हुआ पर उन्होंने तो अभी उपकेशगच्छ आचार्यों की ओर भी अपना असभ्यता से भरा हुआ मुँह बढ़ाया है, जैसे ऊंट लंका की ओर अपना मुंह बढ़ाता है।

उपकेशगच्छ एक ऐसा शान्ति प्रिय गच्छ है कि जैन शासन में जितने गच्छ हुए हैं उन सब गच्छवालों ने उपकेश गच्छवालों का पूज्य भाव से सत्कार किया है कारण उपकेशगच्छाचार्यों का जैनसमाज पर महान् उपकार हुआ है। सबसे पहले महाजनसंघ की स्थापना उपकेशगच्छाचार्यों ने ही की थी, आज जो श्रीमाली पोरवाल और ओसवाल जातियाँ जैनधर्म पालन कर रही हैं अर्थात् जैनधर्म को जीवित रक्खा है यह उन उपकेश गच्छाचार्यों की कृपा का ही सुन्दर फल है। अतः जैनसमाज उपकेशगच्छाचार्यों का जितना उपकार माने उतना ही थोड़ा है।

हाँ कई अर्सों से इस गच्छ में त्यागी साधु न होने से कई कृतघ्नी लोग उन उपकारी महापुरुषों को भूल कर अन्य गच्छीय साधुओं के उपासक बन गये हैं। खैर गुणीजन की उपासना करने में तो कोई हानि नहीं है पर अपने पर जिन

महापुरुषों का उपकार है उसको भूल जाना यह एक कृतघ्नीपना है और इसी वज्रपाप के कारण समाज का पतन हो रहा है।

प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि कई कई गच्छवालों के आपस में खण्डन मण्डन हुआ करता था पर उपकेशगच्छवालों प्रति न तो किसी गच्छवालों ने हस्तक्षेप किया है और न उपकेशगच्छवालों ने भी किसी गच्छवालों प्रति गरम निगाह से देखा है अर्थात् उपकेशगच्छवाले सब गच्छवालों के साथ भ्रातृभाव से रहते थे।

उपकेशगच्छ का अपरनाम कँवलागच्छ भी है इसका मतलब भी यही है कि करड़ी एवं कठोर प्रकृतिवाले जिस प्रदेश में भ्रमण करते थे उसी प्रदेश में कोमल प्रकृति वाले भी विचरते थे, अतः जिन्हों की कोमल प्रकृति देख कर लोग उनको कँवला कँवला कहा करते थे अर्थात् उपकेशगच्छ के आचार्य अपनी कोमल प्रकृति से सब गच्छोवालों के साथ श्रेष्ठाचार रखते थे, यही कारण था कि सब गच्छवाले उनको पूज्य भाव से देखते एवम् मानते थे।

जैन धर्म की दीक्षा उन महानुभावों के लिये है जो कि जातिवान हो, कुलवान हो, लज्जावान हो, वैराग्यवान हो। पर जब से शिष्य पीपासुओने अयोग्यों को दीक्षा देनी शुरु की तब से ही समाज रसातल में जाने लगी है, क्योंकि उन अयोग्यों में न तो धर्म का गौरव है न पूर्वाचार्यों के उपकार को ही जानते हैं, वे तो केवल पेट के पुजारी है और समाज में फूट कुसम्प डलवा कर आप अयोग्य होते हुए भी पुजवाने के प्रपंच करते हैं।

खर-तर मत में कई अयोग्य जाटादि ने साधु वेष पहनकर पहले तो तपा खर-तरों को आपस में खूब लड़ाया, अब उनकी क्रूर दृष्टि उपकेशगच्छ की ओर पड़ी है। हाँ तपागच्छ में तो आज उनके मुँह तोड़ने वाले बहुत हैं पर उपकेशगच्छ में ऐसा कोई नहीं है कि उन क्लेश प्रिय अयोग्य व्यक्तियों के दांत खट्टे कर डाले। अतः खर-तरों का हौंसला बढ़ता ही जा रहा है, उन नीच प्रकृति वालों ने यहां तक लिखमारा है कि-

१. तुम्हारा रत्नप्रभसूरि किस गटर में छिप गया था?

२. रत्नप्रभसूरि नाम के न तो कोई आचार्य हुए हैं और न ओसियां में रत्नप्रभसूरि ने ओसवाल ही बनाये हैं। ओसियां में ओसवाल तो खर-तर आचार्यों ने ही बनाये हैं। इत्यादि-

''सिद्धान्तमग्नसागर पुस्तक में''

३. आगे चलकर और देखिये खर-तर लिखते हैं कि-कुछ समय बाद

कल्याणमार्ग का अधिकार गद्दीधारी कलियुगी साधुओं ने जनता को भ्रम में डाल कर नष्ट भ्रष्ट बना दिया। आचार विचारों से पतित ऐसे उन साध्वाभासों ने अपनी सर्वे श्रेष्ठता बताने के लिये भगवान महावीर स्वामी के शासन में रहने पर भी श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के शासन से अपना सम्बन्ध जोड़ दिया और लोगों में कहने लगे–हम पार्श्वनाथ के सन्तानिये हैं। भगवान श्रीपार्श्वनाथस्वामी के ऋजुप्राज्ञ साधुओं के आचार इन वक्रजड़ों ने कलुषित बना दिये–परिग्रह रखने लगे, एक स्थान पर अड्डा बनाने लगे, मन माने रंग के कपड़े पहनने लगे, अधिक क्या सब प्रकार से पतित हो चले–'विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः' ऐसी परिस्थिति में भी सुविहित क्रियावाले साधु महात्मा यत्र तत्र आत्मकल्याण को करते कराते थे। पाटण में ऐसे साधुओं के आ जाने पर उन पतित साधुओं ने उनसे वाद किया–बाद में सुविहित साधु खरे रहे, तभी से यह सुना जाने लगा कि–

हार्या ते कंवला थया, जीत्या खरतर जाणिये।
तिणी काल श्री संघ में, गच्छ दोय पिछाणिये॥

उन पतित आचार वालों ने अपना 'कंवला' ढीला गच्छ भी बना लिया। उन खरतर आचार वाले सुविहित साधुओं ने अपने तपोबल दिव्यज्ञानबल एवं योगबल से उपकेशपुर में उपकेशवंश की स्थापना की, बाद में उन उपकेशवंशवालों को अपने पक्ष में लेने के लिये उन ढीले कंवलों ने उनके नाम को भी अपने साथ जोड़ लिया और कहने लगे हम उपकेशगच्छ के हैं। तुम हमारे हो हम तुम्हारे हैं ऐसे गठ जोड़े को बांधकर अपनी झूठी पट्टावलियां चरित्र आदि बना लिये। जो पक्के और सच्चे थे वे तो उनके फंदे में आये नहीं। पर 'लोक तो बोक होते हैं' उनको भी मिल गये। जैसे सुराणों ने सुराणागच्छ बनाया, जैसे पल्लीवालों ने पल्लीवाल गच्छ बनाया। यहां मैंने अपने अभ्यास की ही बातें लिखी हैं। 'इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश डालने के लिये 'उपकेशवंश महाप्रबन्ध' लिखने का विचार है, समय ने साथ दिया तो पाठकों को भेंट करुंगा।[१]

''चोरड़ियों के प्रतिबोधक, पृष्ठ १५''

यह तो केवल नमूना के तौर पर थोड़ा सा हाल बतलाया है पर इस प्रकार के तो कई आक्षेप किये हैं और इन आक्षेपों को कई अर्सा गुजर गया है पर किसी भी खर–तर विद्वान ने इसका विरोध नहीं किया, इससे पाया जाता है कि इस आक्षेपों में सब खरतरों की सम्मति होगी।

---

१. **इन आक्षेपों के प्रतिकार के लिए देखो मेरी लिखी पुस्तक ''त्रिकुटों का प्रतिकार''।**

पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि जिसके अन्दर ओसवाल जाति का खून एवं जैनधर्म का थोड़ा भी गौरव हैं क्या वह परोपकारी पूज्याचार्य रत्नप्रभसूरि के लिए ऐसे नीच शब्दोच्चारण कर सकते हैं? कदापि नहीं। पर उन जाट मैणों के रत्नप्रभसूरि क्या लगते हैं? फिर भी उनको यह ख्याल नहीं है कि हमको जो आज टुकड़ा मिलता है वह उन महात्मा रत्नप्रभसूरि का ही प्रताप है।

खैर सूर्य के प्रकाश के लिये प्रमाण की जरुरत नहीं है क्योंकि छोटा से बड़ा आदमी सब सूर्य को जानते हैं। इसी प्रकार आचार्य रत्नप्रभसूरि के लिये भी आज प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, कारण जैन समाज का बच्चा बच्चा भी जानता है कि आचार्य रत्नप्रभसूरि ने सबसे पहले उपकेशपुर में आचार पतित क्षत्रियों की शुद्धि कर 'महाजनसंघ' की स्थापना की थी और ओसवाल यह उस महाजनसंघ का रुपान्तर नाम है और इस विषय के अनेक ग्रन्थ भी निर्माण हो चुके हैं।

खर-तर दूसरों की बातें करतें है पर अभी उनको अपने घर की बातों का पता तक भी नहीं है, अतः आज मैं कुछ खर-तरों के घर की बातें पाठकों की सेवा में उपस्थित करता हूँ, यदि खरतर भाई इन बातों को ठीक तौर पर पढ़ के विचार करेंगे तो इतने से ही शांति आ जायेगी। वरन इन बातों पर टीका भाष्य चूर्णि आदि विवरण रच कर समझाया जायेगा। खर-तरों यह तो अभी आपके लिये मंगलाचरण ही हुआ है।

खर-तरों को एक बात और भी ध्यान में रखनी चाहिये और वह यह है कि हम कँवला हैं और तुम हो करड़ा-कठोर, अतः करड़ा की जमा कँवला क्षण भर भी नहीं रख सकते है। यहाँ तो साफ सौदा है कि इस हाथ दें और उस हाथ लें। अतः आप पहले घर को संभाल लेना इत्यालम्।

''लेखक''

खर-तरों की बातें

श्री उद्योतनसूरि के विषय की बातें

१. कई खरतर कहते हैं कि उद्योतनसूरि ने ८४ गच्छों की स्थापना की।[१]

२. कई खरतर कहते हैं कि उद्योतनसूरि ने श्री शत्रुञ्जय के सिद्धबड़ के नीचे ८३ अन्यगच्छीय साधुओं को आचार्य बनाया।[२]

३. कई खरतर कहते हैं कि लुंकड़िया बड़ के नीचे केवल एक वर्धमानसूरि को ही आचार्य बनाया।[३]

४. कई खरतर कहते हैं कि पहले वर्धमानसूरि को आचार्य बना कर

---

१. उद्योतनसूरिः अस्माच्चतुराशीतिगच्छस्थापका जाताः।

'खरतर' पट्टावली, पृष्ठ २०

२. गुरुभिरर्पितच्चूर्णं मन्त्रयित्वा त्र्यशीतेः शिष्याणां मस्तके निक्षिप्तं ततः प्रभाते श्रीगुरुभिः स्वस्य अल्पायु ज्ञात्वा तत्रेव अनशनं कृत्वा स्वर्गतिः प्राप्ता अथतेत्र्यशीतिरेपि शिष्याः आचार्यपदं प्राप्य पृथग्विहार चक्रुः।

बाबु पूर्ण. सं. खरतर-पट्टावली, पृष्ठ २०

श्री उद्योतनसूरि इनके निज शिष्य चैत्यवास छोड़ के आये भये वर्धमानसूरि, ८३ दूसरे २ थाविरों के शिष्य जिनों को सिद्धवड नीचे शुभमुहूर्त में सूरिमंत्रका वासचूर्ण दिया, वो ८३ अलग अलग गच्छों की स्थापना करी, इस वास्ते खरतर गच्छ में अभी भी ८४ नंदी प्रचलित हैं, ८४ गच्छ थापन भया।

'महाजनवंश मुक्तावली, पृष्ठ १६७'

एक समय उत्तम मुहूर्त देखकर आपने अपने पास में रहे हुए चौरासी शिष्यों को एक ही समय में आचार्य पद दिया। उन चौरासी आचार्यों से चौरासी गच्छों की स्थापना हुई।

'युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि, पृष्ठ ९'

एक खरतर दूसरे २ थाविरों के ८३ शिष्य बतलाते हैं, तब दूसरे खरतर उद्योतनसूरि निज के ८४ शिष्य बतलाते हैं तथा एक सिद्धवड़ तो दूसरा लंकड़ियावड़ कहते हैं, यह तो खरतरों की सत्यता (।) है। परन्तु इसमें न तो ८३ गच्छ की बात है और न ८४ गच्छ की। खरतर ८४ गच्छ की बात कहां से लायें ?

'लेखक'

३. लंकडियावड़वृक्षाधःस्थापितोवर्धमानसूरिः श्रीउद्योतनसूरिभि।

''बा. पू. सं. खरतर पट्टावली, पृष्ठ ४३''

उत्तराखंड में धर्मप्रचार निमित्त भेज दिया था, बाद में ८३ साधुओं को सूरि पद दिया, बाद तत्काल ही में उद्योतनसूरि ने अनशन कर दिया।[१]

इन चारों खरतरों की चारों बातें कल्पना का कलेवर रुप हैं, यदि खरतर मतानुसार भी कहा जाय तो परस्पर विरोधवाली चारों बातें सत्य हो नहीं सकती हैं। शायद एक सत्य हो तो भी तीन तो असत्य ही हैं, अतः इनके लिखनेवाले मृषावादी साबित होते हैं।

खरतरगच्छ पट्टावलीकारों ने उद्योतनसूरि का समय किसी स्थान पर नहीं लिखा है, तब तपागच्छीय पट्टावलीकारों ने उद्योतनसूरि का समय वि. सं. ९९४ का लिखा[२] है, यदि यह समय ठीक है तो उद्योतनसूरि ने वर्धमानसूरि को सूरि पद दिया या नहीं ? यह एक प्रश्न पैदा होता है। कारण खरतरलोग कहते हैं कि वर्धमानसूरि ने वि. सं. १०८८ में आबू पर विमलशाह के बनाये मन्दिर की प्रतिष्ठा[३] करवाई थी। यदि यह बात सत्य है तो समझना चाहिये कि प्रभावक चरित्र में वर्धमानसूरि को ८४ चैत्यों[४] का अधिपति कहा है, अतः वर्धमानसूरि ने अपनी उम्र का अधिक भाग तो चैत्यवास में ही व्यतीत किया होगा। बाद उन्होंने सं. ९९४ के आसपास में उद्योतनसूरि के पास क्रिया उद्धार किया होगा, फिर उन्होंने सं. १०८८ में आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई, अतः करीब १०० वर्ष तक वर्धमानसूरि सूरिपद पर स्थित रहे होंगे ? जो बिलकुल असम्भव सी बात प्रतीत

इसमें केवल एक वर्धमानसूरि को ही सूरिपद देना लिखा है, फिर ८४ गच्छस्थापना की बात किस उड़ती हवा की गप्प है ?

'लेखक'

१. **गच्छ वृद्धयादिलाभं विज्ञाय उत्तराखंडं विहारार्थमाज्ञा दत्ता ततो वर्धमानाचार्योऽपि गुर्वादेशं स्वीकृत्य नत्र गतः।**

'बा. पू. सं. ख. प., पृष्ठ २०'

२. **श्री उद्योतनसूरिः स चाऽर्बुदाचलयात्रार्थं पूर्वोवनिताः समागतः टेलिग्रामस्य सीस्नि पृथोर्वटस्य छायायामुपविष्टो निजपट्टोदयहेतुं भवृयमुहूर्तमवगम्य श्रीवीरात् चतुष्टयधिक चतुदर्शतवर्षे वि. चतुनवत्यधिकनवशत ९९४ वर्षे निजपट्टे श्रीसर्वदेवसूरिप्रभृतानष्टौ सूरिन् स्थापितवान् केचित्तु सर्वदेवसूरिमेकमेवेति वदंति ॥**

'पट्टावली समुच्चय, पृष्ठ ५३'

३. **देखो यु. प्र. जिनचन्द्रसूरि, पृष्ठ १०**

४. **तत्रासीत्प्रशमश्रीभिर्वर्द्धमानगुणोदधिः। श्रीवर्धमानइत्याख्या यः सूरिः संसारपारभूः ॥ चतुर्भिरधिकाशीतिश्चैत्यानां येन तत्यजे। सिधान्ताभ्यासतः सत्यं तत्त्वं विज्ञाय संसृतेः ॥**

प्रभावक चरित्र, अभयदेव प्रबन्ध, पृष्ठ २६३

होती है। यदि उद्योतनसूरि ने वर्धमान को सूरि पद दिया माना जाय तो आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा वर्धमानसूरि के हाथों से होना कदापि सिद्ध नहीं होता है और आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा वर्धमानसूरि के हाथों से करवाई मानी जाय तो उद्योतनसूरि की मौजूदगी में वर्धमानसूरि पद प्रतिष्ठ होना असम्भव है।

वास्तव में उद्योतनसूरि ने मुनि सर्वदेव को सूरि पद दिया था, यह बात तपागच्छ पट्टावली तथा आंचलगच्छीय पट्टावली और मेरुतुंगसूरि ने अपने रचे हुए ग्रन्थों में लिखी है।

वर्धमानसूरि को उद्योतनसूरि के पट्टधर भी मानना और आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा भी उनके हाथ से करवाई समझना इनके लिये एक मार्ग यह हो सकता है कि उद्योतनसूरि ने अपने पट्टधर सर्वदेवसूरि को स्थापन कर स्वर्गवास कर दिया हो और बाद में वर्धमानसूरि चैत्यवास छोड़कर उद्योतनसूरि के पट्टधर बन गये हों जैसे अभयदेवसूरि के स्वर्गवास के बाद ३२ वर्ष से जिनवल्लभसूरि अभयदेवसूरि के पट्टधर बन गये थे, इसी भांति वर्धमानसूरि ने भी किया हो तो दोनों बातें रह सकती हैं। यह तपागच्छ और खरतरों के उद्योतनसूरि ही अलग अलग हों क्योंकि इन दोनों की पट्टावलियों में उद्योतनसूरि की गुरु परम्परा पृथक पृथक हैं जैसे कि :-

तपागच्छ पट्टावली	खरतर-पट्टा. नं. १	खरतर पट्टा. नं. २
यशोभद्रसूरि	जिनभद्रसूरि	यशोभद्रसूरि
।	।	।
प्रद्योम्नसूरि	हरिभद्रसूरि	विमलचंद्रसूरि
।	।	।
मानदेवसूरि	देवचंद्रसूरि	देवसूरि
।	।	।
विमलचन्द्रसूरि	नेमिचंद्रसूरि	नेमिचंद्रसूरि
।	।	।
उद्योतनसूरि	उद्योतनसूरि	उद्योतनसूरि
।	।	।
सर्वदेवसूरि	वर्धमानसूरि	वर्धमानसूरि
(प.स., पृष्ठ ५३)	(ऐ. जै. का पृष्ठ २१९)	(बा. पू.सं., पृष्ठ १५)

खरतर-खरतर पट्टावलियों में नामों का इतना अन्तर है कि एक दूसरी पट्टावली से नाम नहीं मिलते हैं तब दूसरे गच्छों की पट्टावली से नाम मिलने की तो आशा ही क्यों रक्खें ? अतः कल्पित मत की पट्टावलियाँ भी कल्पित ही होती हैं। फिर भी खरतर अपनी उपरोक्त पट्टावलियाँ को किसी प्रमाणिक प्रमाणों द्वारा प्रमाणित कर दें तो उद्योतनसूरि का झगड़ा सहज ही में मिट जाय। अन्यथा खरतरों

के माने हुए उद्योतनसूरि कोई कल्पित व्यक्ति ही हैं फिर उसका समय या वर्धमान को पट्टधर मानने में वे स्वतन्त्र हैं जैसे ''गार का नगारा और घर के बजाने वाले।''

अब रही उद्योतनसूरि द्वारा ८४ गच्छों की स्थापना कहने वालों की बात।

अतः यह बात केवल मनःकल्पना का निर्जीव कलेवर ही है। जैन श्वेताम्बर समुदाय में चौरासी गच्छ होने का जन प्रवाद सुन कर खरतरों ने लिख मारा है कि उद्योतनसूरि ने ८४ मुनियों को गोबर के वासचूर्ण द्वारा ८४ आचार्य बनाये और उन ८४ आचार्यों के चौरासी गच्छ हुए, अतः चौरासी गच्छों के स्थापक उद्योतनसूरि हैं इत्यादि। जब कि खरतरों के उद्योतनसूरि ही एक काल्पनिक व्यक्ति हैं तो उनके द्वारा ८४ गच्छ स्थापना की बात तो स्वयं काल्पनिक सिद्ध हो सकती है फिर भी खरतरों के कथन को थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय तो सब से पहला तो यह सवाल पैदा होता है कि उद्योतनसूरि के स्थापित किये ८४ गच्छ तथा वर्तमान पुस्तकों में लिखे हुए ८४ गच्छ एक ही थे या पृथक पृथक थे ? यदि एक कहा जाय तो ८४ गच्छों का समय विक्रम के पूर्व चार शताब्दी से लगाकर विक्रम की चौदहवीं शताब्दी तक का है, क्योंकि उपकेशगच्छ, कोरंटगच्छ, निर्वृत्तिगच्छ, नागेन्द्रगच्छ, विद्याधरगच्छ, चान्द्रगच्छ, वायटगच्छ, संखेसरागच्छ, नाणावलगच्छ, कंदरसागच्छ, सांडेरागच्छ आदि बहुत से गच्छ तो उद्योतनसूरि के सैकड़ों वर्ष पूर्व के हैं तथा पुनमिया, साढ़पुनमिया, आगमिया, अंचलिया, तपागच्छ तथा खरतरादि बहुत से गच्छ उद्योतनसूरि के स्वर्गवास के बाद सैकड़ों वर्षों से उत्पन्न हुए हैं। अतः यह कहना मिथ्या है कि प्रचलित ८४ गच्छ के स्थापक उद्योतनसूरि थे।

दूसरा अगर उद्योतनसूरि के स्थापित ८४ गच्छ पूर्वोक्त गच्छों से पृथक हैं तो उनके अस्तित्व का प्रमाण बतलाना चाहिये कि कौन कौन आचार्यों से कौन कौन से गच्छ हुये और उन गच्छों की परम्परा कहां तक चली तथा उन गच्छ परम्परा वालों ने शासन के क्या क्या काम किये अर्थात् कौन कौन से ग्रन्थ बनाये और कितने कितने मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई ? जिन्हों के शिलालेखादि स्मृति चिह्न कहां कहां मिलते हैं ? इत्यादि विश्वसनीय प्रमाण देकर साबित करना चाहिये कि उद्योतनसूरि ने ८४ गच्छ की स्थापना की थी।

खरतरों ! आज जमाना बीसवीं शताब्दी का है। कुछ सोच समझ कर लिखा करो। यदि आपके पूवजों की उस समय भूल हो गई हो तथा गच्छ राग के लिए गलत बातें भी लिख दी हों तो उनका सुधार करना चाहिये न कि उन गलत बातों को सच्ची बनाने के लिये डबल झूठ का सहारा लेना चाहिये।

चलो यह तो हुई उद्योतनसूरि की बातें, अब आगे चलकर कोई दूसरी बात सुनाइये।

वर्धमानसूरि की बातें।

खरतरों की पट्टावलियों में वर्धमानसूरि के विषय में भी वही गड़बड़ है कि जो उद्योतनसूरि के विषय में थी। कई खरतर लिखते हैं कि वर्धमानसूरि चैत्यवास को छोड़कर उद्योतनसूरि के पास आये। उद्योतनसूरि ने उसको योग्य समझ कर सूरि बनाया और उत्तराखंड[१] में धर्मप्रचार करने के लिये भेज दिया, बाद में ८३ अन्य शिष्यों[२] को आचार्य पद देकर उद्योतनसूरि स्वर्ग पधार गये अर्थात् उद्योतनसूरि के स्वर्गवास के समय वर्धमानसूरि हाजिर ही नहीं थे। तब दूसरी पट्टावली बताती है कि उद्योतनसूरि ने केवल एक वर्धमानसूरि को ही आचार्यपद[३] दिया। बाद में वर्धमानसूरि ने आबू के विमलशाह के बनाये मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। तत्पश्चात् सरस्वती पाटण जाकर जिनेश्वर और बुद्धिसागर को दीक्षा दी। जब कि कई खरतर आबू के मंदिरों की प्रतिष्ठा का समय वि. सं. १०८८ का भी कहते हैं। इससे पाया जाता है कि सं. १०८८ के बाद जिनेश्वर और बुद्धिसागर की दीक्षा हुई थी।

इन सबका सारांस यह है कि खरतरों की पट्टावलियाँ कल्पित हैं और वह भी एक पट्टावली दूसरी पट्टावली से विरुद्ध है, क्योंकि एक पट्टावली में लिखा है कि उद्योतनसूरि ने केवल एक वर्धमानसूरि को ही सूरि पद दिया। बाद वर्धमानसूरि ने आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई, तत्पश्चात् सरस्वती पाटण जाकर जिनेश्वर और बुद्धिसागर को दीक्षा दी, बाद वर्धमानसूरि का स्वर्गवास हुआ।

तब दूसरी पट्टावली में वर्धमान को सूरिपद देकर उत्तराखंड में धर्मप्रचार निमित्त भेज दिये, बाद अन्य गच्छीय ८३ साधुओं को सूरि पद दिया। तत्पश्चात् उद्योतनसूरि का स्वर्गवास हुआ।

---

१. पृष्ठ १३७ का फूट नोट देखो।

२. पृष्ठ १३७ का फूट नोट देखो।

३. लुंकडीया वटवृक्षाधः स्थापितो वर्धमानसूरिः श्रीउद्योतनसूरिभिः।
क्रमेणाथ श्रीवर्धमानसूरयो बहुपरिवारा जाताः॥

विमलेन हटात् चिन्तितं सर्वोऽप्ययं गिरिर्मया स्वर्णमुद्रया गृहीष्यते। द्विजैरचिन्ति तीर्थमस्मदीयं सर्वं यास्यतीति विचिन्त्य स्तोकैव धरादत्ता तत्र महान् श्रीआदिनाथप्रासादः कारितः।

अथैकदा श्रीसूरयः सरस्वतीपत्तने जग्मुः... तदा जिनेश्वर बुद्धिसागरौ विप्रौ... दीक्षा गृहीता।

खरतर-पट्टावली, पृष्ठ ४४

तीसरी पट्टावली में ८३ शिष्य अन्यगच्छीय नहीं पर उद्योतनसूरि के ही शिष्य थे।

इसमें भी विशेषता यह है कि किसी पट्टावलीकारों ने यह नहीं लिखा है कि उद्योतनसूरि ने एक गच्छ की भी स्थापना की थी, केवल आधुनिक यतियों ने यह कल्पना कर डाली है कि उद्योतनसूरि ने ८४ गच्छों की स्थापना की थी पर इस बीसवीं शताब्दी में ऐसी मिथ्या कल्पना की क्या कींमत हो सकती है? खैर आगे चल कर और देखिये-

प्रभाविक चरित्र-अभयदेवसूरि के प्रबन्ध में यह भी लिखा मिलता है कि वर्धमानसूरि ८४ चैत्यों के अधिपति थे। बाद में उन्होंने क्रिया उद्धार किया था। पर यह क्रिया उद्धार किसके पास एवं किस समय किया यह चरित्र एवं प्राचीन पट्टावलीकारों ने नहीं लिखा है। अतः वर्धमानसूरि ने उद्योतनसूरि के पास क्रिया उद्धार किया था या स्वयं?

खरतर पट्टावलियों में वर्धमानसूरि का सम्बन्ध उद्योतनसूरि से बतलाया है। पर इसमें सवाल यह होता है कि उद्योतनसूरि का समय तपागच्छ पट्टावली में वि. सं. ९९४ का बतलाया है। और उद्योतनसूरि के पद पर सर्वदेवसूरि हुये एवं सर्वदेवसूरि ने वि. सं. १०१० में रामशैन्यपुर[१] में श्रीचन्द्रप्रभ बिंब की प्रतिष्ठा करवाई तथा चंद्रावती के कुंकुण मंत्री को दीक्षा दी थी अतः उद्योतनसूरि का समय स. ९९४ का होना यथार्थ ही है।

परन्तु वर्धमानसूरि ने उद्योतनसूरि के पास क्रिया उद्धार कर सूरिपद प्राप्त किया और साथ में यह भी कहा जाता है कि वर्धमानसूरि ने वि. सं. १०८८ में आबू के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई, यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता है क्योंकि वर्धमानसूरि ८४ चैत्यों के अधिपति थे तो उनकी अधिक उम्र तो चैत्यवास में ही व्यतीत हुई होगी, फिर वे क्रिया उद्धार कर सूरिपद की योग्यता प्राप्त कर के ही सूरि बने होंगे और आबू मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाने के बाद भी कुछ अर्से तक जीवित रहे होंगे। अतः इन सबको शामिल करने से वर्धमानसूरि को करीब १०० वर्ष से भी अधिक सूरिपद पर रहना कहा जा सकता है। जो बिलकुल असम्भव सी बात है।

---

१. **स च गौतमवत् सुशिष्य लब्धिमान्। वि. दशाधिक दशशत (१०१०) वर्षे रामसैन्यपुरे श्रीचन्द्रप्रभ प्रतिष्ठाकृत् चन्द्रावत्यां निर्मापितोत्तुंगप्रासादं कुंकुणमंत्रिणं स्वगिरा प्रतिबोध्य प्राव्राजयत्॥**

तपागच्छ पट्टावलि सं., पृष्ठ ५

अगर आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा वर्धमानसूरि ने सं. १०८८ में करवाई है और यह बात प्रमाणिक मानी जाती हो तो यह निशंक है कि वर्धमानसूरि ने उद्योतनसूरि के पास न तो क्रिया उद्धार किया था, न उद्योतनसूरि ने उनको सूरिपद ही दिया था। शायद वर्धमानसूरि चैत्यवास छोड़ कर स्वयं क्रिया उद्धारक बन गये हों और प्रसिद्धाचार्य उद्योतनसूरि के पट्टधर कहलाये हों और बाद में जिनेश्वर और बुद्धिसागर को दीक्षा दी हो तो यह बात संभव हो भी सकती है। कारण अभयदेवसूरि ने वर्धमानसूरि को किसी गच्छ के न लिखकर चन्द्रकुल के ही लिखा हैं।

एक पट्टावली में यह भी लिखा मिलता है कि वर्धमानसूरि जिनेश्वर बुद्धिसागर के साथ पाटण गये, वहाँ वर्धमानसूरि[१] का स्वर्गवास हो गया था। यदि जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का समय खरतर मतानुसार वि. सं. १०८० का माना जाये तो वि. सं. १०८० के पूर्व वर्धमानसूरि का स्वर्गवास समझना चाहिए, फिर सं. १०८८ में आबू मंदिर की प्रतिष्ठा किसी अन्य वर्धमानसूरि ने करवाई होगी। यदि उपरोक्त पट्टावली ठीक है तो जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ सं. १०८८ के बाद में हुआ होगा। क्योंकि वर्धमानसूरि सं. १०८८ में आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाकर ही पाटण गये होंगे पर उस समय राजा दुर्लभ किस गति में होगा? खरतरों को इसका पता लगाना चाहिये।

खरतरों ! ये पट्टावलियों की गड़बड़ आपके पूर्वजों की भूल है या कल्पित होने की साबूती दे रही है? जरा आंखे बंध कर विचारों।

खरतरगच्छ की एक पट्टावली सूरिपद के समय वर्धमान को वृद्धावस्था का बतलाती है, इससे भी कहा जा सकता है कि वर्धमानसूरि चैत्यवास छोड़ने के समय वृद्धावस्था में थे।

इससे भी यही सिद्ध होता है कि वर्धमानसूरि एक चैत्यवासी आचार्य थे और उन्होंने जिनेश्वर और बुद्धिसागर को दीक्षा देकर अपनी नयी शाखा चलाई थी,

---

१. **आ. गुरु श्रीउद्योतनसूरिनी आज्ञा लई श्रीअझहारीनगर थकी विहार करीने श्रीगुर्ज्जरइ अणहलपाटणि आवि वर्धमानसूरि स्वर्गे गया, तेहना शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरि पाटणी राज श्री दुर्लभनी सभाइं कुर्च्चपुरागच्छीय चैत्यवासी साथे कांश्यपात्रनी चर्चा कीधी, त्यां श्रीदशवैकालिक नी चर्चा गाथा कहीने चैत्यवासीने जीत्या, तिवारइं राजश्रीदुर्लभ कहइ ''ए आचार्य शस्त्रानुसारे खरुं बोल्या'' ते थकी वि. सं. १०८० वर्षे श्रीजिनेश्वरसूरि खरतर बिरुद लीधी।**

''सिद्धान्तमग्नसागर, पृष्ठ ९४''

अतः इन नामधारी सुविहित एवं सुधारकों ने शासन के संगठन बल को तोड़ तोड़ के अलग अलग वाड़बन्दी बनाई थी।

चलो यह तो हुई वर्धमानसूरि की बात आगे कुछ और बातें सुनाइये।

जिनेश्वरसूरि की बातें।

जिनेश्वरसूरि के विषय में खरतरों की एक मान्यता नहीं है पर भिन्न भिन्न मान्यता है और जिन खरतर लोगों ने जिनेश्वरसूरि के साथ खरतर बिरुद की कल्पना घड़ निकाली है वह खास खरतरों के लेखों से ही मिथ्या साबित होती है जिसके कई उदाहरण यहाँ दर्ज कर देता हूँ।

१. खरतरों की एक पट्टावली बताती है कि वर्धमानसूरि ने आबू के मंदिरों की प्रतिष्ठा (वि. सं. १०८८ में) करवाने के बाद जिनेश्वर व बुद्धिसागर नामके दो ब्राह्मणों को दीक्षा दी थी।

२. एक खरतर पट्टावली बताती है कि वर्धमानसूरि और जिनेश्वरसूरि पाटण गये। वहां वर्धमानसूरि का देहान्त हो गया बाद जिनेश्वरसूरि का शास्त्रार्थ हुआ।

३. कई खरतर लोग कहते हैं कि वि. सं. १०८० में पाटण के राजा दुर्लभ की राजसभा में जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों के आपस में शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें जिनेश्वरसूरि खरा रहने से राजा दुर्लभ ने जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद दिया और चैत्यवासी हार गये। अतः उनको कँवला कहा इत्यादि–

खरतरों ने यह एक कल्पित ढांचा रच कर बिचारे भद्रिक लोगों को बड़ा भारी धोका दिया है। पूर्वोक्त बात न तो किसी प्रमाणिक प्रमाणों द्वारा साबित होती है और न खरतरों के पास इस बात का कोई प्रमाण ही है क्योंकि खास तौर पर यह बात कल्पना मात्र है। और इस विषय के अर्वाचीन खरतरों ने जितने लेख लिखे हैं वह सब मनःकल्पित ही लिखे हैं। वे भी एक दूसरे से खास विरुद्ध अर्थात् वे आपस में एक दूसरे को झूठा साबित कर रहे हैं। केवल नमूने के तौर पर यहाँ कतीपय उदाहरण बतला दिये जाते हैं, जैसे कि :–

१. कई खरतर कहते हैं वर्धमानसूरि जिनेश्वरसूरि आदि १८ साधु पाटण गये थे। तब कई कहते कि नहीं पाटण तो जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि दो साधु ही गये थे। तब तीसरा कहता है कि नहीं, जिनेश्वर बुद्धिसागर सपरिवार पाटण गये थे।

२. कई खरतर कहते हैं कि शास्त्रार्थ चैत्यवासी सूराचार्य के साथ हुआ था, तब कई कहते हैं कि चौरासी मठपतियों के साथ, तब कई कहते हैं कि कुर्च्चपुरागच्छवालों के साथ। तब कई कहते हैं कि उपकेशगच्छवालों के साथ शास्त्रार्थ हुआ था।

३. कई खरतर कहते हैं कि शास्त्रार्थ का विषय कांसीपात्र का था, तब कई कहते हैं कि विषय था लिंग का। तब कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ था चैत्यवास और वस्तीवास का। कई कहते हैं कि साधुओं के आचार का ही विषय था।

४. कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ राजादुर्लभ की सभा में हुआ। तब कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ राजा भीम की सभा में हुआ था।

५. कई कहते हैं कि शास्त्रार्थ की विजय में खरतर बिरुद मिला। तब कई कहते हैं कि बिरुद तो खरा मिला था पर बाद में खर-तर हुये थे।

६. कई कहते हैं कि राजसभा में वर्धमानसूरि गये। कई कहते हैं कि राजसभा में जिनेश्वरसूरि गये, तब कई कहते हैं राजसभा में साधु नहीं गये पर राजपुरोहित सोमेश्वर ही गया था।

७. शास्त्रार्थ का समय कई खरतर वि. सं. १०२४ का बतलाते हैं तब कई १०८० का बतलाते हैं, कई कहते हैं कि वर्धमानसूरि पाटण गये थे और वहां उनका स्वर्गवास होने के बाद शास्त्रार्थ हुआ। और कई वर्धमानसूरि के आबू की प्रतिष्ठा (१०८८) कराने के बाद जिनेश्वरसूरि को दीक्षा दी, बाद का समय शास्त्रार्थ का समय बतलाते हैं।

८. कई खरतर आग्रह करते हैं कि जिनेश्वरसूरि से खरतर हुये पर कई वर्धमानसूरि को तो कई उद्योतनसूरि को भी खरतर बतलाते हैं। इतना ही क्यों पर कई खरतरों ने तो गणधर गौतम और सौधर्म को भी खरतर बना दिया है इत्यादि।[१]

क्या शास्त्रार्थ की विजय में एक प्रसिद्ध राजा की ओर से मिला हुआ महत्वपूर्ण बिरुद की इस प्रकार विडम्बना हो सकती है? जैसा जिसके दिल में आया उसने वैसा ही घसीट मारा। ठीक है, एक पति नहीं जिसके सहस्त्रपति हो जाते हैं। यदि शास्त्रार्थ की विजय में एक प्रसिद्ध राजा की ओर से बिरुद मिला होता तो किसी प्रमाणिक पुरुषों द्वारा उसका गौरव एक ही रुप में प्रकट होता, जैसे आचार्य जगच्चन्द्रसूरि को चित्तौड़ के महाराणा ने तपा बिरुद दिया वह एक ही रुप में आज पर्यन्त चला आया है और सब गच्छ के विद्वानों ने उसे स्वीकार भी किया है। तब खरतर बिरुद को खरतरों के अलावा आज पर्यन्त किसी गच्छवालों ने एवं किसी विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है कि खरतर बिरुद किसी राजा ने शास्त्रार्थ की विजय में दिया है। इतना ही क्यों, पर सब खरतर भी तो एक मत नहीं हैं। देखिये-

---

१. **इस विषय के प्रमाण के लिये देखो खरतरगच्छोत्पत्ति भाग दूसरा।**

१. खरतरों की एक शाखा रुद्रपाली कहलाती है, उसके आचार्य संघतिलकसूरि अपने दर्शनसप्ततिका नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि जिनेश्वरसूरि पाटण गये, वहाँ उनको ठहरने के लिए स्थान नहीं मिला। तब राज पुरोहित सोमेश्वर ने कोशिश कर राजा दुर्लभ से थोड़ी सी भूमि प्राप्त की और जिनेश्वरसूरि के लिए नया उपाश्रय बनाया, जिसमें जिनेश्वरसूरि ने चातुर्मास किया। बाद चातुर्मास के धारा नगरी की ओर विहार कर दिया। आगे और देखिये-

२. राजगच्छीय आचार्य प्रभाचन्द्रसूरि ने प्रभाविकचरित्र में अभयदेवसूरि के प्रबन्ध में जिनेश्वरसूरि के विषय में यही लिखा है कि वे खुद राजसभा में नहीं गये परन्तु राजपुरोहित सोमेश्वर ने राजा दुर्लभ से भूमिदान लेकर जिनेश्वरसूरि ने चातुर्मास किया बाद धारा नगरी की ओर प्रस्थान कर दिया।

इससे पाया जाता है कि जिनेश्वरसूरि ने वसतिवास की ओट में आधाकर्मी मकान में ठहर कर अपने और अपनी परम्परा के लिए सावद्य एवं वज्रपाप का रास्ता खोल दिया था।

उपरोक्त दोनों प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे पर वे न तो गये थे राजसभा में न हुआ था चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ और न राजादुर्लभ ने जिनेश्वरसूरि को खर-तर बिरुद ही दिया था केवल राजपुरोहित सोमेश्वर ने राजसभा में जाकर जिनेश्वरसूरि के ठहरने के लिए कुछ भूमि प्राप्त कर नया मकान बनवाया जिसमें जिनेश्वरसूरि ने चातुर्मास किया था।

वास्तव में बात यह बनी थी कि किसी समय जिनेश्वरसूरि बुद्धिसागरसूरि पाटण गये थे, वहां घर घर फिरने पर भी उनको ठहरने को स्थान नहीं मिला। कारण, पाटण में उस समय चैत्यवासियों का साम्राज्य बरत रहा था। इसका कारण यह था कि आचार्य शीलगुणसूरि की कृपा से राजा वनराज चावडा ने पाटण बसाई थी। उसी दिन से चैत्यवासियों ने राजा से यह मंजूर करवा लिया था कि पाटण में सिवाय चैत्यवासियों के श्वेताम्बर साधु ठहर नहीं सकेगा। यही कारण था कि जिनेश्वरसूरि को ठहरने को स्थान नहीं मिला। इस हालत में फिरते-फिरते वे सोमेश्वर पुरोहित के मकान पर गये। जिनेश्वर और बुद्धिसागर ये दोनों जाति के ब्राह्मण थे जिसका परिचय कराने पर पुरोहित ने अपना मकान उन दोनों साधुओं को ठहरने के लिये दिया। यह खबर जब चैत्यवासियों को मिली तो उन्होंने अपने आदमियों को भेजा। आदमियों ने जाकर कहा कि तुमको नगर में ठहरने का अधिकार नहीं है। अतः नगर से चले जाओ, इस पर पुरोहित ने कहा कि अभी तो ठहरने दो बाद में राजा के पास जाकर इसका निर्णय कर लूंगा। इधर तो

आदमियों ने जाकर चैत्यवासियों से कहा और वे चैत्यवासी राजसभा में आये और उधर पुरोहित भी राजसभा में गया। पुरोहित सोमेश्वर ने कहा कि मेरे यहां दो श्वे. साधु आये हैं, मैंने उनको ठहरने के लिये मकान दिया है। यदि इसमें मेरा कुछ अपराध हुआ हो तो मुझे मुनासिब दण्ड फरमावें।

इधर चैत्यवासियों ने राजा वनराज चावड़ा से अपना इतिहास सुना कर पाटण नगर में चैत्यवासियों की सत्ता साबित की जिसके सामने राजा को सिर झुकाना पड़ा। फिर भी राजा ने चैत्यवासियों से साग्रह प्रार्थना की कि हमारे नगर से कोई भी गुणीजन अपमानित होकर जाये इसको मैं ठीक नहीं समझता हूँ। अतः आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर इन साधुओं को नगर में ठहरने की आज्ञा फरमावें। इस पर उन चैत्यवासियों ने राजा के कहने को स्वीकार कर लिया। और पुरोहित की प्रार्थना पर राजा ने उन साधुओं के लिये थोड़ा सा भूमिदान दिया। जहां पुरोहित ने एक मकान बनवाया और जिनेश्वरसूरि ने वहां चातुर्मास किया। जो इस प्रकार साधु के लिये बनाये हुए मकान में साधु को पैर रखने की भी मनाई है। आचारांगसूत्र में सावद्य क्रिया एवं वज्र क्रिया कही है तब दशवैकालिक में भ्रष्टाचारी कहा है और निशीथ सूत्र में दण्ड बतलाया है। खैर ! चातुर्मास समाप्त होने के बाद जिनेश्वरसूरि धारा नगरी की ओर विहार कर गये।

बस इतनी बात बनी थी। इसमें न तो जिनेश्वरसूरि राजसभा में गये थे न शास्त्रार्थ हुआ और न राजा ने खरतर बिरुद दिया तथा न इस घटना का समय वि. सं. १०८० का ही था, उपरोक्त बात खरतरों की भांति किंवदंति या कल्पना मात्र ही नहीं है पर खरतरों के खास भाई रुद्रपालीगच्छीय संघतिलकसूरि स्वरचित 'दर्शनसप्तति' में तथा प्रभाचन्द्रसूरि ने प्रभावकचरित्र में लिखी है जो दोनों सर्वमान्य प्रमाणिक ग्रन्थ हैं।

खरतरों ने रज का गज और काग का बाग किस प्रकार बनाया है ? पाठक स्वयं सोच कर समझ सकते हैं।

यदि जिनेश्वरसूरि को शास्त्रार्थ की विजय में ही खरतर बिरुद मिला होता तो यह कोई लज्जा की बात नहीं थी की उनके पिछले आचार्य इस बिरुद को छिपा कर रखते। जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागरसूरि, प्रश्नचन्द्रसूरि, धनेश्वरसूरि, देवभद्रसूरि, हरिभद्रसूरि, जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, वर्धमानसूरि, पद्मप्रभसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनशेखरसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि आदि आचार्यों ने तथा इनके बहुत साधुओं ने कई ग्रन्थों की रचना की है पर कहीं पर यह नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि को खर-तर बिरुद मिला था या हम खरतर है। परन्तु उन्होंने तो

उल्टा अपने को चन्द्रकुल में होना ही लिखा है।

खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनदत्तसूरि की खर-प्रकृति के कारण हुई थी, पर उस समय इस खर शब्द को वे लोग अपमानसूचक समझते थे कि खर-तर शब्द को किसी ने नहीं अपनाया। जिनपतिसूरि ने जिनवल्लभसूरि कृत 'संघ-पट्टक' पर विस्तार से टीका रची है, जिसमें जिनेश्वरसूरि के साथ बहुत विशेषण लिखे पर खरतर शब्द को तो उन्होंने भी स्थान नहीं दिया। भला जिनपतिसूरि के समय खरतर महत्त्व का बिरुद होता तो चैत्यवासियों की विजय में प्राप्त हुआ बिरुद चैत्यवासियों के खण्डनामक ग्रन्थ में न लिख जाय। यह कभी हो नहीं सकता। पर उस समय तो यह खरतर शब्द ही अपमान के रुप में समझा जाता था। वे अपने हाथों से इस शब्द को कैसे लिख सकते थे?

खरतरों ने जिनेश्वरसूरि के शास्त्रार्थ का समय पहले तो सं. १०२४ का लिखा[१] कि जिस समय न तो जिनेश्वर का जन्म ही हुआ था और न दुर्लभ राजा ने संसार में अवतार ही लिया था। जब पिछले लोगों को यह समय गलत मालूम हुआ तब चउवीस का अर्थ बीस को चार गुणा करने से ८० किया अर्थात् सं. १०८० किया पर इसमें भी वे सफल नहीं हुये। कारण, दुर्लभ राजा का राज वि. सं. १०७८ में ही खतम हो चुका था। अतः कल्पित मत की यह एक कल्पना ही है और यही कारण है कि खरतरे जहां तहां विद्वद् समाज में हँसी के पात्र बन रहे हैं।

जिनेश्वरसूरि का पाटण जाना और अपने लिये बने हुए मकान में चातुर्मास करना जिसको खर-तर वसतिमार्ग मत चलाना मानते हैं यह कथन तो प्राचीन हैं पर राजसभा में जाकर शास्त्रार्थ करना यह कल्पना सबसे पहले विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में जिनपतिसूरि ने ही की थी, इनके पूर्व किसी भी आचार्यों ने यह नहीं लिखा था कि जिनेश्वरसूरि का राजसभा में शास्त्रार्थ हुआ था, फिर भी उस समय जिनपतिसूरि को यह नहीं सूझा कि वे शास्त्रार्थ के साथ खर-तर बिरुद की भी कल्पना कर पाते, अतः उस समय की भूल ही आज खर-तरों के कल्पित मार्ग में रोड़ा अटका रही है पर अब क्या होता है? कहा है कि 'बूंद की गई हुई होद से नहीं आती है।'

---

१. **वर्षेऽब्धिपक्षाभ्रशशिप्रमाणे लेभेऽपि यैः खरतरो बिरुदयुग्मं।**

''खरतर पट्टावली, पृष्ठ ३''

दससय चउवीसेहिं नगर पाटण अणहिल्लपुरि। हुओ बाद सुविहित चइवासीसु बहुपरि॥

''खरतर पट्टावली, पृष्ठ ४४''

इस विषय में यहां अधिक लिखना यों ठीक नहीं समझा है कि इस विषय के बहुत से प्रमाण खरतरगच्छोत्पत्ति भाग पहला, दूसरा नामक किताबों में मुद्रित करवा दिये हैं, वह भी खास तौर पर खरतरों के लिखे हुए पट्टावल्यादि ग्रंथों के प्रमाण हैं, उनसे यह साबित कर दिया है कि सं. १०८० में न तो जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे क्योंकि सं. १०८० में वे जावलीपुर में ठहर कर श्रीमान् हरिभद्रसूरि के अष्टक ग्रंथ पर टीका रच रहे थे, ऐसा खुद जिनेश्वरसूरि ने लिखा है और न राजसभा में शास्त्रार्थ ही हुआ और न राजा ने खरतर बिरुद ही दिया था। खरतरों ने खरतर और कंवला नाम पर से यह कल्पना कर डाली है।

''लो यह हुई जिनेश्वरसूरि की बातें अब आगे कुछ बातें कहो''

अभयदेवसूरि की बातें।

श्रीअभयदेवसूरि नाम के अनेक आचार्य हो गये हैं। पर यहां तो नौ अंग वृत्तिकार अभयदेवसूरि की ही बात है। वे अभयदेवसूरि आचार्य महाप्रभाविक हुए हैं और प्रभावकचरित्र में अन्यान्य प्रभाविक आचार्यों के साथ अभयदेवसूरि को भी प्रभाविकाचार्य समझ कर इनका चरित्र भी प्रभाविकचरित्र में लिखा गया है। पर यह एक दुःख की बात है कि कई खरतर लोग इन महाप्रभाविक आचार्य अभयदेवसूरि को झूठ मूठ ही खरतर बनाने का मिथ्या प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी वे किसी प्रमाण से खरतर बन नहीं सकते हैं। कारण :-

१. अभयदेवसूरि ने नौ अंग की टीका के अलावा भी कई ग्रन्थों का निर्माण किया उनमें किसी भी स्थान पर यह नहीं लिखा कि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला या हम खरतर हैं। यदि शास्त्रार्थ की विजय में खरतर बिरुद मिलता तो अभयदेवसूरि उस खरतर बिरुद को छिपा कर कभी नहीं रखते। परन्तु उन महापुरुष ने अपने को ही क्यों पर उद्योतनसूरि, वर्धमानसूरि और जिनेश्वरसूरि को भी चन्द्रकुल के लिखे हैं। अतः अभयदेवसूरि खरतर नहीं थे पर चन्द्रकुल के थे।

२. अभयदेवसूरि ने हरिभद्रसूरि के पंचासक ग्रन्थ पर टीका रची है, जिसमें भगवान महावीर के ५ कल्याणक स्पष्टतया लिखे हैं तब खरतर छः कल्याणक मानते हैं। अतः अभयदेवसूरि खरतर नहीं थे।

३. अभयदेवसूरि ने जैसे पुरुषों को जिनपूजा करना कल्याण का कारण माना है वैसे ही स्त्रियों को जिनपूजा करना कल्याण का कारण बतलाया है। तब खरतर स्त्रियों को जिनपूजा करना निषेध करते हैं। अतः अभयदेवसूरि खरतर नहीं थे।[१]

४. अभयदेवसूरि के पट्टधर वर्धमानसूरि हुए उन्होंने ऋषभ चरित्र में स्पष्ट

---

१. **देखो खरतर गच्छोत्पत्ति भाग पहला।**

लिखा है कि अभयदेवसूरि एवं हम चन्द्रकुल में हैं।[१]

५. वर्धमानसूरि के पट्टधर पद्मप्रभसूरि हुये उन्होंने मुनिसुव्रत चरित्र लिखा है। उसमें अभयदेवसूरि को खरतर नहीं पर चन्द्र कुल के ही बतलाया है।[२]

६. अभयदेवसूरि की सन्तान में एक धर्मघोषसूरि हुये। उन्होंने आबू के मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई, जिसके शिलालेख में भी अपने को अभयदेवसूरि की सन्तान[३] लिखा है पर खरतर की गंध भी नहीं है। अतः इससे पाया जाता है कि अभयदेवसूरि तो क्या पर उनके बाद आपकी सन्तान में भी कोई खरतर पैदा नहीं हुआ था अर्थात् अभयदेवसूरि की परम्परा शुद्ध चन्द्रकुल में है और खरतरों के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है अर्थात् वे खरतरों से अलग है कारण अभयदेवसूरि की परम्परा तो शुद्ध चान्द्रकुल की परम्परा है और खरतरों की परम्परा कुर्च्चपुरागच्छ की परम्परा है क्योंकि खरतर परम्परा चलाने वाला मूलपुरुष जिनवल्लभ था और वह था कुर्च्चपुरागच्छ का उनकी परम्परा ही खरतर कहलाती है।

७. अभयदेवसूरि अपनी मौजूदगी में अपने पट्ट पर वर्धमानसूरि को स्थापित[४] कर गये थे और उन वर्धमानसूरि की परम्परा अभयदेवसूरि के नाम से चली आई है। अतः अभयदेवसूरि के साथ जिनवल्लभ एवं खरतरों का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

८. अभयदेवसूरि का स्वर्गवास वि. सं. ११३५ में हुआ, तब जिनवल्लभ ने सं. ११६४ में उत्सूत्र भाषण कर वीर के ६ कल्याणक की प्ररुपणा की, जिसका सुविहित और चैत्यवासियों ने खूब विरोध करके जिनवल्लभ को संघ बाहर[५] कर दिया था। इतना होने पर भी जिनवल्लभ वि. सं. ११६७ में आचार्य अभयदेवसूरि का पट्टधर बन गया। क्या ऐसा उत्सूत्र प्ररुपक जिनवल्लभ अभयदेवसूरि का पट्टधर बन सकता है? कभी नहीं.

९. श्रीयुत अगरचंदजी भंवरलालजी नाहटा बीकानेर वालों ने 'युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि' नाम की किताब लिखी है जिसमें आपने गच्छ राग से रंजित हो अभयदेवसूरि को खरतर साबित करने के लिये विक्रम की सत्रहवीं शताब्दी के कई गच्छों के आचार्यों के हस्ताक्षर मुद्रित करवाये हैं। पर उन हस्ताक्षरों के साथ

---

१. देखो खरतर गच्छोत्पत्ति भाग दूसरा।
२. देखो खरतर गच्छोत्पत्ति भाग दूसरा।
३. देखो खरतर गच्छोत्पत्ति भाग दूसरा।
४. देखो गणधर सार्द्धशतक नामक ग्रन्थ।
५. असंविग्नसमुदायेन संविग्नसमुदायः संघ बहिष्कृतः।
प्रवचन परिक्षा, पृष्ठ २४२

यह नहीं बतलाया गया कि उन हस्ताक्षर करने वालों ने किस प्रमाण से अभयदेवसूरि को खरतर बतलाया है?

शायद उस समय जिनचन्द्रसूरि पाटण के संघ में क्लेश करता होगा और सरल भाव से उन्हीं आचार्यों ने कह दिया होगा कि अभयदेवसूरि खरतरों की गुरु परम्परा में हुये क्योंकि खरतरों ने अपनी कल्पित पट्टावली में अभयदेवसूरि का नाम लिखा है पर इससे अभयदेवसूरि खरतर नहीं हो सकते हैं। यदि केवल खरतर गुरु परम्परा के कारण ही अभयदेवसूरि को खरतर होना समझते हों तो फिर महावीर को ही खरतर क्यों न कह दिया जाय। कारण खरतर अपनी गुरु परम्परा तो आखिर महावीर से ही मिलाते हैं और इसी प्रकार लोंका, कडुआ, विजा, ढुँढिया और तेरहपन्थी भी अपनी परम्परा महावीर से मिलाने के कारण वे भी महावीर को अपने मत के बतला सकते हैं। क्या खरतर इसको भी स्वीकार कर लेंगे?

भला थोड़ी देरके लिये मान लो कि किसी महापुरुष की संतान में कोई उत्सूत्र प्ररुपक निकल भी जाय तो क्या उत्सूत्र प्ररुपक का कलंक उनके पूर्वजों पर मंढ़ा जा सकता है? जैसे तपागच्छ की संतान में एक लोंकाशाह नामक गृहस्थ ने उत्सूत्र प्ररुपणा कर श्रावक को मूर्तिपूजा करना छुड़ा दिया फिर भी लोंकाशाह अपने तपागच्छ के धुरन्धर आचार्यों का नाम ले लें कि हम तपागच्छाचार्यों की परम्परा में हैं तो क्या उनके कहने से वे तपागच्छ के आचार्य लोंका हो सकते हैं एवं उन पर मूर्तिपूजा निषेध का कलंक लग सकता है? कदापि नहीं।

इसी प्रकार खरतर भी अपने उत्सूत्र प्ररुपणा का एवं खरतरत्व का कलंक अभयदेवसूरि पर लगाना चाहें तो क्या उन महापुरुष पर खरतरत्व का कलंक लग सकता है? हर्गिज नहीं। खरतरत्व तो खरतरों के ही नसीब में लिखा हुआ है, न कि अभयदेवसूरि जैसे प्रभाविक सूर की तकदीर में।

जिनवल्लभसूरि के बाद इनके मत की दो शाखाए हो गई। एक जिनदत्त की शाखा जिसका नाम खरतर और दूसरी जिनशेखर की शाखा जिसका नाम रुद्रपाली। इस रुद्रपाली शाखा में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में आचार्य जयानन्दसूरि हुये हैं। उन्होंने 'आचारदिनकर ग्रंथ की वृत्ति' बनाई है, जिसमें जिनेश्वर, जिनचन्द्र, अभयदेव और जिनवल्लभ को चन्द्रकुल के लिखे[१] हैं। यदि जिनेश्वरसूरि को खरतर बिरुद मिला होता या अभयदेवसूरि खरतर होते तो जयानन्दसूरि उनको खरतर लिखना कभी नहीं भूलते। कारण, पन्द्रहवीं शताब्दी में तो खरतर शब्द खूब

---

१. ''**श्रीमज्जिनेश्वरः सूरिर्जिनेश्वरमतं ततः ।**
शरद्रकाशशिस्पष्टः समुद्रसदृश व्यधात् ॥ १२ ॥

ही प्रचलित हो गया था। इस हालत में भी रुद्रपाली शाखा वालों ने खरतर शब्द का प्रयोग नहीं किया। इसका कारण शायद यह हो सकता है कि खरतर शब्द जिनदत्तसूरि से उत्पन्न हुआ और बाद में भी जिनदत्तसूरि की शाखा ने ही खरतर शब्द को अपनाया है। तब रुद्रपाली शाखा वाले खरतर नाम लेने में भी महापाप समझते होंगे। कारण, ये दोनों शाखायें आपस के द्वेष के कारण अलग हुई थीं। अतः खरतर शब्द की उत्पत्ति जिनेश्वरसूरि से नहीं पर जिनदत्त से हुई है।

यदि जिनेश्वरसूरि एवं अभयदेवसूरि खरतर होते तो जिनदत्त और जिनशेखर के आपस में द्वेष होते हुये भी खरतर शब्द को समान मान देते, जैसे तपागच्छ में विजय और सागर शाखा अलग होने पर भी तपागच्छ के लिये दोनों शाखाओं को एकसा मान है। अतः न तो जिनेश्वरसूरि खरतर थे और न अभयदेवसूरि ही खर-तर थे। पर खरतर शब्द की उत्पत्ति हुई है जिनदत्तसूरि की खर प्रकृति से। जिसको जिनदत्तसूरि अपना अपमान समझते थे। पर दिन निकलने से जिनकुशलसूरि के समय से खरतर शब्द गच्छ के साथ चिपक गया है। जैसे लोहे के साथ कीटा चिपक जाता है।

खैर यह तो हुई अभयदेवसूरि की बात, अब आगे कुछ और बात कहों।

जिनवल्लभसूरि की बातें

जिनवल्लभसूरि के लिये खरतर लोग जानते तो हैं कि कुर्च्चपुरागच्छ के जिनेश्वरसूरि ने इनको मोल खरीद कर शिष्य बनाया, जिस गुरु ने वल्लभ को लिखा पढ़ा कर तैयार किया उनसे ही क्रोध क्लेश कर वहां से निकल गया और

नवांगवृत्तिकृत् पदेऽभयदेवप्रभुर्गुरौः ।
तस्य स्तम्भनकाधीश भाविश्चक्रे समं गुणैः ॥ १३ ॥
श्राद्धप्रतिबोधप्रवणस्तत् पदे जिनवल्लभः ।
सूरिर्वल्लभ तां भेजे त्रिदशानां नृणामपि ॥ १४ ॥
ततः श्रीरूद्रपल्लियगच्छसंज्ञा लसद्यशाः ।
नृपशेखरतां भेजे सूरीन्द्रो जिनशेखर ॥ २५ ॥

''रूद्रपाली जयानन्दसूरि कृत आचारदिनकर टीका वि. १४५८''

२. **कुर्च्चपुरीयगच्छवासी चैत्यनिवासी जिनेश्वर इति नाम्ना सूरिरासीत् तेन सूरिणां द्रविणदानेन पञ्चशती द्रम्म द्रव्यव्यये जिनवल्लभनामा श्रावकपुत्र शिष्य कृतः ।**

प्रवचन परीक्षा, पृष्ठ २३१

यही बात खरतरों के गणधर सार्द्धशतक ग्रंथ में लिखी है।
''द्रम्मशतपंचकं तस्य हस्ते प्रक्षिप्य क्षिप्तं दिदीक्षे''
अर्थात् वल्लभ की माता को पांचसौ द्रम्म (उस समय का चलनी सिक्का) देकर जिनवल्लभ को मूल्य खरीद कर दीक्षा दी।

गणधर सार्द्धशतक वृत्ति

अभयदेवसूरि के पट्टधर वर्धमानसूरि मौजूद होने पर भी अभयदेवसूरि के स्वर्गवास के बाद ३२ वर्षों से आचार्य बन गया और जो भगवान महावीर के गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक का जैन समाज में भयंकर मतभेद खड़ा हुआ यह उन जिनवल्लभ की उत्सूत्र प्ररुपणा का ही फल है। पर करे क्या ? बात पकड़ ली। जहां काम पड़ता है वहाँ खरतरों को उसका पक्ष लेना ही पड़ता है। जैसे गोसाला के भक्त समझ गये थे कि सच्चे तीर्थंकर तो भगवान् महावीर हैं। गोसाला ने तो एक झूठा बंड उठाया था फिर भी काम पड़ने पर वे गोसाला के पक्षकार बन जाते। यह तो दूर समय की बात है पर इस समय कई ग्रामों में होली का राव बनाया जाता है। सब लोग जानते हैं कि यह एक बिना इज्जत का आदमी है पर जब काम पड़ता है तो उस होली के बादशाह के लिये शिर की भी बाजी लगा देते हैं। यही हाल खर-तरों का हुआ है।

खास जिनदत्तसूरि का बनाया हुआ 'गणधरसार्द्धशतक' ग्रन्थ है, उस पर जिनपतिसूरि के शिष्य सुमतिसाधुने बृहद्‌वृत्ति रची है। चारित्रसिंह[१] गणि ने प्रकरण रचा है, उसमें लिखा है कि जिनवल्लभ गणि ने चित्तौड़ के किल्ले में रहकर छट्ठा गर्भापहार कल्याणक की प्ररुपणा की थी।

---

१. **तत्र कृत चातुर्मासिक कल्पानां श्रीजिनवल्लभवाचनाचार्याणामाश्विनमासस्य कृष्णपक्षत्रयोदश्यो श्रीमहावीरदेवगर्भापहारकल्याणकं समागतं। ततः श्राद्धानां पुरो भणितं जिनवल्लभगणिना भोः श्रावका ! अद्य श्रीमहावीरस्य षष्ठं गर्भापहारकल्याणकं ''पंच हत्थुत्तरे होत्था साइणा परिनिव्वुडे'' इति प्रकटाक्षरैरेव सिद्धान्ते प्रतिपादनादन्यच्च तथाविधं किमपि विधिचैत्यं नास्ति, ततोऽत्रैव चैत्यवासिचैत्ये गत्वा यदि देवा वंद्यंते तदा शोभनं भवति, गुरुमुखकमलविनिर्गतवचनाराधकैः श्रावकैरुक्तं भगवन् यद्युष्माकं सम्मतं तत्क्रियते, ततः सर्वे पौषधिकाः श्रावका सुनिर्मलशरीरा निर्मलवस्त्रा गृहीतनिर्मलपूजोपकरणा गुरुणा सह देवगृहे गंतुं प्रवृत्ताः। ततो देवगृहस्थित आर्यिकया, गुरुश्राद्धसमुदायेनागच्छतो गुरुन्दृष्टवाः पृष्टं को विशेषोऽद्य ? केनापि कथितं। वीरगर्भापहारषष्ठकल्याणककरणार्थमेते समागच्छंति, तथा चिंतितं पूर्वं केनापि न कृतमेतंदेतेहेऽधुना करिष्यंतीति न युक्तं। पश्चात् संयती। देवगृहद्वारे पतित्वा स्थितः द्वार प्राप्तान् प्रभू नवलोक्योक्तमेतया, दुष्टचित्तया मया मृतया मृतया यदि प्रविशत तादृग प्रीतिकं ज्ञात्वा निर्वर्त्य। स्वस्थानं गताः पूज्याः। श्राद्धैरुक्तं भगवन्नास्माकं बृहत्तराणी सदनानि संति, तत एकस्य गृहोपरि चतुर्विंशति पट्टकं धृत्वा देव वंदनादि सर्वं धर्मं प्रयोजनं क्रियते।**

गण. ता. श., पृष्ठ २०

इसमें 'समागतं' शब्द बतला रहा है कि छट्ठे कल्याणक की बात जिनवल्लभ ने ही चलाई है, प्रकटाक्षरैरेव इस शब्द से भी यह सिद्ध होता है कि छट्ठा कल्याणक रुप अक्षर जिनवल्लभ के पूर्व किसी आचार्य ने नहीं देखा था, आगे चलकर ''पूर्व केनाऽपि न कृतमेतदेतेऽधुना करिष्यन्तीति न युक्तं'' इस शब्द से पाया जाता है कि उस समय भी इस उत्सूत्र का जैनोने सख्त विरोध किया था। अतः इन खरतरों के ग्रन्थ से ही साबित होता है कि वीर के छट्ठा कल्याणक की सबसे पहले जिनवल्लभ ने ही उत्सूत्र प्ररुपणा की थी।

पर हरिभद्रसूरिने पंचासक[१] में तथा अभयदेवसूरि ने उस पर टीका लिखते हुये महावीर के पांच कल्याणक की पांच तिथियां अलग अलग बतलाई[२] हैं। उन अभयदेवसूरि के वचनों को झूठे बतलाने वाले जिनवल्लभ को उनके पट्टधर समझना सिवाय खरतरों के कौन समझे ? क्यों कि आखिर तो खरतर खरतर ही हैं न ?

खैर खरा खोटा एक मत तो होना चाहिये, पर :-

१. कई लोग जिनवल्लभ को चैत्यवासी जिनचन्द्रसूरि का शिष्य।

२. कई लोग कुर्च्चपुरागच्छीय जिनेश्वरसूरि चैत्यवासी का शिष्य।

३. कई कहते हैं कि जिनवल्लभसूरि अभयदेवसूरि के पास पढ़ने को आया

---

१. तेसुअ दिणेसु धण्णा, देविंदाई करिंति भत्तिणया ।
जिणजत्तादि विहाणा, कल्लाणं अप्पणो चेव ॥ ३ ॥
इअ ते दिणा पसत्था, ता सेसेहिंपि तेसु कायव्वं ।
जिणजत्तादि सहरिसंते य, इमे वद्धमाणस्स ॥ ४ ॥
आषाढ़सुद्धिछट्ठी, चित्ते तह सुद्धि तेरसी चेव ।
मग्गसिर कन्हा दसमी, वइसाहि सुद्ध दसमी य ॥ ५ ॥
कतिय कन्हा चरिमा, गब्भाइ दिणा जहक्कमं एते ।
हत्थुत्तरजोएणं चउरो, तह साइणा चरमो ॥ ६ ॥
अहिगय तित्थविहिया, भगवति निदंसिआ इमे तस्स ।
सेसाणवि एवं चिअ, निअ निअ तित्थेसु विण्णेआ ॥ ७ ॥

श्री हरिभद्रसूरि कृत यात्रा पंचाशक ग्रन्थ (प्र. प., पृ. ३२८)

२. ''वर्धमानस्य-महावीरजिनस्य भवन्तीति गाथार्थ आषाढ़ गाहा-आषाढ़ शुद्ध षष्ठी-आषाढ़ मास शुक्ल पक्षे षष्ठीतियिरित्येकं दिनं १ एवं चैत्रमासे तथेति समुच्चये शुद्धत्रयोदस्येवेति द्वितीयं २ चैवेत्यवधारणे, तथा मार्गशीर्ष कृष्णदशमीति तृतीय ३ वैशाख शुक्ल दशमीति चतुर्थ ४ च शब्द समुच्चयार्थ कार्तिक कृष्णे चरमा पंचदशीति पंचमं ५ एतानि किमित्यह गर्भादिदिनानि (१) गर्भ (२) जन्म (३) निष्क्रमण (४) ज्ञान (५) निर्वाण दिवसाः यथाक्रमं क्रमेणैव ।

अभयदेवसूरि कृत पंचाशक टीका, प्र. प., पृ. ३३०

श्रीजिनवल्लभसूरिः चैत्यवासिसुवर्णकच्चोलकवर्षि जिनचंद्रसूरि शिष्यो ।

ख. प., पृष्ठ १०

जिनवल्लभसूरिः च प्रथमं कूर्च्चपुरगच्छीयचैत्यवासिजिनेश्वरसूरिशिष्योऽभूत् ।

ख. प., पृष्ठ २४

यतो देवग्रहनिवासिशिष्य इति हेतोर्गच्छस्य सम्मतं न भविष्यतीति ततो गच्छधारको वर्धमानाचार्यः स्वपदे निवेशितः जिनवल्लभगणेश्च क्रियोपसंपदं दत्तवन्त इत्यतः प्रभृत्यस्मदाज्ञया सर्वत्र प्रवर्तितव्यमिति एकान्ते पुनः प्रसन्नचन्द्राचार्यो भणितः मदीये पदे भव्यलग्ने जिनवल्लभगणिः स्थापनीय इत्येवं नवांगीवृत्तिं वर्तिनीमिव मुक्तिनगरस्य मध्ये जनेभ्यो प्रतिपाद्य सिद्धान्तोक्तविधिना समाधानेन देवलोकं गतः श्रीअभयदेवसूरयः ।

प्रश्नचन्द्राचार्यस्यापि सुगुरुपदनिवेशन प्रस्तावो न जातः ततस्ते अपि स्वायुः परिसमाप्तिसमये श्रीदेवभद्राचार्याणां विज्ञप्तयस्सुगुरुपदेशो युष्माभिरेव सफलीकार्योऽ-वश्यमेव, मया कर्तुं न शक्तिः ।

ग. सा. श. का. अ. प्रवचन परीक्षा, पृष्ठ २३६

था पर अभयदेवसूरि ने न तो उनको दीक्षा ही दी थी न अपना शिष्य ही बनाया।

४. जब कई कहते हैं कि अभयदेवसूरि अपनी मौजूदगी में अपने पट्टधर वर्धमानसूरि को आचार्य बना गये थे अतः अभयदेवसूरि के साथ जिनवल्लभ का कोई भी सम्बन्ध नहीं था।

५. कई कहते हैं कि जिनवल्लभ आचार्य होने के बाद केवल ६ मास ही जीवित रहे। अर्थात् वृद्धावस्था में सूरि बन मनके मनोरथ सिद्ध कर लिये होंगे।

कई खरतर यह भी कहते हैं कि अभयदेवसूरि अपनी अंतिम अवस्था में प्रश्नचंदसूरि को कह गये थे कि मेरे बाद वल्लभ को सूरि पद देना–

इससे खरतरों का यह तो इरादा नहीं है कि अभयदेवसूरि पर मायाचारी एवं समुदाय में फूट डालने का आक्षेप डाला जाय? क्योंकि अभयदेवसूरि ने अपनी मौजूदगी में अपने पट्टधर वर्धमानसूरि को स्थापन कर दिया था। फिर उन्होंने प्रश्नचंद्रसूरि को ऐसा क्यों कहा होगा कि मेरे बाद वल्लभ को आचार्य बना देना? यदि कहा भी हो तो प्रश्नचन्द्रसूरि ने क्या वल्लभ को योग्य नहीं समझा था कि वे अपनी जिन्दगी में वल्लभ को सूरि नहीं बना गये, यदि यह कहा जाय कि प्रश्नचन्द्र का भी अल्पायुष्य था और वे देवभद्र आचार्य को कह गये थे फिर देवभद्र ने ३२ वर्ष क्यों निकाल दिये? क्या ३२ वर्ष में वल्लभ को आचार्यपद देने योग्य कोई शुभ मुहूर्त ही नहीं मिला था और अभयदेवसूरि के स्वर्गवास के बाद ३२ वर्ष तक जिनवल्लभ अकेला फिरता रहा और वि. सं. ११६४ आश्विन कृष्णा त्रयोदशी के दिन चित्तौड़ में महावीर का गर्भापहार नामक छट्ठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा करने पर सकल श्रीसंघ से जिनवल्लभ का बहिष्कार करने के बाद जिनवल्लभ को देवभद्र ने सूरि बनाया इसका क्या कारण था?

गणधरसार्द्धशतक में लिखा है कि जिनवल्लभ के चैत्यवासी होने से उनको पदवी देने में गच्छ वाले सम्मत नहीं हुये यही बात प्रवचन परीक्षा[१] में कही है कि जिनवल्लभ ने न तो किसी सुविहित के पास दीक्षा ली न योगोद्वाहन किया। यही कारण है कि जिनवल्लभ को पदवी देने में संघ वालों ने विरोध किया।

---

१. **जिनवल्लभस्तावत् क्रीतकृतोऽपि चैत्यवास्यपि प्रव्रज्योपस्थानोपधानशून्यः, न ही जिनवल्लभेन कस्यापि संविग्नस्य पार्श्वे प्रव्रज्या गृहिता, तदभावाच्च न केनाप्युस्थापितः उपस्थापनाऽभावान्नोमपधानमपि आवश्यकादि श्रुताराधनतपोविशेषयोगानुष्ठानाद्यपि न जातम्, एतैः शून्यो रहितः सिद्धान्तपारगामी संविग्न श्रीअभयदेवसूरिपाश्र्वे सम्पन्नः तथाभूतोऽपि रहकर्णजाप परम्परया सूरिरपिसोऽपि श्रीअभयदेवसूरिपट्टे श्रीवर्धमानाचार्यै विद्यमानेऽपि तदीय समय येनानभ्युपगतोऽपि, सङ्घेन बहिष्कृतोपि एकाकी भ्रमन्नपि श्रीअभयदेवसूरि पट्टधर इत्यादि ॥**

प्र. प., पृष्ठ २६१

देवभद्र भी कोई कदागृह एवं पक्षपात का बादशाह ही होगा कि उत्सूत्र प्ररुपक वल्लभ को आचार्य पद देकर अभयदेवसूरि का पट्टधर बनाया। भला कहां तो उन महाप्रभाविक अभयदेवसूरि की योग्यता कि जिन्होंने चैत्यवासियों के नायक श्रीद्रौणाचार्य का सम्मान कर अपनी टीका का संशोधन करवाया और कहां जिनवल्लभ की उच्छंखलता कि उन चैत्यवासिओं के बनाये जिनमन्दिर और त्रिलोक्य पूज्य तीर्थंकरों की प्रतिमा को मांस शकल की उपमा दे डाली, अतः इसको गज के स्थान पर खर को बैठाना कहा जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं कही जा सकती है।

अभयदेवसूरि के साथ जिनवल्लभ का कोई सम्बन्ध नहीं था, क्योंकि अभयदेवसूरि थे चन्द्रकुल के आचार्य तब वल्लभ था कुर्च्चपुरा गच्छ का साधु और उसने अपना 'विधिमार्ग' नाम का अलग मत स्थापन किया था जिसमें अभयदेवसूरि की मान्यता से कई बातें न्यूनाधिक करके उत्सूत्र की प्ररुपणा की थी, जिससे सकल श्रीसंघ ने उसको संघ बाहर कर दिया था। अतः अभयदेवसूरि की परम्परा बिलकुल ही अलग थी देखिये-

अभयदेवसूरि
|
वर्धमानसूरि
|
पद्मप्रभसूरि
⋮
धर्मघोषसूरि

कुर्च्चपुरागच्छीय साधु जिनवल्लभ ने अपना विधिमार्ग नाम का मत निकाला, जिसकी दो शाखा उसी समय हो गई थीं।

जिनवल्लभ
- जिनदत्तसूरि (खरतर-शाखा)
- जिनशेखरसूरि (रुद्रपाली-शाखा)

इन सब बातों से यह निश्चय हो सकता है कि अभयदेवसूरि के साथ जिनवल्लभ का कोई भी सम्बन्ध नहीं था। जिनवल्लभ के न तो थे कोई गुरु और न था कोई शिष्य। यह एक समुत्सम मत स्थापक जैनसमाज में उत्सूत्र की प्ररुपणा कर राग-द्वेष-क्लेष-कदागृह फैलाने वाला जैनसमाज का कट्टर दुश्मन पैदा हुआ था, जिसके बोये हुए छट्ठा गर्भापहार कल्याणक रुप क्लेश के बीज के फल आज भी जैनसमाज अनुभव कर रहा है।

जैसे ढूंढिये लोंकाशाह को और तेरहपन्थी भीखमस्वामी को उद्धारक मानते हैं वैसे ही खरतर जिनवल्लभ को मानते हैं। इन तीनों में उत्सूत्र प्ररुपणा की अपेक्षा

विशेष अन्तर नहीं हैं, पर एक वेली के फल कहे जा सकते हैं।

लो यह हुई जिनवल्लभ की बातें अब आगे चलकर एक दो बातें और भी सुनाइये।

जिनदत्तसूरि की बातें।

आप चन्द्रकुल के धर्मदेवोपाध्याय के शिष्य एक सोमचन्द्र नाम के साधु थे। आपकी प्रकृति शुरु से ही खरतर थी। आप महत्वाकांक्षी और पदवी पिपासु भी थे। आपको दीक्षा लिये २८ वर्ष हो गुजरे थे। पर किसीने एक छोटी बड़ी पदवी भी सोमचन्द्र को नहीं दी; कारण उस समय पदवी प्रदान करने में सबसे पहले योग्यता देखी जाती थी। अतः मुनि सोमचन्द्र को २८ वर्षों में न पण्डितपद, न वाचकपद न उपाध्यायपद न गणिपद मिला, इससे पाठक अनुमान लगा सकते हैं कि सोमचन्द्र की योग्यता कैसी थी ? फिर भी आपको इसकी पक्की लगन भी थी तथा आप थे भी इसी फिराक में कि समय पाकर कभी मैं भी पदवीधर बनूं।

इधर जिनवल्लभसूरि का देहान्त हो चुका था। इनको पदवी देने वाला था देवभद्राचार्य। जिनवल्लभ के देहान्त से आपको बड़ा भारी दुःख हुआ, कारण जैन संघ के बाहर किये हुए जिनवल्लभ को आपने पदवी देकर जो यश (!) प्राप्त किया था उस बात को पूरा ६ मास भी नहीं हुआ कि आपका लगाया हुआ वृक्ष शिशु वय में ही उखड़ पड़ा। अतः जिनवल्लभ के पट्टधर बनाने की आपको पूरी लगन थी।

जिनवल्लभ के पास एक जिनशेखर नाम का साधु रहता था। उसके और देवभद्राचार्य के पहले से ही वैमनस्य हो चुका था। उस लड़ाई के अन्दर देवभद्र ने जिनशेखर को गला घोट कर निकाल दिया था। उसको तो देवभद्र आचार्य पद दे ही कैसे सकता था ? और दूसरे के लिये ऐसे काले कर्म किसके थे कि वह उत्सूत्र प्ररुपक जिनवल्लभ का पट्टधर बन इस लोक और परलोक में कुयश का तिलक अपने कपाल पर लगावें[१]। खैर, इस कोशिश में देवभद्र ने दो वर्ष निकाल दिये पर उनके हाथ ऐसा कोई व्यक्ति नहीं लगा कि जिसको जिनवल्लभ का पट्टधर बनाया जा सके। फिर भी देवभद्र ने अपने हाथों से एक उत्सूत्र वादी को सूरि बना कर समाज में फूट के बीज बोये थे। उसको फला फूला देखने की आकांक्षा

---

१. **अपरदिने जिनेश्वरेण साधुविषये किंचित् कलहादिकमयुक्तं कृतं ततो देवभद्राचार्येण गले गृहीत्वा निष्कासितः।**

प्र. प., पृ. २४८

अवश्य थी।

भाग्यवशात् जैसे को तैसा मिल ही जाता है। देवभद्र को सोमचन्द्र साधु मिल गया। जिसका जिनवल्लभ के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं था पर उनका सम्बन्ध था पदवी के साथ। बस, देवभद्र और सोमचन्द्र की आपस में वचन बन्दी हो गई अर्थात् जिनवल्लभ की सब बातें सोमचन्द्र को माननी ही नहीं पर उसका प्रचार करना होगा इत्यादि। सोमचन्द्र ने सब मंजूर कर लीं क्योंकि उनको तो पदवी लेकर सूरि बनना था। बस फिर तो था ही क्या? उसको चित्तौड़ ले जाकर वि. सं. ११६९ में जिनवल्लभ के पट्ट पर आचार्य बना कर उसका नाम जिनदत्तसूरि रख दिया। उस समय चित्तौड़ के अलावा जिनवल्लभ का कोई क्षेत्र ही नहीं था।

जिनदत्तसूरि के मन के मनोरथ सफल हो गये फिर भी आप इतने ही से संतुष्ट नहीं हुये। आपने अपने नाम को चिरस्थायी बनाने के लिये खुद के हाथों से खुद की मूर्तियें एवं पादुकायें स्थापन कराने की एक नई प्रथा चला दी। ठीक है पक्षपात के साम्राज्य में जितना न करे उतना ही थोड़ा है।

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में आंचलगच्छीय धर्मघोषसूरि हुए उनके बनाये शतपदी नामक ग्रन्थ में यह भी उल्लेख मिलता है कि जिनदत्तसूरि अपने उपाश्रय में एक ऐसी पेटी रखवाता था कि अपने भक्त लोगों को उपदेश देकर उस पेटी में कुछ द्रव्य डलवाता था और उस द्रव्य से अपनी मूर्तियें या चरण पादुकायें स्थापन करवाता था। इनके पूर्व इस प्रकार अपनी पादुकायें अपने हाथों से किसीने भी नहीं स्थापित कराई थीं। इससे उपरोक्त बात और भी परिपुष्ट हो जाती है कि जिनदत्तसूरि महत्वाकांक्षी था और वह आप अपने पुजाने का भरचक प्रयत्न भी करता था।

उसी शतपदी नामक ग्रन्थ में एक यह भी बात लिखी है कि जिनदत्तसूरि ने चक्रेश्वरी देवी की स्तुति बनाई, जिसमें लिखा है कि हे माता! विधिमार्ग के दुश्मनों का सिर काट कर विघ्न को दूर करो। इससे पाया जाता है कि उस समय जिनदत्त को खरतर शब्द प्रिय नहीं पर अरुचिकर था। इस लिये ही उसने विधिमार्ग की रक्षा के लिये देवी से प्रार्थना की थी, यही कारण है कि अन्य गच्छ वाले विधिमार्ग को उत्सूत्र मार्ग समझ कर जहां तहां तिरस्कार करते होंगे। तब ही तो जिनदत्तसूरि की भावना उन सबके सिर कटवाने की हुई होगी और अपनी कुछ भी न चली तब चक्रेश्वरी देवी की प्रार्थना की होगी।

यह तो आपकी योग्यता का दो शब्दों में संक्षिप्त परिचय करवाया है। अब आगे चल कर पढ़िये कि जिनदत्त ने क्या क्या अनर्थ किये हैं? मैं तो यहां तक

भी कहता हूँ कि ऐसे पुत्र को जन्म देने वाली माताओं ने ब्रह्मचर्यव्रत क्यों नहीं ले लिया था? कोई दवाई लेकर बांझ ही क्यों नहीं रह गई थीं कि शासन को इतना नुकसान तो नहीं होता। खैर भवितव्यता किसी की टाली नहीं टलती है।

जिनदत्त जिनवल्लभ से कम नहीं पर साहसिकता में दो कदम बढ़ के ही था। जिनवल्लभ का काम तो शुरुआत का काम था अतः उनके मत में पहले तो द्विविध संघ ही था। एक जिनवल्लभ साधु संघ। दूसरा उनको मानने वाले चित्तौड़ के चन्द गृहस्थ अर्थात् श्रावक-संघ। कारण, जिन स्त्रियों के पति वल्लभ के अनुयायी बन जाने पर भी वे औरतें अपने पथ से विचलित नहीं हुई थीं तो फिर साध्वी तो उनके उत्सूत्र मत में हो ही कैसे सकती? अतः जिनवल्लभ के दो ही संघ थे। बाद गृहस्थों के घरों में क्लेश कुसम्प डलवा कर बड़ी मुश्किल से वल्लभ ने तीन संघ बनाये। साधु, श्रावक और श्राविका।

जिनदत्त ने इस नूतन मत की वृद्धि के लिए एक मिथ्यात्वी चामुण्डा देवी को बलि बाकुल देकर उसकी आराधना की। जिसकी आराधना पूर्व जिनवल्लभ ने भी की थी। पर देवी देवता भी तो इतने भोले नहीं होते हैं कि ऐसे शासन भंजकों का साथ दें अर्थात् न सफलता मिली थी जिनवल्लभ को और न मिली जिनदत्त को। फिर भी जिनदत्त भद्रिक लोगों को कहता था कि देवी चामुण्डा मेरे बस हो गई। अतः कई लोग जिनदत्त के मत को चामुण्डिक मत कहने लग गये। महोपाध्याय धर्मसागरजी के मतानुसार इस घटना का समय वि. सं. १२०१ का कहा जाता है। जिनदत्त ने जिनवल्लभ के त्रिविध संघ को बढ़ाकर चतुर्विध संघ बना दिया।

'पाखण्डे पूज्यते लोका:'। संसार में तत्त्वज्ञान को जानने वाले लोग बहुत थोड़े होते हैं। जिनदत्तसूरि के जीवन से यह भी पता मिलता है कि वह किसी को मंत्र किसी को तन्त्र और किसी को रोग निवारणार्थ औषधियां वगैरह बतलाया करता[१] था। अतः जिनवल्लभ की बजाय जिनदत्त के भक्तों की संख्या बढ़ गई हो तो यह असम्भव भी नहीं है क्योंकि जनता हमेशा भौतिक सुखों को चाहने वाली होती है।

वि. सं. १२०४ में जिनदत्तसूरि पाटण जाता है और एक दिन वह मन्दिर में गया। वहां पर कुछ रक्त के छींटे देखे। इस निमित्त कारण से उसके मिथ्यात्व

१. **देखो-खरतरों की महाजन वंश मुक्तावली, जिसके प्रमाण आगे के पृष्ठ में दिये जायेंगे।**

कर्म का प्रबल्य उदय हो आया और उसने यह मिथ्या प्ररुपणा कर डाली कि स्त्रियों को जिनप्रतिमा की पूजा करना नहीं कल्पता है। अतः कोई भी स्त्री जिनप्रतिमा की पूजा न करे इत्यादि।

उस समय का पाटण जैनों का एक केन्द्र था, केवल १८०० घर तो करोड़पतियों के ही थे। परमार्हत महाराज कुमारपाल वहां का राजा था। कलिकाल–सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य एवं राजगुरु कक्कसूरि जैसे जिन शासन के स्तम्भ आचार्य वहां विद्यमान थे। इस हालत में जिनदत्त की इस प्रकार उत्सूत्र प्ररुपणा को पट्टण का श्रीसंघ कैसे सहन कर सकता था? जब जिनदत्त की उत्सूत्र प्ररुपणा के समाचार उन शासन स्तंभ धुरन्धर आचार्यों के कानों तक पहुँचे तो उनको बड़ा ही दुःख हुआ। कारण, जिनवल्लभ की वीर गर्भापहार रुपी उत्सूत्र प्ररुपणा तो अभी शासन को कांटा खीला की भांति खटक ही रही थी फिर जिनदत्त ने इस प्रकार उत्सूत्र प्ररुपणा क्यों की है? जैनागमों में चेलना, सिवा, प्रभावती, मृगावती, जयन्ति, सुलसा और द्रौपदी वगैरह अनेक महिलाओं ने परमेश्वर की द्रव्य भाव से पूजा की जिसके उल्लेख आगमों में स्पष्ट मिलते हैं। अतः इसके लिये सभा करके जिनदत्तसूरि को समझाना चाहिये, यदि वह समझ जाये तो ठीक, नहीं तो जिनदत्त का संघ से बहिष्कार कर देना चाहिये। जैसे कि जिनवल्लभ का श्रीसंघ ने बहिष्कार कर दिया था, इत्यादि। इस बात की नगर में खूब गरमागरम चर्चा चल पड़ी।

जिनदत्तसूरि एक हठकदाग्रही व्यक्ति था। उसने आन्दोलन की बात सुनकर सोचा कि एक तरफ तो राजा कुमारपालादि सकल श्राद्ध संघ तथा दूसरी ओर हेमचन्द्रसूरि आदि श्रमण संघ है। यहां मेरी कुछ भी चलने की नहीं है अतः रात्रि में एक शीघ्रगामी ऊंट मंगवाकर उस पर सवार हो रात्रि में ही पलायन कर गया, जैसे पुलिस के भय से चोर पलायन कर जाते हैं। जिनदत्त पाटण से ऊंट पर सवारी कर थोड़े ही समय में जावलीपुर पहुँच गया। तब जाकर उसने थोड़ा निर्भयता का श्वास लिया। जैसे चोर पल्ली में जाकर निर्भयता का श्वास लेता है।

सुबह श्रीसंघ ने खबर मंगाई तो मालूम हुआ कि जिनदत्त तो रात्रि में ही पलायन कर गया है। अतः श्रीसंघ ने यह निश्चय किया कि जहां जिनदत्त गया हो वहां के श्रीसंघ को लिख दिया जाय कि यदि जिनदत्त आपके यहां स्त्री जिनपूजा निषेध की मिथ्या[१] प्ररुपणा करे तो आप उसको संघ बाहर कर दें। यहां का श्रीसंघ

१. **जिनपूजा निषेध करने वालों को शास्त्रकारों ने शासन घाती कहा है।**

आपके सम्मत है इत्यादि।

जब जिनदत्त जावलीपुर में पहुँचा तो वहां के लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिनदत्तसूरि को तो पाटण में देखा था। आज यहां कैसे आ गये? इस शंका के निवारणार्थ श्रीसंघ के अग्रेसरों ने जाकर जिनदत्त से पूछा तो उत्तर दिया कि मैं औष्ट्री विद्या से आया हूँ। पहले तो लोगों ने समझा कि औष्ट्री कोई विद्या होगी पर बाद में पाप का घडा फूट गया और लोगों को मालूम हो गया कि जिनदत्त ऊंट[१] पर सवार होकर आया है। उस समय तार डाक का साधन नहीं था कि एक प्रान्त के समाचार दूसरे प्रान्त में जल्दी ही पहुँच जाय।

जिनदत्तसूरि कई दिन तो चुपचाप रहा पर बाद तो आपने अपनी प्रकृति का परिचय देना शुरु किया अर्थात् स्त्रियों को जिनपूजा निषेध करना शुरु किया। पर जावलीपुर का श्रीसंघ इतना भोला नहीं था कि जिनदत्त की उत्सूत्र प्ररुपणा को मान कर अपना अहित करने को तैयार हो। जब संघ अग्रेसरों ने जिनदत्त से पूछा कि किसी शास्त्र में स्त्रियों को जिनपूजा करना निषेध किया है? उत्तर में जिनदत्त ने अपनी खर प्रकृति के परिचय के अलावा कुछ भी प्रमाण नहीं बतलाया। अतः लोग जिनदत्त की खर प्रकृति के कारण खरतर खरतर कहने लगे। बस, वहाँ के श्रीसंघ ने जिनदत्त को कहा अरे ये तो खरतर सो खरतर ही निकला। इस प्रकार कह कर संघ बाहर कर दिया। जिनदत्त के मत का नाम चामुंड तो पहले ही था। ऊंट पर सवार होने से लोगों ने इस मत का नाम औष्ट्रीक मत रख दिया और तीसरा खरतर नाम भी इस जिनदत्त के कपाल में ही लिखा हुआ था कि लोगों ने जिनदत्त के मत को खरतर मत कहना शुरु कर दिया। यह इनकी खरतर प्रकृति का ही द्योतक था। जिनदत्तसूरि जैसे चामुंड और औष्ट्रीक नाम से खीजता एवं क्रोध करता था वैसे ही खरतर नाम से भी सख्त नाराज होता था। कारण, यह नाम भी अपमान सूचक ही था। इस प्रकार इस मत के क्रमशः तीन नामों की सृष्टि पैदा हुई थी।

कई खरतर उस जिनदत्त का कलंक छिपाने के लिये यह कह देते हैं कि जिनदत्तसूरि ने ऋतुमती स्त्रियों के लिये जिनपूजा का निषेध किया था।

उत्तर–पहले यह समझना चाहिये कि जिनदत्तसूरि के पूर्व क्या जैन–धर्म में ऋतुमती स्त्रियां जिनपूजा करती थी और उनको किसी आचार्य ने निषेध नहीं किया

---

१. **उष्ट्र वाहनारूढः पतनाज्जावलीपुरं प्राप्तः।**

प्र. प. २६८

तथा जिनदत्त को ही निषेध करना पड़ा। जब कि जैनधर्म में ऋतुमती स्त्रियाँ अपने घर के काम तक भी नहीं करती हैं तो क्या वह जैन मंदिर में जाकर भगवान की पूजा कर सकती थी और वह भी पाटण जैसे नगर में जहाँ अनेक आचार्य और सैकड़ों साधु हमेशा रहते थे। और गृहस्थ स्त्रियाँ तो क्या पर ऋतुमति साध्वीयों तक के लिये भी मँदिर में दर्शन करने को जाना बड़ी भारी अशातना समझी जाती थी इस हालत में गृहस्थ स्त्रियाँ ऋतुअवस्था में मंदिर में कैसे जा सकती? जब ऋतु अवस्था में साध्वीयां एवं श्राविकाएँ भी मन्दिर में नहीं जाती हैं तो पूजा की तो बात ही कहाँ रही? खैर जिनदत्त ने इस बात का केवल जबानी जमा खर्च ही नहीं रखा था, पर अपने बनाये कुलक नामक ग्रंथ में लिख[१] भी दिया था कि स्त्रियां जिनप्रतिमा का स्पर्श तक भी नहीं कर सकती हैं।

जिनदत्तसूरि एवं खरतरों को शायद यह भ्रांति हो कि भाव जिन को स्त्रियां छू नहीं सकतीं इस लिये स्थापना जिनको भी नहीं छू सके। पर इन शासन के दुश्मनों को इतना तो सोचना था कि जैसे मूर्ति तीर्थंकरों का स्थापना निक्षप है वैसे पुस्तक में लिखा हुआ जिन नाम भी तो स्थापना निक्षेप है। फिर तो जिस पुस्तक में तीर्थंकरों एवं साधुओं का नाम है उस पुस्तक को भी स्त्रियों को नहीं छूना चाहिये और इसी प्रकार जिस पुस्तक में साध्वीयों एवं श्राविकाओं का नाम हो उस पुस्तक को पुरुषों को एवं साधुओं को भी स्पर्श नहीं करना चाहिये। वाह रे! खर और तर, जनता ने जो नाम दिया है वह यथार्थ ही दिया है।

इन अर्द्ध ढूंढको में इतनी भी अक्ल नहीं थी, खैर तीर्थंकर पुरुष होने से

---

१. **संभवइ अकालेऽविन्दु कुसुमं महिलाण तेण देवाणां।**
पूआई अहिगारो, न ओघओ सुत्त निद्दिट्ठो॥ १॥
न छिविंति तहा देहं ओसरणे, भावजिणवरिंदाणं।
तह तप्पडिमंपि सया पूअंति न सड्ढनारिओ॥ २॥

जिनदत्तसूरि कृत कुलक, जिस पर जिनकुशलसूरि ने विस्तार से टीका रची है।
प्र. पा., पृ. ३७१

अह अण्णया कयाई, रूहिरं दट्ठूण जिणहरे रूट्ठो।
इत्थीणं पच्छितं देइ, जिणपूअपडिसेहं॥ ३५॥
संघुत्ति भयपलाणो, पट्टणओ उट्टवाहणारूढ़ो।
पत्तो जावलीपुर, जणकहणे भणाइ विज्जाए॥ ३६॥

प्रवचन परीक्षा ग्रन्थ, पृष्ठ २६७

इन प्रमाणों से स्पष्ट पाया जाता है कि जिनदत्त ने स्त्री समाज को जिन पूजा निषेध करके शासन का आधा अंग काट डाला है, अतः जिनदत्त एवं खरतरों को अर्ध ढूंढक ही कहना चाहिये।

उनकी प्रतिमाओं को स्त्रियां छू नहीं सकती हैं। पर चौबीस तीर्थंकरों में एक मल्लिनाथ नामक तीर्थंकर तो स्त्री थे। उन भाव तीर्थंकर को स्त्रियां छू सकती थीं। अतः स्त्रियों के लिये मल्लिनाथ की मूर्ति पूजना रख देते तो बिचारी खरतरियां मल्लिनाथ की मूर्ति को पूजा कर अपना कल्याण कर सकती थी। परन्तु खरतरों की तो उस समय अक्ल ही मारी गई थीं। आवेश में उनको कुछ नहीं सूझा।

खरतर मत को मानने वाली कई श्राविकायें आज भी जिनपूजा नहीं करती हैं। हां, कई भद्रिक अन्य गच्छीयों के साथ तीर्थयात्रा करने को जाती हैं और वहां देखा देखी प्रभु पूजा कर भी लेती हैं। तो भी खरतर तो उनको सख्त उपालम्भ ही देते हैं। देखिये, जैसलमेरादि कई स्थानों के मन्दिर खरतरों के अधिकार में हैं। वहां आज भी स्त्रियों को जिनपूजा नहीं करने देते हैं। आचार्य विजयनेमिसूरि पालड़ी वालों के संघ में जैसलमेर पधारे थे। उस समय खरतरों ने स्त्रियों को पूजा करने की मनाई कर दी थी। पर जब सूरिजी ने उनको बहुत फटकारा तब जाकर उन माताओं को पूजा करने दी। इसी प्रकार बम्बईवाला सेठ देवकरण मूलजी की पत्नी जेसलमेर गई थी। उनको भी जिनपूजा करने से रोक दी पर वह बहन इतनी होशियार थी कि वहां के खरतरों को खूब ललकार कर उनके दांत खट्टे कर दिये और आखिर उसने प्रभु पूजा कर ही ली। जब फलोदी वाले श्रीमान् पांचूलालजी वैद्य मेहता की ओर से संघ जैसलमेर गया। उस संघ में आचार्य विजयवल्लभसूरि भी साथ थे। उस समय भी वहां के खरतरों ने स्त्रियों को प्रभुपूजा करने की मनाई कर दी थी। स्त्रियों ने वहां सत्याग्रह कर दिया। आखिर तीन बजे तक वे सब श्राविकायें भूखी प्यासी बैठी रहीं। सूरिजी और गुरुवर्य ने खरतरों को शास्त्रों के पाठ बतलाये और कहा कि जिन उत्सूत्र प्ररुपकों की भूल हो गई है तो उसको सुधारना चाहिये इत्यादि। तब जाकर उन माताओं ने पूजा कर अन्न जल लिया इत्यादि बहुत उदाहरण हैं। इससे कहा जा सकता है कि जिनदत्तसूरि ऋतुमती नहीं पर स्त्री जाति के लिये जिनपूजा निषेध कर एक वज्र पाप की गठरी सिर पर ले गये और पिछले लोग लकीर के फकीर बन इस महान पाप के भागी बन रहे हैं।

फिर भी जैनशासन की तकदीर ही अच्छी थी कि जिनदत्त ने जैसे स्त्री को आशातना करती देख एक स्त्री समाज को ही जिनपूजा का निषेध किया। यदि कहीं एक पुरुष को आशातना करता देख लेता तो सब पुरुषों को भी जिनपूजा का निषेध कर जनता को ३०० वर्ष पूर्व ही लोंका एवं ५०० वर्ष पूर्व ही ढूंढियों का दर्शन करवा देता। यही कारण है कि जिनदत्तसूरि को अर्ध ढूंढक कहा जा

सकता है। क्योंकि ढूंढ़ियों ने स्त्री और पुरुष दोनों को जिनपूजा का निषेध किया जो शासन के दो ही अंग थे। तब जिनदत्तसूरि ने एक स्त्री जाति को जिनपूजा का निषेध कर शासन का एक अंग काट डाला। फिर भी ढूंढियों की बजाय खरतरों ने शासन को अधिक नुकसान पहुँचाया। कारण, ढूंढिये तो शासन से बिलकुल अलग हो गये कि उन पर किसी का विश्वास नहीं रहा पर खरतर तो अर्द्ध दग्ध होने से कई भद्रिक उनके माया जाल में फंस गये एवं खरतरों ने शासन को धोखा देकर विश्वासघात किया है, आज करीब ८०० वर्षों से क्लेश कदाग्रह फूट कुसम्प चला आ रहा है यह केवल खरतरों का ही कारण है। यों तो जैनशासन में ८४ ही क्यों पर ३०० गच्छ हुए है। पर किसी गच्छ का इतना झगड़ा नहीं है जितना कि खरतरों का है। अतः खरतर शासन के कट्टर दुश्मन और हानि पहुँचाने वाले ही हैं।

कई खरतर कहते हैं कि दादाजी जिनदत्तसूरि बड़े ही प्रभाविक हुये हैं। तब ही तो उनका चलाया खरतरगच्छ आज पर्यन्त चला आ रहा है। और हजारों आदमी इस गच्छ को आदर की दृष्टि से देखते हैं।

मत चलाना और उसको हजारों आदमियों का मानना कोई प्रभाविकता का कारण नहीं है। खरतरों का मानने वाले तो दुनिया में करीब २००० घर होंगे पर ढूंढ़िया तेरहपन्थियों ने अपना मत चलाया जिसके मानने वालों की संख्या लाखों तक पहुँच गई। क्या खरतर भाई ढूंढ़िया तेरहपन्थी मत चलाने वालों को भी प्रभाविक मानते हैं ? क्योंकि खरतरों की भांति उन्होंने भी नया मत निकाला और उनको भी लाखों मनुष्य आदर की दृष्टि से देखते हैं। जैसा ढूंढ़िया तेरहपन्थियों का हाल है वैसा खरतरों का हाल है।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि और जिनदत्तसूरि समकालीन हुये हैं। जितने विशेषण जिनदत्तसूरि के साथ खरतरों ने लगाये हैं उतने हेमचन्द्रसूरि के साथ किसीने भी नहीं लगाये। पर जैनधर्म के प्रभाविक आचार्यों ने हेमचन्द्रसूरि को माना है वैसे जिनदत्तसूरि को नहीं माना है। जैसे प्रभावक चरित्र नामक ग्रन्थ वि. सं. १३३४ में एक राजगच्छीय प्रभाचन्द्रसूरि ने लिखा है। वे एक मध्यस्थ आचार्य थे। उस ग्रन्थ में आचार्य अभयदेवसूरि एवं हेमचंद्रसूरि के जीवन को बड़ी खूबी के साथ स्थान दिया है। फिर जिनदत्तसूरि के जीवन को उस ग्रन्थ में स्थान नहीं मिला इसका कारण क्या हो सकता है ? क्योंकि खरतर जिनदत्तसूरि को हेमचन्द्रसूरि से भी प्रभावक मानते हैं और ये दोनों हुये भी साथ साथ हैं। पर इसका कारण यही हो सकता है कि हेमचन्द्रसूरि ने तो राजा कुमारपाल को प्रतिबोध देकर तथा अनेक

जनोपयोगी ग्रन्थों की रचना करके जैन संसार पर महान उपकार किया और जैनधर्म की खूब प्रभावना की। तब जिनदत्तसूरि ने स्त्री समाज को जिनपूजा निषेध कर शासन के एक अंग को काट डाला और इस कारण जैनसमाज में क्लेश कदाग्रह फूट कुसम्प के बीज बोये जिनके फल आज पर्यन्त जैन जनता चख रही है। अतः ऐसे उत्सूत्र प्ररुपकों को प्रभावक पुरुषों के बीच स्थान मिलना मुश्किल ही नहीं पर सर्वथा असम्भव ही है।

कई खरतर भक्तों ने जिनदत्तसूरि की महिमा बढ़ाने के लिये उसके जीवन के साथ बिलकुल झूठी झूठी घटनायें जोड़ दी हैं कि जिससे थली जैसे प्रान्त के भद्रिक लोग उन घटनाओं को सुन कर जिनदत्तसूरि को चमत्कारी एवं प्रभाविक मान उनके उपासक बन जाये पर सभ्य समाज तो उन मिथ्या चमत्कारों से धृणा करके हजार हाथ दूर रहने ही में अपना कल्याण समझता है। हां इस बीसवीं शताब्दी में खरतरों की बहुत सी पोलें खुल गई हैं और दूसरों की तो क्या पर खरतरों की भी श्रद्धा उन मिथ्या चमत्कारों से हट गई है। पर अभी ऐसे अन्ध विश्वासों का सर्वथा अभाव भी नहीं हुआ है। अतः उनके बन्द नेत्र खोल देने के लिये मैं कतिपय उदाहरण यहां दर्ज कर देता हूं। पाठक ध्यान लगा कर पढें।

१. कई खरतर कहते एवं लिखते हैं कि जिनदत्तसूरि ने योगिनियों से अपनी गच्छ वृद्धि के लिये सात वरदान लिये थे जिसमें यह भी वरदान है कि कुंवारी कन्या खरतर गच्छ में दीक्षा लेगी वह ऋतुमती[१] न होगी। पर आज खरतर मत में बहुत सी कुंवारी कन्याओं ने दीक्षा ली है और वे ऋतु समय ऋतुमती भी होती हैं। इसके दो कारण हो सकते हैं। १. या तो योगिनियों का वचन असत्य २. या कुंवारी दीक्षा लेने के बाद उनमें कुंवारपना (ब्रह्मचर्य व्रत) नहीं रहा हो। इनके अलावा शायद यह गप्प जिनदत्तसूरि की महिमा बढ़ाने के लिये कल्पना मात्र हो। अतः इन भक्तों ने दादाजी की महिमा बढ़ाई न कह कर दादाजी की खिल्ली उड़ाई ही कहना चाहिये। क्योंकि इसका नतीजा यही निकलता है कि या तो योगिनियां या दादाजी झूठे या साध्वीयां व्यभिचारिणी हैं।

२. पूर्वोक्त सात वरदानों में एक यह भी वरदान है कि खरतर[२] गच्छ का श्रावक सिन्ध देश में जायेगा वह अवश्य धनाढ्य होगा। इस वरदान के कारण कई धनपिपासु खरतर गृहस्थ सिन्ध में गये। वहां उन्होंने कहीं भी धन नहीं पाया। अतः खाली पल्ले वापिस आकर जलते कलेजे से दादाजी को दवाई दी, अस्तु

१. **अखंड शीलपालका साध्वी ऋतुमता न भविष्यति।**
२. **खरतर श्राद्धः सिन्धुदेशं गतः सन् धनवान् भवी।**

फिर भी दादाजी का हृदय इतना संकीर्ण था कि केवल एक खरतरों को ही धोके में उतारा। क्योंकि दूसरे गच्छवाले अगर धनाढ्य हो जाते तो उनसे देखा भी कैसे जा सकता यही कारण था कि चक्रेश्वरी देवी की स्तुति में जिनदत्तसूरि ने अन्य गच्छ वालों के गला काटने का देवी को आर्डर दिया है। भला इस हालत में वे अन्य गच्छियों को धनाढ्य बनाना कब चाहते होंगे ?

३. उन सात वरदानों में एक प्रभावशाली यह भी वरदान है कि खरतर संघ में कुमरण नहीं होगा, पर उन वरदान लेने देने वालों ने यह नहीं सोचा कि यदि यह वरदान आगे चल कर सत्य निकला तो साध्वीयों का टोला कैसे बढ़ेगा ? कारण आज तो प्रायः बालविधवाओं ने ही कि जिनके पति कुमरण अर्थात् अल्पायुः में ही परलोकवासी हुए दीक्षा ली हैं। खैर वरदान झूठा हुआ तो हर्ज नहीं पर साध्वीयों की तो संख्या इससे ही बढ़ी है। वाह रे खरतरों तुम्हारे वरदान !!

४. कई खरतर अपने दादाजी का प्रभाव बढ़ाने के लिये कहते हैं कि दादाजी ने बावन वीर और चौंसठ योगिनियों को वश में कर ली थीं।

भला बावन वीर और चौंसठ योगिनियों को वश में कर दादाजी ने क्या उजाला किया था ? क्या उस समय धर्मान्धता के कारण यवन लोग मन्दिर मूर्तियों को तोड़ रहे थे उनको सजा करवा कर मन्दिर मूर्तियों की रक्षा की थी या दादाजी के वीर योगिनियां उन मुगलों से डरते थे कि उनका सामना नहीं किया। शायद जिनदत्त या जिनशेखर के आपस में कट्टर शत्रुता चल रही थी। उस समय जिनदत्त के पक्ष में ६४ औरतें और ५२ पुरुष लड़वाये होंगे। उनको ही पिछले लोगों ने ५२ पुरुषो को वीर और ६४ महिलाओं को योगिनियां लिख दिया है। क्योंकि गणधर सार्द्धशतक ग्रंथ जो खास जिनदत्तसूरि का लिखा हुआ है उस पर टीका भी खरतरों ने लिखी है। उसमें जिनदत्तसूरि के जीवन में तो इन बातों की गन्ध भी नहीं[२] परन्तु पिछले लोगों ने इस प्रकार कल्पना कर दादाजी का महत्व बढ़ाया है। पर यह महत्व होली के बादशाह के सदृश ही है।

५. कई खरतर भक्त कहते हैं कि दादाजी ने बिजली को पात्र के नीचे दबा ली और उससे वचन लिया कि मैं खरतर गच्छ के श्रावक पर कभी नहीं पडूंगी। क्या यह दादाजी का चमत्कार नहीं है ?

---

१. **संघे कुमरणं न भविष्यति (खरतर पट्टावली, पृष्ठ २५)**

२. **गणधर सार्द्धशतक पर वृत्ति रचने का समय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी का है जो जिनदत्तसूरि के निकट का समय था जिसमें तो इन बातों का जिक्र ही नहीं है, तब उन्नीसवीं शताब्दी के खरतरों ने किस आधार से यह कल्पनाएं की हैं ?**

यह गप्प लिखने वाला जैन सिद्धान्त से अनभिज्ञ ही था और केवल मन:कल्पना से लिखी है। जिनदत्तसूरि के जीवन में इस बात की गन्ध तक नहीं है। फिर भी भक्तों ने दादाजी की महिमा नहीं, पर हंसी उड़ाई है। कारण, बिजली जहां गिरती है वह भस्मीभूत कर देती है। कारण, गिरती हुई बिजली में अग्नि की सत्ता रहती है। फिर वह दादाजी के पात्र के नीचे कैसे रह सकी ? यदि कोई कहे कि दादाजी ने उस बिजली को मन्त्र से मन्त्र दी थी ? पर ऐसे उत्सूत्र भाषकों के पास मन्त्र शक्ति आई कहां से ? और मन्त्र शक्ति थी तो एक बिजली पर ही आजमाइश क्यों ? किसी बादशाह का चूल्हा जलना बन्द कर देते कि कुछ काम तो निकलता। पर मन्त्र था कहां ? दूसरा बिजली से वचन लिया यह भी गप्प ही है। बिजली को शास्त्रों में एकेन्द्रिय कहा है। उसके वचन तो होता ही नहीं। फिर बिजली बोली कैसे ? क्या इसमें दादाजी की मन्त्र शक्ति का प्रयोग था ? खरों में अक्ल भी खर जितनी होती है। खैर थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि बिजली ने वरदान दिया होगा कि खरतरों पर मैं नहीं पडूंगी। पर थोड़े वर्ष पहले खरतर यति कृपाचन्द्रजी मालवा में बिचरते थे। रतलाम के पास एक गांव में वे प्रतिक्रमण कर रहे थे उस समय बिजली गिरी थी। कृपाचन्द्रजी और उनके भक्तों को चोट भी लगी थी, जिसके समाचार उसी समय अखबारों में छप गये थे। यदि बिजली ने वचन दिया था तो वह खरतरों पर कैसे टूट पड़ी ? अरे खरतरों जरा मनुष्यत्व का मान रखो। ऐसी गप्पें हांकने में तुम्हारी और तुम्हारे माने हुये आचार्यों की महिमा नहीं पर उल्टी हंसी होती है।

६. दादाजी की पूजा में लिखा है कि दादाजी ने भक्त के डूबते हुये जहाज को तिराया। क्या यह चमत्कार नहीं है ? दादाजी किसी भव में नाव चलाने वाले नाविक होंगे और यह बात उनको स्वप्न में याद आ गई होगी या खरतरों ने गप्प मारी होगी। जब वे जीवन में कुछ भी नहीं कर सके तो मरने पर तो कर ही क्या सकते थे ? भला दादाजी में डूबती हुई नाव को तिराने की शक्ति होगी तब तो नाव को डुबाने की शक्ति भी होगी। भक्तों की नाव तिराई तो दुश्मनों की नाव डुबाई भी होगी। तब तो आज पर्यन्त जितनी नावें डूबी हैं वह भी दादाजी ने ही डुबाई होंगी। यदि दादाजी जीवित होते तो उन पर दावा कर रकम वसूल करते और दादाजी कह देते कि मैंने नाव न तराई और न डुबाई तों उसमें गवाही (शहादत) में आपको ही पेश किये जाते भला आप इस बात का क्या प्रमाण बतला सकते ?

७. कई भक्त यह भी कहते हैं कि दादाजी ने भक्तों की हुंडियां स्विकारी

थीं। यदि दादाजी भक्तों की हुंडियां स्विकारते तो खरतर भक्तों के इतने दिवाले क्यों निकले हैं? उनकी हुंडिया दादाजी स्विकारना क्यों भूल गये? शायद उन लोगों ने दादाजी को प्रसाद वगैरह नहीं चढ़ाया होगा। फिर भी उनकी गलती पर दादाजी को तो नहीं भूलना था कि दादाजी के विश्वास पर की हुई हुंडिया न स्विकारने से उनको दिवाला फूंक देना पड़ा। वाह रे खरतरों तुम तो सच्चे खरतर ही हो।

८. कई खरतर कहते हैं कि दादाजी ने अमावस की पूर्णिमा करके बतला दी, अतः दादाजी ऐसे चमत्कारी थे। अव्वल तो यह बिना सिर पैर की उड़ती हुई गप्प है। दादाजी के जीवन में इस बात की गंध तक भी नहीं मिलती है। फिर भी कोई व्यक्ति ऐसा करके बतला दे तो इसमें चमत्कार की कोई बात भी नहीं है। कारण, यह काम तो इनद्रजालियों का है, जैन शास्त्रों में तो ऐसा कर्म करने पर साधुओं को दंडित बतलाया है और साधु आचार से भ्रष्ट कहा है। यदि दादाजी ने ऐसा कर्म किया है तो वे इस पंक्ति से अलग नहीं रह सकते हैं। खरतर बिचारे दादाजी की मृत आत्मा को दंडित एवं भ्रष्टाचारी बनाने की कोशिश करते है अतः यह तो उनकी भक्ति का ही परिचय है।

९. कई खरतर यह भी कहते हैं कि जिनदत्तसूरि के मकान पर ब्राह्मणों ने एक मृत गाय लाकर डाल दी थी। तब जिनदत्तसूरि ने उस गाय को ब्राह्मणों के शिवालय में डाल दी इत्यादि।

खरतरों को चोरी करना, पाठ चुराना, पाठ को बदल देने का तो भय है ही नहीं। जब कि वे सूत्रों का पाठ बदलने में भगवान का भी डर नहीं रखते तो दूसरों के लिये तो वे भय रखते ही क्यों? यह गाय वाली घटना वायट गच्छीय जिनदत्तसूरि के शिष्य जीवदेवसूरि के साथ घटीत[१] हुई थी। जिसका उल्लेख प्रभावक-चरित्र में आचार्य प्रभाचन्द्रसूरि ने किया है। पर खरतरों के किसी भी प्राचीन ग्रन्थ एवं जिनदत्त के जीवन में इस बात की गन्ध तक भी नहीं है। खरतर भक्त तो किसी जैनाचार्य की चमत्कारी घटना देखी बस अपने आचार्यों के साथ जोड़ देते हैं। पर इससे दिवालिया कभी साहूकार नहीं बन सकता है पर वह तो अपने शेष विश्वास का दिवाला निकाल देता है।

१०. कई कहते हैं कि दादाजी ने पाटण का अन्यगच्छीय अंबड श्रावक को श्राप दिया जिससे वह निर्धन हो गया। दादाजी से और बन ही क्या सकता था?

---

१. **देखो प्रभाविक चरित्र जीवदेवसूरि प्रबन्ध श्लोक से।**

वे पर गच्छीयों की चढ़ती देख मन में खूब जलते थे। पर जिनके पुण्य ही प्रबल्य होते हैं उनका कोई क्या कर सकता है? दादाजी के समय केवल एक पाटण शहर में १८०० कोटि ध्वज थे। दादाजी उनको श्राप नहीं दे सके फिर बिचारे एक अंबड की ही तकदीर ऐसी क्यों थी कि वह दादाजी के श्राप के कारण निर्धन बन गया? पर इस बात के लिए खरतरों के पास उड़ती गप्प के अलावा प्रमाण क्या है? गणधर सार्द्धशतक ग्रन्थ में दादाजी का जीवन है। उसमें इस बात की गंध तक नहीं है फिर खरतर किस मुँह से जिनदत्तसूरि की हँसी करते हैं? हाँ श्राप देना तो खरतरों के परम्परा से ही चला आया है। अन्यगच्छीयों को श्राप दे इसमें कौन सा आश्चर्य है? पर वे तो अपने गच्छ वालों को भी श्राप देने में नहीं चूकते हैं, जैसे खरतर बेगड़ शाखा वाले को श्राप दे दिया कि तुम्हारी शाखा में १९ साधु से ज्यादा न होगा। सुखसागर को श्राप दिया कि तुम्हारे दो अंक के अर्थात् १० साधु न होगा इत्यादि।

११. कई खरतर पक्षपात में बेभान होकर यह भी कह देते हैं कि जिनदत्तसूरि युगप्रधान थे। जिस समाज में उत्सूत्र भाषण करनेवाले एवं संघ से बहिष्कार किए हुए व्यक्ति भी युगप्रधान कहलाते हो। उन युगप्रधानों की कितनी कीमत हो सकती है? और खरतरमत में युगप्रधान की ऐसी कोई कीमत भी नहीं है क्योंकि बालों में तेल डालनेवाले रेलगाड़ी में सवारी करने वाले नाटक खेल देखने वाले और कनक कामिनी रखने वाले भी युगप्रधान कहला सकता हैं। फिर ऐसे पद से विभूषित करके जिनदत्तसूरि का क्या महत्व बढ़ाना चाहते हैं? यह समझ में नहीं आता है। पिछले लोगों ने जिनदत्तसूरि को युगप्रधान बनाने के लिये जो कथा मनःकल्पित घड़ निकाली है वह तो उनके मत की एक खास तौर पर प्रवृत्ति चली आई है। खास खरतरों के बनाये हुए गणधरसार्द्धशतक में जिस दिन के चर्म भाग में जिनदत्तसूरि को आचार्य पद दिया है। उसी समय जिनदत्त को युगप्रधान[१] कहा है। फिर उस कल्पित ढाँचा बनाने का एक गप्प के सिवाय क्या अर्थ हो सकता है?

जैनधर्म के महाप्रभावक युगप्रधानों की नामावली है उस में जिनदत्तसूरि के नाम की गंध तक भी नहीं है। फिर खरतर झूठ मूठ ही उत्सूत्र प्ररुपक जिनदत्त

---

१. **श्रीजिनवल्लभसूरिपदे विस्तरेण संध्या समये लानवेलायां।**
सस्थापिताः श्रीजिनदत्त नामनी युगप्रवराः॥

'प्र. प. गणधरसार्द्धशतक वृत्ति।'

जब सूरि होते ही जिनदत्त युगप्रधान कहलाया गया था तो फिर अंबड़ की कल्पित कल्पना क्यों की हैं?

को युगप्रधान क्यों करार देते हैं ? जैनधर्म में युगप्रधान दो प्रकार के माने गये हैं। १. नाम युगप्रधान २. गुण युगप्रधान। यदि जिनदत्तसूरि नाम युगप्रधान ही है तो कुछ कहने लिखने को रहता ही नहीं है और इस युगप्रधान की कीमत हाल में कृपाचन्द्रसूरि, जिनचन्द्रसूरि एवं चरित्रसूरि से अधिक हो भी नहीं सकती है। यदि कोई जिनदत्त को गुण युगप्रधान मानते हों तो उनकी बड़ी भारी भूल है क्योंकि भाव युगप्रधान का एक भी गुण जिनदत्तसूरि में नहीं था।

(१) युगप्रधान उत्सूत्र की प्ररुपणा नहीं करते हैं किन्तु जिनदत्तसूरि ने पाटण नगर में यह प्ररुपणा की थी कि स्त्री जिनपूजा नहीं कर सके। इससे तो जिनदत्तसूरि को अर्द्ध ढूँढिया कहा जा सकता है, क्योंकि ढूंढियों ने पुरुष और स्त्रियें दोनों को जिनपूजा का निषेध किया हैं और जिनदत्तसूरि ने एक स्त्रियों को ही प्रभुपूजा का निषेध किया। किन्तु शास्त्रों में विधान है कि द्रौपदी, मृगावती, जयन्ति, प्रभावती, चेलना आदि स्त्रियों ने प्रभुपूजा की हैं और इस शास्त्राज्ञा को जिनदत्तसूरि के गुरु तक भी मानते आए थे। केवल जिनदत्तसूरिने ही ''स्त्री जिनपूजा न करे'' ऐसा कह कर जिनाज्ञा का भंग किया। अर्थात् उत्सूत्र की प्ररुपणा की। क्या ऐसे जिनाज्ञाभंजक को ही युगप्रधान कहते हैं ?

(२) युगप्रधान उत्सूत्र प्ररुपको का पक्ष नहीं करते हैं तब जिनदत्तसूरि ने छ कल्याणक प्ररुपक जिनवल्लभसूरि का पक्ष कर खुदने भी भगवान् महावीर के छः कल्याणक की प्ररुपणा कर कई भद्रिक जैन लोगों को सन्मार्ग से पतित बनाया। क्या ऐसे उत्सूत्र प्ररुपक भी युगप्रधान हो सकते हैं ?

(३) युगप्रधान किसी को श्राप नहीं देते हैं तब जिनदत्तसूरिने पाटण के अंबड श्रावक को श्राप दिया कि जा ! तूं निर्धन एवं दुःखी होगा (देखो दादा की पूजा में)

(४) युगप्रधान की आज्ञा सकल संघ शिरोधार्य करते हैं तब चन्द व्यक्तियों के सिवाय जैन संघ जिनदत्तसूरि को उत्सूत्र प्ररुपक मानते थे।

(५) युगप्रधान आचार्यपद के लिए झगड़ा नहीं करते है किन्तु जिनवल्लभसूरि के देहान्त के बाद जिनदत्तसूरि और जिनशेखरसूरि ने आचार्य पदवी के लिए झगड़ा किया, जिनदत्तसूरि कहते थे कि मैं आचार्य होऊंगा और जिनशेखरसूरि कहते थे कि मैं आचार्य बनूंगा। आखिर दोनों आचार्य बन गए। क्या युगप्रधान ऐसे ही होते हैं ? सकल संघ तो दूर रहा पर एक गुरु की संतान में भी इतना झगड़ा होवे और ऐसे झगड़ालुओं को युगप्रधान कहना क्या हमारे खरतरों का अन्तरात्मा स्वीकार कर लेगा ?

(६) यदि ''महाजनवंश मुक्तावली'' पुस्तक के कथन को खरतर लोग सत्य मानते हों तो जिनदत्तसूरि ने कई स्थान पर गृहस्थों के करने योग्य कार्य किये हैं। क्या जैन शासन में ऐसे व्यक्तियों को युगप्रधान माना जा सकता है ?

(७) अंचलगच्छीय आचार्य धर्मघोषसूरि ने अपने शतपदी ग्रन्थ के १४९ पृष्ठ पर जिनदत्तसूरि की नवीन आचरणा के बारे में पच्चीस बातें विस्तार से लिखी हैं। पर मैं उनमें से कतिपय बातें पाठकों की जानकारी के लिए यहां उद्धृत कर देता हुं। वे लिखते हैं कि जिनदत्तसूरि :-

१. श्राविकाने पूजा नो निषेध कर्यो।

२. लवण (निमक) जल, अग्नि मैं नोखवुं ठेराव्यो।

३. देरासर में जुवान वेश्या नहीं नचावी, किन्तु जे नानी के वृद्ध वेश्या होय ते नचाववी एवी देशना करी।

४. गोत्रदेवी तथा क्षेत्रपालादिकनी पूजा थी सम्यक्त्व भागे नहीं एम ठेराव्युं।

५. अमे ज युगप्रधान छीए एम मनावा मांड्युं।

६. वली एवी देशना करवा मांडी के एक साधारण खातानु बाजोठ (पेटी) राखवुं, तेने आचार्य नो हुकम लई उघाडवुं। तेमांना पैसामांथी आचार्यादिकना अग्निसंस्कार स्थाने स्तूपादिक कराववी तथा त्यां यात्रा अने उजणीओ करवी।

७. आचार्योंनी मूर्तियों कराववी।

८. चक्रेश्वरीनी स्तुतिमां जिनदत्तसूरिए कह्युं छे के विधिमार्गना शत्रुओना गला कापी नाखनार चक्रेश्वरी मोक्षार्थी जनना विघ्न निवारो।

९. श्रावक ने तीन वार सामायिक उच्चराववानी प्ररुपणा करवा मांडी।

१०. अजमेरमां पार्श्वनाथना देरामां तथा पोसहशालामां सरस्वतीनी प्रतिमा थपावी। ए ज देहरामां जेमने मांस पण चढ़े छे एवी शीतला वगेरा देवियों थपावी।

११. ऐरावण समारुढ़ इत्यादि बली उड़ावी दिक्पालोंनी पूजा करवाना श्लोको तथा ''सद्वेद्यां भद्रपीठें'' इत्यादि काव्यों चैत्यवासी वादिवैताल शान्तिसूरिना करेल होवाथी सुविहितोए निषेध कर्या छतां जिनदत्त सूरिए चलाव्या।

इनके अलावा और भी कई बातों को रद्दोबदल कर स्वच्छन्दता पूर्वक आचरणा प्रचलित कर डाली। क्या ऐसे उत्सूत्र भाषक भी युगप्रधान हो सकते हैं ?

यदि खरतरों के नसीब में ऐसे उत्सूत्र प्ररुपक जो श्रीसंघ से संघ बाहर किया हुआ व्यक्ति युगप्रधान होना लिखा हो तो उस भावी को मिटा भी कौन सकता है ? शायद असंयति पूजा नामक अच्छरा (आश्चर्य) का ही तो यह प्रभाव नहीं है कि इस कलिकाल में मूंढ़ लोग ऐसे पतित की भी पूजा करते हैं।

१२. कई खरतर प्रतिक्रमण में अपने दादाजी के काउस्सग्ग करते हैं। पहले तो वे 'खरतरगच्छ शृङ्गार' कहते थे पर अभी कई लोग 'चौरासीगच्छ शृङ्गार' कहने लग गये हैं। तो क्या जिनदत्तसूरि को ८४ गच्छ वाले अपने अपने गच्छ के शृङ्गार हार मानते हैं? शृङ्गार हार मानना तो दूर रहा पर उपरोक्त कारणों से ८४ गच्छ वाले जिनदत्तसूरि को उत्सूत्र प्ररुपक मिथ्यात्वी कदाग्रही अनंत संसारी निन्हव और जैन समाज में क्लेश कुसम्प तथा फूट के बीज बोने वाला मानते हैं। यदि कोई व्यक्ति कह दे कि 'मान या न मान मैं तेरा मेहमान' इससे वह मेहमान नहीं कहा जाता है। एक पागल कह दे कि मेरा पिता चौरासी देशों का बादशाह था। तो क्या वह चौरासी देशों का बादशाह बन सकता है? कदापि नहीं। बस यही हाल खरतरों का है। जरा स्वयं सोच सकते हो कि ८४ गच्छ वाले जिनदत्त को शृङ्गार हार मानते हैं तो फिर खरतर काउस्सग्ग करे और शेष गच्छ वाले यों ही बैठे रहें। वे साथ में प्रतिक्रमण करते हुये भी काउस्सग्ग क्यों नहीं करते हैं? इतना ही क्यों पर एक स्थान पर तपा-खरतरादि शामिल बैठ कर प्रतिक्रमण करते थे। जब खरतरों ने अपने दादाजी का काउस्सग्ग करते समय 'चौरासीगच्छशृङ्गारहार' शब्दोच्चारण किया तो एक गच्छ वाले ने कहा कि जिनदत्त हमारे गच्छ के शृङ्गार नहीं है। तब दूसरे गच्छ वाले भी बोल उठे कि दादाजी हमारे गच्छ के शृङ्गार नहीं है इत्यादि। बतलाइये इसमें दादाजी और इनके भक्तों की क्या इज्जत रही? पर खरतरों की न तो कभी इज्जत थी और न इस बात का वे विचार ही करते हैं। और ८४ गच्छ तो दर किनार रहे पर खास जिनवल्लभ का साधु एवं जिनदत्त वे गुरुभाई जिनशेखरसूरि और उनकी परम्परा संतान जिनदत्त एवं खरतर का नाम लेने में भी महापाप समझते थे। फिर दूसरे गच्छों की तो बात ही क्या करते हो? इस विषय का तो जिसने अभ्यास किया है वही जानता है कि इस हठकदाग्रही जिनवल्लभ और जिनदत्त ने जैन समाज को कितना नुकसान पहुँचाया है? धन्य है ऐसे मत और मत के निकालने वालों को तथा ऐसे उत्सूत्र प्ररुपकों के मत को मानने वालों को !!!

१२. आप इस प्रकार जिनदत्तसूरि के विषय में कहते हो पर जिनदत्तसूरि की ग्राम ग्राम में पादुकायें बनी हुई हैं और सब गच्छ वाले उनको मानते पूजते हैं। यदि वे चमत्कारी नहीं होते तो सब गच्छ वाले उनको क्यों मानते?

कहा है कि लोभियों के नगर में धूतारे भूखे नहीं रहते हैं। जनता को धन पुत्रादि का लाभ बतला कर धूर्त लोग क्या क्या नहीं कर सकते हैं? आंचलगच्छ

के शतपदी नामक ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा[१] है कि जिनदत्त अपने मकान में एक पेटी रखवाया करता था और आने जाने वाले धनाढ्यो को उपदेश भी करता था कि इस पेटी में कुछ द्रव्य डालों। इससे तुमको बहुत लाभ होगा। बस कर्म सिद्धान्त से अनभिज्ञ लोग उन धूर्तों के धोखे में आकर धन पुत्रादि की तृष्णा के लिये एवं तृप्त करने को उस पेटी में द्रव्य डाल दिया करते थे। उस द्रव्य से जिनदत्त ने अपनी पादुकायें बनानी शुरु कर दी। फिर तो वह चेपी रोग बढ़ता ही गया। पर इनके पूर्व भगवान गौतम-सौधर्म, जम्बु आदि अनेक आचार्य हुये। किसी भक्तों ने उनकी मूर्तियाँ या पादुकायें बनवाई थी? नहीं! तो फिर उत्सूत्र प्ररुपक की पादुकायें बनाना, इसमें कौन सा लाभ है? दूसरे केवल पादुकायें बनाने से ही प्रभाविक नहीं कहा जाता है और न वे जनता का भला ही कर सकते हैं। हाँ खरतरों ने अपनी धूर्तता से जनता को धोखा देकर उनको धन-पुत्र का लाभ बतला कर भद्रिकों को दादाजी का भक्त बना भी दिया हो तो इससे दादाजी का चमत्कार सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि अनभिज्ञ लोग दादाजी ही क्यों पर वे तो अन्य देव देवी और पीर पैगम्बरों के यहाँ जाकर भी शिर झुका देते हैं। यदि पिछले लोगों ने दादाजी के झूठे झूठे चमत्कारों के नाम लेकर भद्रिक जनता को धोखा देकर दादाजी को पूजा दिया हो तो यह कल्पित पूजा कहां तक चल सकती है? आखिर को देवालिया का देवाला निकल ही जाता है जैसे:-

हाल ही में कृपाचन्द्रसूरि ने पालीताणा में एक जिनदत्तसूरि के नाम से आश्रम खोला है, उस धूर्त ने मारवाड़ियों को यों कह कर लूटा कि गुजराती लोग मारवाड़ियों को कुछ समझते ही नहीं है। इसलिये अपने मारवाड़ियों की एक संस्था खोली है। तुम गुजरातियों की संस्था को द्रव्य नहीं देकर अपनी मारवाड़ियों की संस्था में द्रव्य दिया करो। बस बिचारे भद्रिकों को मारवाड़ियों के नाम से पक्षान्ध बनाकर डाकुओं की भाँति पैसा लूट लूट कर द्रव्य एकत्र कर लिया। इसी भाँति बिचारे भद्रिकों को धन पुत्रादि का लोभ बतला कर उनके द्रव्य से दादावाड़ियाँ एवं पादुकायें बनवाई हों तो इसमें सिवाय धूर्तता के और है क्या? पर इस प्रकार झूठा एक कल्पित मामला चलता है कहाँ तक? आखिर पाप का घड़ा फूट ही

---

१. **वजी रावी देशना करवा माडी के एक साधारण खातानुं बाजोट रखाववुं, तेने आचार्यनो हुकम लइ उघाडवुं, तेमांना पैसामांथी आचार्यादिकना अग्नि संस्कार स्थाने थूमादिक करावववी तथा त्यां यात्रा अने उजाणीओ करवी।**

आंचलगच्छ. शतपदी, पृष्ठ १५०

'जिनदत्तसूरि के विषय २५ बातों में से यह ११वी बात है।'

जाता है। जब लोगों को सच्ची बातों का ज्ञान हुआ। तब वे दादाजी और उनकी पादुकाओं की ओर धृणा की दृष्टि से देखने लगे। और अनजानपन में उन मिथ्यात्वी के पास जाने का पश्चाताप कर उसका प्रायश्चित लिया है। भला देखिये अब उन दादावाड़ियों में कौन जाता है ? वे भूत पिशाच के स्थानों की भाँति शून्य पड़ी हवा खा रही हैं। बिचारे खरतर धन पुत्रादि की आशा से त्रिलोक्य पूजनीय परमेश्वर की पूजा छोड़ दादाजी के यहाँ जाकर दो दो चार चार घंटे तक प्रार्थना करते थे पर आखिर दादाजी की ऐसी क्रूर दृष्टि हुई कि वे सफाचट बन गये तब जाकर उनकी आँखें खुली कि व्यर्थ ही समय एवं द्रव्य बरबाद किया। जो होता है वह सब कर्मानुसार ही होता है। अतः छोड़ो दादाजी को और करो उद्योग कि पेट भर के अन्न तो मिले। अगर समय मिले तो आत्म कल्याणार्थ परमेश्वर की पूजा-उपासना ही करनी चाहिये इत्यादि। समझ गये न कल्पित ढाँचे का यह हाल होता है।

१३. कई लोग कहते हैं कि जिनदत्तसूरि ने १,२५,००० नये जैन अर्थात्, नये ओसवाल बनाये। क्या यह चमत्कार का काम नहीं है ? यदि दादाजी इतने चमत्कारी नहीं होते तो सवा लाख नये ओसवाल कब बना सकते ?

नये जैन बनाने की न तो जिनदत्त में योग्यता थी और न उनको नया जैन बनाने के लिए समय ही मिलता था। कारण, उस समय जिनदत्त पर अनेक आफतें आ पड़ी थी। वह बिचारा संघ से तिरस्कृत हुआ इधर-उधर भटकता फिरता था। कभी कभी तो उनको भय के मारे ऊँट सवारी से रात्रि में पलायन करना पड़ा था। इस हालत में वह बिचारा जिनदत्त नये जैन बनाने को कब बैठा था ? और वह खुद भी इस प्रकार भटकता फिरता था तो उसके कहने से कौन नया जैन बनने को तैयार था ?

दर असल बात तो यह बनी थी कि जिनवल्लभ का भगवान महावीर का गर्भापहार नाम छट्ठा कल्याणक की उत्सूत्र प्ररुपणा करने से संघ ने उसका बहिष्कार कर दिया था। बाद उस उत्सूत्र वादी के पट्ट पर जिनदत्त आरुढ़ हुआ। उस पर छट्ठा कल्याणक की आफत तो थी ही फिर पाटण में स्त्री जिन पूजा निषेध करने से दूसरी आफत आ पड़ी। जिससे जहां वह जाता वहां ही उसका तिरस्कार होता था। अतः उसने अपने जीवन के दिन इधर उधर भटकने में ही व्यतीत किये। उस समय जैन समाज की संख्या करीबन बारह करोड़ की थी। जिनदत्त ने अपने मत को बढ़ाने के लिए किसी को मंत्र किसी को यंत्र बताया किसी की दवाई की और किसी को और प्रयोग बतला कर शायद सवा लक्ष भद्रिकों को सत्यधर्म से

पतित बनाकर अपना भक्त बना भी लिया हो तो इसमें जिनदत्त की क्या अधिकता हुई ? यदि इसको भी खरतर चमत्कार ही समझते हों तो इससे भी अधिक चमत्कारी ढूंढ़िये तेरहपन्थियों को समझने चाहिये। कारण, जिनदत्त ने तो बारह करोड़ से सवालक्ष मनुष्यों को पतित बनाया। पर ढूंढ़िये तेरहपन्थियों ने तो लाखों जैनो से ही करीब करीब तीन लक्ष लोगों को पतित बनाकर ढूंढ़िये बना लिये है। अब विशेषता जिनदत्त की रही या ढूंढ़ियों की ?

खरतरों ने अनभिज्ञ जैनों को क्या क्या भौतिक पदार्थों का लोभ देकर सत्यधर्म से पतित बना कर अपने पक्षपाती बनाये जिसका थोड़ा सा नमूना हम खरतरों के ग्रन्थों से उद्धृत कर पाठकों को बतला देना चाहते हैं कि खरतरों ने नये जैन बनाये या जैनों को धर्म से पतित बनाये है ?

निम्नलिखित जैन जातियों में से कई जातियां तो खरतरों के जन्म से पूर्व सैकड़ों वर्ष से बनी हुई थी और कई जातियां बाद में जैनाचार्यों ने बनाई थीं। उन जातियों को खरतरों ने किस प्रकार पतित बनाकर बिचारे भद्रिक लोगों को धोखा देकर विश्वासघात किया जिसको खरतर यति रामलाल बीकानेर वालों ने स्वरचित महाजन वंश मुक्तावली नामक किताब में उन जातियों के साथ उनकी उत्पत्ति की कल्पना कर खरतराचार्यों को किस प्रकार पतित होना साबित किया है। जिसको उस किताब के पृष्ठों के साथ नीचे दर्ज कर देता हूँ।

१. संचेतियों के पूर्वजों के सर्प का विष उतारा।	पृष्ठ १५
२. वरडिया के पूर्वजों को धन बताया।	पृष्ठ १६
३. चोपड़ों के पूर्वजों को पुत्र दिया।	पृष्ठ १७
४. धाड़िवालों के पूर्वजों को यंत्र कर दिया।	पृष्ठ २०
५. झाबका के पूर्वजों को विजय यंत्र दिया।	पृष्ठ १२
६. चोरडिया के पूर्वजों के मूर्च्छितों को जीवित किये।	पृष्ठ २३
७. भंशालियों के पूर्वजों का ब्रह्मराक्षस निकाला।	पृष्ठ २८
८. दूसरे भंशाली के पूर्वजों के मृतक पुत्र को जिवाये।	पृष्ठ ३०
९. आर्य के पूर्वजों को बंदूक के गोली का गुलाब।	पृष्ठ ३२
१०. बाफनों के पूर्वजों को विजय यंत्र दिया।	पृष्ठ ३४
११. कटारियों के पूर्वजों के सर्प का विष उतारा।	पृष्ठ ३६
१२. मालुओं के पूर्वजों की अर्द्धांग की बीमारी मिटाई।	पृष्ठ ३८
१३. रांकाबांका के पूर्वजों के वल्लभी को भंग करवाया।	पृष्ठ ४०

१४. राखेचाओं के पूर्वजों का कुष्ट रोग मिटाया। पृष्ठ ४२
१५. लुनिया के पूर्वजों के सर्प का विष उतारा। पृष्ठ ४३
१६. डीसी के पूर्वजों को धन बताया। पृष्ठ ४४
१७. सुरांणा के पूर्वजों के जगदेव पैवार की कथा। पृष्ठ ४५
१८. बोत्थरा के पूर्वजों के गप्पों का खजानही। पृष्ठ ५९
१९. गेलडाओं के पूर्वजों को वास चूर्ण से कजावा की ५००० ईंटों।
२०. वुरडी के पूर्वजों को शिव के प्रत्यक्ष दर्शन कराये। पृष्ठ ६५
२१. लोढाओं के पूर्वजो के इनकी अजीब घटना वत। पृष्ठ ६४
२२. संधियों के पूवजों के सर्प का विष उतारा। पृष्ठ ६९
२३. डागाओं के पूर्वजों के बादशाह का पलंग भंगाया। पृष्ठ ७०
२४. ढड्ढाओं के पूर्वजों के बिना सिर पैर की गाय। पृष्ठ ७२
२५. कांकरियों के पूर्वजों को दो कांकरों से फौज हटाई म.। पृष्ठ ७८
२६. श्री मीमाल के पूर्वजों के मलेच्छो से हिन्दूधर्म की निंदा। पृष्ठ ६०
२७. छाजेड़ों के पूर्वजों को वास चूर्ण से सोना का छाजा। पृष्ठ ६८
२८. नाहारों के पूर्वजों की कल्पित घटना उतारा। पृष्ठ ६६

वाह ! वाह ! खरतरों तुम्हारे युगप्रधानों के सिवाय जैन धर्म में इस प्रकार यंत्र मंत्र झाडा झपटादि और कौन कर सकता है ? यदि यह सब बातें सच्ची हैं तो हमारा उपरोक्त लेख इन बातों से और भी पुष्ट प्रमाणिक सिद्ध होता है कि जिनदत्तसूरि ने जैन समाज को यंत्र मंत्र बताकर सत्य धर्म से पतित बनाकर चन्द व्यक्तियों को अपने भक्त जरुर बनाये है। यही कारण है कि उपरोक्त जातियों के कई कई लोग आज भी खरतरों को मानते हैं। पर उक्त जातियां जिनदत्तसूरि के जन्म से पूर्व सैकड़ों वर्षों से बनी हुई थी। इस विषय में विशेष जानने वालों को 'जैन जाति निर्णय प्रथमांक या खरतरों का गप्प पुराण' मंगाकर पढ़ना चाहिए कि सत्य का साक्षात्कार हो सकेगा।

श्री उत्तराध्ययन एवं दशवैकालिकसूत्र में इस प्रकार के कार्य करने वालों को भ्रष्टाचारी कहा है और निशीथ सूत्र में उपरोक्त कार्य करने वालों को दंडित एवं प्रायश्चित भी बतलाया है। अतः ऐसे भ्रष्टाचारी एवं दंडितों को भी चमत्कारी कहा जाता हो तो यह खरतरों को ही मुबारिक है।

प्रश्न – रत्नप्रभसूरि के लिये भी राजा के जमाई को सांप ने काटा, जिसका विष उतारा आप भी तो कहते हैं न ?

उत्तर – अरे कहां गज और कहां गीदड़ ? रत्नप्रभसूरि चतुर्दश पूर्वधर[१] एवं आगमविहारी थे। उनकी बराबरी जिनदत्त जैसे उत्सूत्र प्ररुपक नहीं कर सकते हैं। आगमविहारियों के लिये कल्प नहीं है, वे भविष्य का लाभालाभ देखें वैसा कार्य कर सकते हैं। जैसे कि :-

१. भगवान महावीर ने आम सभा में काली रानी को कहा था कि तुम्हारा पुत्र संग्राम में गया था, वहां मर गया यदि कल्प वाले साधु ऐसी बात कह दे तो उसको निशीथ सूत्र में चतुर्मासिक प्रायश्चित बतलाया है।

२. गौतम स्वामि मृगालोढा को देखने गये जिसकी आज्ञा महावीर ने दी थी। यदि कल्प वाले साधु इस प्रकार कहे तो उसे चतुर्मासिक प्रायश्चित आता है। इतना ही क्यों पर इसके लिये आज्ञा देने वाले को भी प्रायश्चित कहा है।

३. केशीश्रमणाचार्य ने प्रदेशी राजा को कहा कि ''प्रदेशी तू मुंड है, तुच्छ है।'' यदि कल्प वाला साधु गृहस्थ को इस प्रकार हलके शब्द कहे तो निशीथ सूत्र में चतुर्मासिक प्रायश्चित होता है।

४. भगवान महावीर उदाई राजा को दीक्षा देने को गये तब रात्रि में विहार किया था। यदि कल्पवाले साधु रात्रि में विहार करे तो उसे प्रायश्चित बतलाया है।

व्रष्णुकुमार मुनि ने निमूची को मार डाला वैसा कल्पवाले मुनि नहीं कर सकते हैं। करें तो दोषित कहा है।

५. भद्रबाहु स्वामि ने राजा को भविष्य का निमित कहा वैसे दूसरा कल्प वाला साधु नहीं कह सकता है।

अतः रत्नप्रभसूरि का उदाहरण जिनदत्तसूरि के लिये घटित नहीं हो सकता है। कारण, जिनदत्तसूरि अल्पज्ञ था और अपनी अल्पज्ञता के कारण ही उसने स्त्री जिनपूजा निषेध कर उत्सूत्र की प्ररुपणा की थी।

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने तो जिस कल्प वृक्ष को रोपा था वह आज संसार में फला फूला और जैन धर्म को जीवित रक्खा है। पर जिनदत्तसूरिने तो समाज में फूट डाल क्लेश के बीज बोये वे आज भी समाज में कांटा खीला की भांति खटक रहे हैं। ऐसे व्यक्ति के लिये रत्नप्रभसूरि का उदाहरण घटाया जा सकता है ? नहीं ! कदापि नहीं !! हर्गिज नहीं !!!

---

१. **क्रमेण द्वादशाङ्गी चतुर्दशपूर्वी बभूव गुरुणा स्वपदे स्थापितः।**

प. स. उपदेशगच्छ पट्टावली, पृ. १८४

अर्थात् श्री रत्नप्रभसूरि द्वादशांगी एवं चौदह पूर्व के ज्ञाता थे।

प्रश्न – खरतरों ने यह भी तो लिखा है[१] कि ओसियां में जिनदत्तसूरि ने जाकर सवा लक्ष श्रावकों को प्रतिबोध दिया था ?

भूमि पर सोने वाले और झूठ बोलने वालों को संकोच ही किस बात का है ? जिनदत्त का समय तो विक्रम की बारहवी तेरहवी शताब्दी का है। तब ओसियों में श्रावक बनाने का समय विक्रम पूर्व ४०० वर्षों का है और इस बात के लिये पुष्कल प्रमाण भी मौजूद है। फिर लिखने वालों को थोडी शरम भी नहीं आई कि हम बिलकुल झूठ बात कैसे लिखते हैं ? इस प्रकार मिथ्या लेख लिखने से दुनिया में हमारी प्रशंसा होगी या निन्दा होगी ? क्या सभ्य समाज इस प्रकार के मिथ्या लेख को सत्य मान लेगा या लेख लिखने वाले को अनभिज्ञ बेवकूफ कहेगा ?

यदि यह कहा जाय कि जिनदत्त ने ओसियों में जाकर नये ओसवाल नहीं बनाये। पर पहले से बने हुये ओसवालों को महावीर के छः कल्याणक मनाकर तथा स्त्रियों को जिन पूजा छुड़ा कर अपना श्रावक बनाया होगा। और यही बात खरतरों की पट्टावली में लिखी है कि सवा लक्ष श्रावकों को प्रतिबोध दिया।

यह भी मिथ्या है। कारण, अव्वल तो विक्रम की बारहवीं तेरहवीं शताब्दी में सवा लक्ष श्रावक ओसियों में थे ही नहीं। दूसरे इस प्रकार उत्सूत्र प्ररुपकों का जहां तहां संघ से बहिष्कार हो रहा था। उस समय ओसियों के श्रावक उन मिथ्या प्ररुपणा करनेवालों का कहना मानते यह बिलकुल असम्भव बात है। यह तो जिनदत्त के आधुनिक भक्तों ने जिनदत्त पर से उत्सूत्र भाषण का कलंक धोने के लिये कल्पना का कलेवर तैयार किया है। पर इस प्रकार मिथ्या लेखों से तो वह कलंक छिपता नहीं पर और भी बढ़ जाता है और उनके प्रतिकार के लेखों से चिरस्थायी भी बन जाता है। फिर भी उन अक्ल के दुश्मनों को इतना भी भान नहीं था कि बिचारे जिनवल्लभ जिनदत्त की काली करतूतें पुराणे पोथों में पुराणी हो गई थी। उनको प्रेरणा द्वारा जीर्णोद्धार करवा कर जनता में क्यों फैलाई जाती हैं ? अतः इस लेख का सार यही है कि जिनदत्त ने किसी एक मनुष्य को भी नया जैन नहीं बनाया है और न उसमें ऐसी योग्यता ही थी कि वह नये जैन बनावे। पर जो उसने अपने भक्त बनाये है वे सब बने हुये जैन थे। जिनदत्त ने उनको दृष्टिरागी बनाकर ही अपने पक्ष में लिया था इतना ही क्यों पर जिनदत्त के भक्तों ने तो इस प्रकार कल्पित ढांचा रच कर बिचारे भद्रिक ओसवालों को धोखा भी

१. **ओसियानगरे ओसवंशीय लक्षश्रावका प्रतिबोधिकाः।**

'ख. प., पृष्ठ १०'

दिया है। और जिन जातियों का प्राचीन इतिहास है उनको अर्वाचीन बतलाकर सैकड़ों वर्ष में उन लोगों ने देश, समाज और धार्मिक कार्यों में तन मन धन व्यय किया उनको भी मिट्टी में मिला दिया। इन खरतरों ने केवल अपना कलंक धोने के कारण जैन समाज के इतिहास को भी बड़ा भारी नुकसान पहुँचाया।

१४. जिनदत्त ने केवल स्त्रियों को जिन पूजा निषेध करके अन्तराय कर्म का वज्र पाप शिर पर नहीं उठाया था पर इसने तो और भी अनेक प्रकार का उत्सूत्र भाषण किया है जैसे :-

१५. श्री भगवती सूत्र के मूल पाठ में वर्णन आया है कि पोक्खली आदि अनेक श्रावकों ने असानपानादि खाते पीते अर्थात् एकासना करके पौषध व्रत किया था। पर जिनदत्त ने इस सूत्र पाठ को उस्थापकर इस प्रकार पौषध करने का निषेध कर दिया। जिनसे बिना अक्ल के खरतरों ने आज सात सौ वर्षों से इस प्रकार पौषध व्रत को छोड़ दिया और इस अन्तराय का खास कारण जिनदत्त ही था।

१६. भगवती सूत्र और सुखविपाक सूत्र में राजा उदाई तथा सुबाहुकुमार वगैरह ने तीन उपवास कर पौषध[१] किया था। इसमें चौदस पूर्णिमा तो पर्व दिन थे पर साथ में तेरस या एकम का दिन भी शामिल था। इसका मतलब यह होता है कि श्रावक को जिस दिन अवकाश मिले उसी दिन पौषध व्रत कर सकता है और जिनेन्द्र देवों की आज्ञा भी ऐसी ही है कि धर्म के कार्य में विलम्ब न करना। कारण न जाने आयुष्य किस समय पूर्ण होता है। पर अक्ल के दुश्मन खरतरों ने एवं जिनदत्त ने यह मिथ्या प्ररुपणा कर दी कि श्रावक सिवाय पर्व के पौषधव्रत कर ही नहीं सकता है। भला किसी को नवमी या एकम को पौषधव्रत करना है तो वह चौदस एवं आटें तक कब राह देखा करे और बीच में ही उनका देहान्त हो जाय तो इस अन्तराय कर्म का अधिकारी तो जिनदत्त ही हुआ न ? आज करीब ७००, ८०० वर्षों से बिचारे बिना अक्ल के खरतर उस हठ को लिये बैठे हैं। इच्छा के होते हुये भी वह बिना पर्व पौषधव्रत नहीं कर सकते हैं। इस अन्तराय का सब पाप जिनदत्तसूरि को ही लगेगा। क्योंकि इस प्रकार उत्सूत्र प्ररुपणा उसने ही की थी।

१७. मनुष्य एक झूठ बोलता है और झूठ को सत्य बनाने के लिये उसको दस झूठ और तैयार करने पड़ते हैं। यही हाल खरतरों का हुआ है। जिनदत्त ने

---

१. **श्री भगवती सूत्र श. १२ = १।२ श्री भगवती सूत्र श. १३।७ और सुख विपाक अ. १**

एक यह भी मिथ्या प्ररुपणा कर डाली कि सामायिक दंडक उच्चारने के बाद इरियावही करना। जो इरियाहवी करके सामायिक दंडक उच्चारने की विधि आगमानुसार परम्परा से चली आ रही थी। पर जिनदत्त के तो प्रबल मिथ्या कर्म का उदय हुआ था। उनको आगम की विधि क्यों सूझे ? बंडसूरा के सामने कितने ही पाक पकवान रख दिये जाये तो भी वह तो अपनी रुची वाले पदार्थ पर ही टूट पड़ता है। यही हाल खरतरों का है। भला खरतरों को पूछो कि सामायिक लेने के पूर्व तो इरियावही क्षेत्रशुद्धि व चित्तविशुद्धि के लिये या आते समय जीवों की विराधना वगैरह हुई हो इसके लिये की जाती है वह ठीक कही है, पर सामायिक दंडक उच्चारण करके अशुभ (सावद्य) योगों का पच्चखान कर लिया फिर तत्काल ही इरियावही की जाती है, यह किस पाप की इरियावही है ? क्या सामायिक दंडक उच्चारण भी खरतरों में पाप कर्म माना गया है कि जिसकी इरियावही की जाती है। पर इस उल्टे पंथ की सब बातें ही उल्टी हैं। जिनाज्ञा प्रतिपालक श्रावक को तो पहले इरियावही करके ही सामायिक दंडक उच्चरना चाहिये और इस विधि की सामायिक को ही शुद्ध सामायिक कही जाती है।

१८. खरतरों ने दो श्रावण हों तो पर्युषण दूसरा श्रावण में और दो भादरवा हों तो पहले भादरवा में पर्युषण करना मनःकल्पित ठहरा दिया। यदि इन अक्ल के दुश्मनों को पूछा जाय कि दो चैत्र या आश्विन हों तो तुम ओलियों किस चैत्र आश्विन में करते हों। दो अषाढ़ हों तो चतुर्मासिक प्रतिक्रमण किस अषाढ़ में करते हों। उत्तर में यही कहेगा कि ओलिये दूसरा चैत्र, दूसरा आश्विन मास में और चतुर्मासिक अतिक्रमण दूसरे अषाढ़ में करेंगे। क्योंकि इन अधिक मासों में पहला मास लुन मास माना गया है। अतः पूर्वोक्त कार्य दूसरे मास में ही करते हैं इत्यादि। फिर पर्युषण जैसा पर्व दूसरे श्रावण या पहले भादरवा में क्यों किया जाता है और इसका मतलब क्या है ? सिवाय कल्पित परम्परा के और कुछ भी उत्तर नहीं मिलता है।

यदि यह कहा जाय कि अषाढ़ चौमासी से ५० वे दिन पर्युषण करना शास्त्र में लिखा है। पर शास्त्र में यह भी तो लिखा है कि पर्युषण करने के बाद ७० वे दिन कार्तिक चतुर्मासी करके विहार कर देना। फिर दूसरे श्रावण या पहले भादरवा में पर्युषण करने वालों को कार्तिक चौमासी तक १०० दिन हो जाता है। तब शास्त्र की मर्यादा कैसे रह सकती है ?

प्रश्न – फिर यह दोनों पाठों का पालन कैसे हो सकता है ? कारण श्रावण या भादरवा दो होने से दूसरा भादरवा में पर्युषण करने से अषाढ़ चौमासी से ८० दिन होते हैं और दूसरा श्रावण या पहला भादरवा में पर्युषण करने से पिछले ७०

दिनों के स्थान १०० दिन हो जाते हैं।

शास्त्रकारों ने अधिक मास को लुन मास माना है। जैसे १६ दिन के पक्ष को भी पक्ष मानकर पाक्षिक प्रतिक्रमण किया जाता है। इस प्रकार अधिक मास के पहले मास को लुन मास मान लिया जाय तो ५०-७० दोनों मर्यादा का पालन हो सकता है और यही बात शास्त्रकारों ने कही है। पर हठधर्मी के कारण खरतर शास्त्र मर्यादा का अनादर कर अपने मिथ्यावाद को नहीं छोड़ते हैं। जैन तो क्या पर अन्य धर्मी भी लुन मास में शुभ कार्य नहीं करते हैं। तो पर्युषण जैसा पर्व लुन मास में हो ही कैसे सकता है? अर्थात् पर्युषणों के लिए भादरवा मास ही नियत माना गया है। अतः आत्मकल्याण और जिनाज्ञा पालन करने वाले मुमुक्षुओं को तो श्रावण दो हों तो भादरवा में और भादरवा दो हो तो दूसरे भादरवा में ही पर्युषण करना चाहिये।

पर्युषणों के लिये जैन शास्त्रकारों ने भादरवा मास नियुक्त किया है। किसी शास्त्र एवं ग्रन्थकारों ने श्रावण में पर्युषण करना नहीं लिखा है। फिर भी खरतरों ने आगमकारों के वचनों को उत्थाप कर दो श्रावण होने पर दूसरे श्रावण में पर्युषण करने का हठ पकड़ लिया है। अतः यह खरतरों की उत्सूत्र प्ररुपणा संसार को बढ़ाने वाली ही समझनी चाहिये।

इनके अलावा भी जिनदत्तसूरि की कई बातें हैं पर समय बहुत हो गया है। अतः आज तो इतने पर ही बातें समाप्त कर दी जाती हैं। इन बातों को सुन कर आत्मार्थी जीवों को इन खरतरों के जाल से बचते रहना चाहिये।

लो यह तो हुई जिनदत्त की बातें अब आगे कुछ और भी ऐसी बातें सुनाइये?

जिनचन्द्रसूरि की बातें

खरतर गच्छ की पट्टावली में जिनचंद्रसूरि नाम के कई आचार्य हो गये हैं क्योंकि पट्टावली में क्रमशः चतुर्थ पाट पर जिनचन्द्रसूरि का नाम आया करता है। खरतर लोग उन जिनचन्द्र सूरियों में से कई को प्रभाविक और कई को पतित भी मानते हैं और प्रभाविकों में दो जिनचन्द्रसूरि को विशेष माना है, जिसमें एक जिनचन्द्रसूरि को स्वर्गवास समय वि. सं. १२२३ का बतलाया जाता है और इनके जीवन के साथ कई घटनायें घटी बतलाते हैं। जैसे जिनचन्द्रसूरि ने दिल्ही के बादशाह को कई चमत्कार दिखाये पर यह बात खरतरों के स्वप्न की सृष्टि होना मालूम होती है। कारण वि. सं. १२२३ तक दिल्ही पर किसी बादशाह का राज नहीं था पर वि. सं. १२४९ तक हिन्दुसम्राट पृथ्वीराज चौहान का राज था। फिर

समझ में नहीं आता है कि खरतर लोग इस प्रकार की गप्प हांक कर अपने आचार्यों का महत्व बढ़ाने की कोशिश क्यों करते हैं ? और जैसे बादशाह के चमत्कार की कल्पना की है इसी प्रकार मस्तक से उछली हुई मणि की भी कल्पना कर डाली है। यह सब कल्पना के कलेवर की भांति निस्सार बातें हैं क्योंकि दिल्ही पर बादशाह का राज वि. सं. १२४९ के बाद में हुआ तब जिनचन्द्रसूरि का देहान्त सं. १२२३ में ही हो चुका था। अतः खरतरों का लिखना मिथ्या प्रलापरुप ही समझना चाहिये।

दूसरा जिनचन्द्रसूरि विक्रम की सत्तरहवीं शताब्दी में हुआ और उनके लिये खरतर लोग कहते हैं कि जिनचन्द्रसूरि ने बादशाह अकबर को प्रतिबोध दिया था। इस विषय में किसी अगरचंद भंवरलाल नाहटा बीकानेर वालों ने 'युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि' नाम का एक थोथा पोथा भी प्रकाशित करवाया। पर उस थोथा पोथा में जिनचन्द्रसूरि की मिथ्या प्रशंसा और जगत्गुरु भट्टारक आचार्य विजयहीरसूरीश्वरजी महाराज की निंदा के अलावा कुछ भी तथ्य नहीं है।

खरतर एक कृतघ्नी मत है क्योंकि जिस विजयहीरसूरि के प्रबल प्रताप से जिनचन्द्रसूरि को बादशाह अकबर के दर्शन का सौभाग्य मिला था उन्हीं विजयहीरसूरि की निंदा से इन कृतघ्नियों ने कागज काले किये हैं।

खरतरों की पट्टावली से पाया जाता है कि जिनचन्द्र परिग्रहधारी यति था। फिर भी वह था महत्वाकांक्षी। कर्मचन्द्र वच्छावत के दबाव से जिनचन्द्र ने नाम मात्र परिग्रह का त्याग तो किया पर किसी त्यागी साधुओं के पास उसने फिर से दीक्षा नहीं ली। अतः जिनचन्द्र को अव्रति यति ही कहा जा सकता है। क्योंकि केवल परिग्रह का त्याग करने से ही साधु नहीं कहलाता है।

क्लेश प्रिय खरतरों में अन्य गच्छियों के साथ अधिक से अधिक क्लेश करता है वह प्रभाविक कहलाता है। जिनचंद्रसूरि ने करीब चारसौ वर्ष की दबी हुई खरतर अग्नि को फिर से प्रज्वलित कर समाज में क्लेश का दावानल भभका दिया था। क्योंकि ऐसे लोगों की पूंछ क्लेश कदाग्रह से ही होती है। फिर भी उस समय जिनचन्द्र एवं खरतरों के दांत खट्टे करने वाले महोपाध्यायजी श्रीमान् धर्मसागरजी विद्यमान थे कि इतना क्लेश करने पर भी जिनचन्द्र की कुछ भी दाल न गली, जहां जहां शास्त्रार्थ हुआ वहां वहां जिनचन्द्र को पूरी तरह से पराजित होना पड़ा, जिसके प्रमाण में उपाध्यायजी ने एक ''कुपक्षकौशिकसहस्र किरण'' अपरनाम 'प्रवचन परीक्षा' नामक ग्रन्थ निर्माण किया था और वह मूल ग्रन्थ टीका के साथ अभी प्रकाशित भी हो चुका है। जिसका अध्ययन करने से पाठक स्वयं

समझ जायेंगे कि जिनचन्द्र एवं खरतरों को स्थान पर किस प्रकार लज्जित होना पड़ा था।

खरतरों ने अपने थोथे पोथे में यह भी लिख मारा है कि जिनचंद्रसूरि ने बादशाह अकबर को प्रतिबोध दिया था पर यह बिलकुल झूठी एवं कल्पित बात है। क्योंकि बादशाह अकबर को वि. सं. १६३९ में आचार्य विजयहीरसूरीश्वरजी ने प्रतिबोध दिया था। बाद नौ वर्ष तक उनके विद्वान साधु बादशाह को उपदेश देते रहे। तब जिनचंद्रसूरि वि. सं. १६४८ में बादशाह अकबर से मिले थे। पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि बादशाह अकबर को प्रतिबोध आचार्य विजयहीरसूरि ने दिया था या जिनचंद्रसूरि ने? यदि यह कह दिया जाय कि जिनचंद्रसूरि को बादशाह के पास जाने का सौभाग्य मिला यह विजयहीरसूरि का ही प्रताप है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं है क्योंकि उन्होंने पहले से बादशाह को जैनधर्म का अनुरागी बना रखा था।

बात ऐसी बनी थी कि आगरा में सेठानी चम्पाबाई ने छः महीनों की तपस्या की। जिसको सुनकर बादशाह आश्चर्य में डूब गया था फिर भी उसने चम्पाबाई की खूब परीक्षा की। जब बादशाह को विश्वास हुआ तो सेठानी से पूछा कि तुम को ऐसी शक्ति कहां से प्राप्त हुई? इस पर चम्पाबाई ने अपने गुरु विजयहीरसूरि का नाम बताया और यह कहा कि यह सब प्रताप उन महात्मा विजयहीरसूरीश्वरजी का है। अतः बादशाह अकबर एक गुणग्राही पुरुष था उसकी इच्छा विजयहीरसूरि के दर्शन करने की हुई। कई सज्जनों की सम्मति लेकर एक भक्तिपूर्ण फरमान लिखकर अहमदाबाद के सूबेदार को भेजकर कहलाया कि जहां आचार्य विजयहीरसूरि हों वहां इस फरमान को पहुँचाकर उन महात्मा से मेरी ओर से प्रार्थना करे कि आपके दर्शन की बादशाह अभिलाषा करता है। अतः आप कृपा कर आगरे जल्दी पधारें इत्यादि तथा महात्माजी आगरे की ओर रवाना हों उस रोज से रास्ते का सब इन्तजाम कर देना इत्यादि।

जब वह फरमान अहमदाबाद के सूबेदार के पास पहुँचा तो उसने वहाँ संघ अग्रेसरों को बुलाकर कहा कि आपके आचार्य विजयहीरसूरि इस वक्त कहाँ पर हैं? बादशाह का फरमान आया है। उनको बादशाह ने दर्शन करने के लिये बालुया है। संघ अग्रेसरों ने कहा कि इस समय सूरीश्वरजी गन्धार बन्दर विराजते हैं। सूबेदार ने कहा कि मैं अपने आदमियों को बादशाह का फरमान देकर गन्धार भेजता हूँ, अतः आपको भी अपने अग्रेसरों को भेजकर सूरिजी को आगरे पधारने के लिये कोशिश करनी चाहिये इत्यादि।

सूबेदार के आदमी और संघ के अग्रेसर लोग फरमान लेकर गन्धार बंदर सूरिजी की सेवा में पहुंचे, उधर से खम्भात के संघ अग्रेसरों को बुलाये, वे भी गन्धार आ पहुँचे थे। बादशाह का फरमान देकर आगरे पधारने की प्रार्थना की। इस पर सूरिजी ने उपस्थित श्रीसंघ की सम्मति ली। इस पर आपस में तर्क वितर्क के अन्त में यह निश्चय हुआ कि बादशाह आमंत्रण पूर्वक बुलाता है तो सूरिजी को अवश्य जाना चाहिये। एक यवन बादशाह को उपदेश देने से बहुत जीवों का उपकार होगा और जैनधर्म की प्रभावना भी होगी। सूरीश्वरजी का तपतेज और प्रभाव बड़ा ही जबर है। बादशाह पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा।

वि. सं. १६३९ मागसर सुद ५ को गन्धार से सूरिजी विहार कर क्रमशः अहमदाबाद पधार रहे थे। अहमदाबाद के सूबेदार एवं श्रीसंघ ने आपका शानदार स्वागत किया, तत्पश्चात् वहाँ के सूबेदार ने आगरे पधारने की प्रार्थना की और कहा कि रास्ते में किसी प्रकार की आवश्यकता हो फरमाइये, मैं सब इन्तजाम कर दूंगा। सूरिजी ने कहा हम पैदल चलने वालों के लिये किसी प्रकार के इन्तजाम की आवश्यकता नहीं है। बादशाह एवं आपकी भक्ति प्रशंसनीय है। क्षेत्र स्पर्शना होगा तो हमारा इरादा आगरे जाने का है।

तत्पश्चात् सूरिजी ने अहमदाबाद के श्रीसंघ की सम्मति ली। श्रीसंघ ने बड़ी खुशी के साथ सम्मति दे दी। अतः सूरिजी क्रमशः विहार करते हुये पाटण पधारे। वहां कई धर्मकार्य होने से कुछ दिन के लिये सूरिजी ठहर गये पर अपने विद्वान शिष्य उपाध्याय हर्षविमलादि ३५ साधुओं को आगरे की ओर विहार करवा दिया और वह क्रमशः फतेहपुर के नजदीक पधार रहे थे।

बादशाह हर समय सूरिजी के समाचार मंगाया करता था, जब बादशाह को खबर मिली कि सूरिजी के साधु फतेहपुर पधारने वाले हैं तो बादशाह भक्तिरंग से रंगा हुआ जैन साधुओं के समागम एवं दर्शन के लिये फतेहपुर आया। इतने में सूरिजी के साधु भी पधार गये, जिनका समागम करने से बादशाह को बड़ा ही आनन्द आया था। फिर भी वह सूरिजी की प्रतिक्षा कर रहा था।

आचार्य विजयहीरसूरि अपने शिष्य मंडल के साथ क्रमशः विहार करते हुये १६३९ जेठ शुक्ल १३ को फतेहपुर पहुँच गये, जिसको सुनकर बादशाह ने बहुत ही खुशी मनाई। उस समय आगरादि कई नगरों के संघ अग्रेसर भी सूरिजी के दर्शनार्थ फतेहपुर में आकर हाजिर हुये थे। सूरिजी के स्वागत के लिये तो कहना ही क्या था? बड़ा ही शानदार सम्मेला हुआ जब सूरीश्वर और सम्राट का मिलाप हुआ। वह दृश्य एक अनोखा ही था। तत्पश्चात् सूरीश्वरजी ने मधुर वाणी एवं

विद्वत्ता पूर्वक बादशाह को उपदेश देते हुये कहा कि ईश्वर, आत्मा, कर्म और सृष्टि अनादी हैं, सुकृत के शुभ और कुकृत्य के अशुभ फल जन्म जन्मान्तर में अवश्य भुगतना पड़ता है, इसके अलावा जैन साधुओं का आचार, विचार, दया, क्षमा, शील, सन्तोष और निस्पृहता के विषय में इस कदर से कहा कि जिसका बादशाह की आत्मा पर काफी प्रभाव हुआ। बादशाह ने जन्म भर में ऐसा उपदेश नहीं सुना था। पर आज एक दिन के उपदेश से जैन श्रमणों के लिये बादशाह के हृदय में एक खास स्थान बन गया। बादशाह ने समझा कि मैंने जैसे सेठानी चम्पाबहन से सुना था वैसा ही नहीं पर उससे भी अधिक कई गुना आपके अन्दर अलौकिक गुणों का अनुभव किया है।

बादशाह अकबर सूरीश्वरजी का उपदेश सुनकर बहुत प्रसन्न चित्त हुआ और सूरिजी की मुक्त कंठ से भूरि भूरि प्रशंसा करते हुये प्रार्थना की कि पूज्यवर! आप आगरे पधारकर चातुर्मास करावे और हमारे जैसे अज्ञ प्राणियों को उपदेश सुनाकर हमारा उद्धार करने की कृपा करें। इसी प्रकार आगरे के अग्रेसरों ने भी विनती की कि पूज्यवर! आपके पधारने से बड़ा भारी लाभ और जैन शासन का उद्योत होगा। अतः आप जरुर आगरे पधारकर चातुर्मास करावें। सूरिजी ने बादशाह एवं आगरे के अग्रेसरों से कहा कि जैसी क्षेत्र स्पर्शना।

सूरीश्वरजी फतेहपुर से चलकर आगरे पधारे। बादशाह ने अपने शाही लवाजमे से सूरिजी का बड़ा भारी सत्कार किया। संघ में भी सर्वत्र आनन्द छा रहा था। क्यों नहीं ? ऐसे प्रभावशाली सूरीश्वर का पधारना और एक मुगल बादशाह पर उनका इस प्रकार जबरदस्त प्रभाव पड़ना। एक आगरे के संघ ही को क्यों पर सकल जैन समाज को इस बात का बड़ा ही गौरव एवं खुशी प्रगट हुई थी।

वि. सं. १६३९ का चातुर्मास सूरीश्वरजी का आगरे में हुआ। बादशाह अकबर सूरीश्वरजी के उपदेश रुपी अमृत को पान कर जैन धर्म का खूब ही अनुरागी बन गया था। दया भगवती ने तो बादशाह के हृदय में खास स्थान ही बना लिया था, क्योंकि सूरिजी का व्याख्यान विशेषतया अहिंसा विषय पर ही होता था।

जब पर्वाधिराज श्रीपर्युषण पर्व का शुभागमन हुआ तो सूरिजी ने बादशाह को उपदेश दिया कि पर्युषणों के आठ दिन बड़े ही महत्व एवं धर्म साधन करने के होते हैं। अतः इन आठ दिनों में किसी प्रकार के जीवों की हिंसा न होनी चाहिये। बस फिर तो देरी ही किस बात की थी ? कारण, बादशाह जान गया था जैन साधु निज के लिये न तो कुछ मांगते हैं और न कुछ देने पर लेते ही हैं। अतः बादशाह ने खूब प्रसन्न हो आठ दिन सूरिजी के उपदेश के और सूरिजी के

प्रति अपनी भक्ति के चार दिन अपनी ओर से एवं बारह दिन का फरमान लिख दिया कि मेरे राज की जहाँ सत्ता है वहाँ इन बारह दिनों में किसी भी जीव की हिंसा न होगी और यह हुक्म जब तक सूर्यचंद्र रहेगा वहाँ तक बहाल रहेगा।

सूरिजी ने बादशाह के हृदय को इस प्रकार दयामय बना दिया कि अन्यान्य प्रसंगो पर उपदेश देकर एक वर्ष में ६ मास जीव हिंसा बंध करवा दी। बादशाह ने फरमान भी लिख दिया। इतना ही क्यों पर सूरिजी के उपदेश से बादशाह ने जैनों के मुख्य मुख्य शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों की रक्षा के निमित्त भी फरमान लिख दिया।

बादशाह ने सोचा कि यह तो सब परोपकार के लिये है पर मैंने सूरिजी को इतनी दूर से बुलाया एवं चातुर्मास करवाया तो इनके लिये मैंने क्या किया? अतः कई सज्जनों की सम्मति लेकर बादशाह ने सूरीश्वरजी के गुणों पर अत्यन्त मुग्ध हो कर सूरीश्वरजी को **'जगद्गुरु'** पद से विभूषित कर अपने आपको कृतार्थ हुआ समझा। उस दिन से बादशाह के दिये हुये 'जगद्गुरु' बिरुद से विजयहीरसूरीश्वरजी को 'जगद्गुरु भट्टारक जैनाचार्य विजयहीरसूरीश्वर' कहा एवं लिखा जाने लगा।

अखिल जैन समाज में **'जगद्गुरु बिरुद'** विजयहीरसूरीश्वर को ही प्राप्त हुआ है। वास्तव में आप इस पद के योग्य भी थे। कारण एक मुसलमान बादशाह के हृदय को पलट कर उससे एक वर्ष में ६ मास हिंसा बन्द करा देना कोई साधारण बात नहीं थी, परन्तु सूरिजी ने अपने तपतेज और प्रभाव से उसको कर बतलाई। इतना ही क्यों पर किसी की सिफारिश किये बिना खास बादशाह ने सूरिजी के गुणों पर मुग्ध होकर 'जगद्गुरु बिरुद' दे उनका योग्य सत्कार किया।

चातुर्मास समाप्त होने के बाद भी बादशाह का अत्याग्रह था कि अभी आप यहां ही विराजें पर वे समयज्ञ सूरीश्वरजी वहां कब ठहरने वाले थे? फिर भी बादशाह के आग्रह का मान रखने के लिये अपने विद्वान शिष्य उपाध्याय शान्तिचन्द्र व भानुचन्द्रादि को वहां ठहरा कर आपने विहार कर दिया[१]।

तपागच्छ एवं जगद्गुरु विजयहीरसूरिजी के विद्वान साधुओं का बादशाह की सभा में निरन्तर नौ वर्ष तक आना जाना और उपदेश देना चालू रहा था।[२]

---

१. **हीरसोभाग्य काव्य, जगद्गुरु काव्य, विजयप्रशस्ति वगैरह ग्रन्थों में लिखा है कि जगत् के प्राणि मात्र की हित की भावना के कारण ही बादशाह अकबर ने आचार्य विजयहीर-सूरीश्वरजी को जगद्गुरु बिरुद दिया था और सूरिजी इस पद के पूर्ण योग्य भी थे।**

२. **इस के विस्तृत वर्णन के लिए देखो मुनिवर्य विद्याविजयजी महाराज का निर्माण किया हुआ ग्रन्थ - ''सूरीश्वर और सम्राट''**

यह तो हुई जगद्गुरु विजयहीरसूरीश्वरजी की बात, अब थोडी जिनचन्द्रसूरि की बात पाठकों को सुना देता हूँ।

बादशाह अकबर के पास एक कर्मचन्द्र वच्छावत बीकानेर वाला रहता था। बीकानेर के राजा से उनकी खटपट चलती थी। अतः वह बादशाह के पास आ गया था। राजाओं की कई राजरमत एवं पोलीसी हुआ करती हैं। बादशाह कर्मचन्द को अपना कर रखता था और इसमें भी अकबर का कोई स्वार्थ अवश्य था।

बादशाह अकबर की सभा में एवं राज में तपागच्छ का इस प्रकार प्रभाव देख कर्मचन्द ने सोचा कि केवल तपागच्छ वालों ने ही इस प्रकार का यश एवं नाम कमा लिया है तो मैं खरतरगच्छ वालों को बुलाकर थोड़ा बहुत हिस्सा उनको भी दिलाऊं। यद्यपि कर्मचन्द कोरंटगच्छ का श्रावक था पर खरतरों के अधिक परिचय के कारण वह खरतरों का विशेष अनुरागी था।

समय पाकर कर्मचन्द ने बादशाह से अर्ज की कि खरतरगच्छ में भी एक अच्छा फकीर है। उनसे भी आपको मिलना चाहिये। इस पर (बादशाह सबको खुश रखने वाला था) उसने कहा कि बुलाओं मैं उनसे अवश्य मिलूँगा। कर्मचन्द ने बादशाह से जिनचन्द्रसूरि के नाम फरमान लिखवाकर खम्भात भिजवाया। उस समय जिनचन्द्रसूरि खम्भात में थे।

कर्मचन्द बड़ा ही बुद्धिमान एक मुत्सद्दी था पर उस समय उसको यह नहीं सूझा कि अभी ऋतु चातुर्मास की है जिनचन्द्रसूरि करीब ८०० मील दूर बैठा है। वह चातुर्मास में ८०० मील कैसे आ सकेगा? यदि आवेगा तो उसके आने से जैन धर्म की प्रभावना होगी या निन्दा? बादशाह अकबर भी कोई भोलाभाला व्यक्ति नहीं है कि चातुर्मास में अपने धर्म के असूलों के भंग करने वालों की इतनी कदर करेगा कि जितनी विजयहीरसूरिकी की थी इत्यादि। पर जो कुछ होता है वह तकदीर के अनुसार ही होता है इसमें कर्मचंद क्या करे?

जब बादशाह का फरमान जिनचंद्रसूरि के पास पहुँचा तो उसके हर्ष का ठिकाना न रहा। जिनचंद्र जैसे यति को बादशाह बुलावे फिर तो वह फूला ही क्यों समावे? जिनचन्द्र इस प्रकार का बेभान हो गया कि उसने चातुर्मास के समय न बरसात की परवाह की न नीलन फूलन एवं त्रस जीवों की दया देखी और न जिनाज्ञा एवं परम्परा मर्यादा की आन रक्खी और आषाढ़ शुक्ल ८ को खम्भात से आगरे जाने के लिये विहार का निश्चय कर लिया। इस पर खम्भात के संघ ने एकत्र होकर दुःख के साथ बड़ा ही अफसोस किया कि जिनचन्द्रसूरि इस प्रकार चातुर्मास में विहार को उद्यत हुये हैं यह एक आश्चर्य एवं दुःख की बात है। अतः

श्रीसंघ ने जिनचन्द्रसूरि को बहुत कुछ समझाया कि आपने चातुर्मास एवं बरसात के दिनों में विहार करने का विचार क्यों किया है? इससे तीर्थंकरों की आज्ञा का भंग, शास्त्राज्ञा का उल्लंघन तथा त्रसस्थावर जीवों की हिंसा और साथ में जैनधर्म की निन्दा होगी। अतः यहां का संघ इस विहार का सख्त विरोध करता है। अतः आपको बरसात के दिनों में एवं चातुर्मास में विहार नहीं करना चाहिये।

जिनचंद्र ने कहा कि बादशाह अकबर का आमंत्रण फरमान आया है इसलिये मुझे आगरे जाना है। लाभालाभ का कारण हो तो साधु चातुर्मास में भी विहार कर सकता है। अतः मेरे विहार के लिये श्रीसंघ को विरोध नहीं करना चाहिये।

श्रीसंघ ने कहा कि महाराज बादशाह अकबर को तो नौ वर्ष पहले आचार्य विजयहीरसूरि ने प्रतिबोध दे दिया था और उसके बाद भी नौ वर्ष हुए उनके साधु उपदेश दे ही रहे हैं। फलस्वरुप बादशाह जैनधर्म का पक्का अनुरागी बन गया है। फिर आप चातुर्मास में विहार[१] करके वहां पधार रहे है तो वहां ऐसा कौनसा नया काम करने का है? यदि आपको पधारना ही है तो चातुर्मास के बाद पधारना और यहाँ से आगरा कोई ५-१० कोस नहीं है कि आप एक दो विहार में वहाँ पहुँच जावें। आगरा यहाँ से करीब ८००-९०० मील के फासले पर है। आपका सब चातुर्मास विहार में ही खत्म हो जायेगा। यदि आप चातुर्मास एवं बरसती बरसात में विहार करोगे तो ग्राम ग्राम जैनधर्म की निन्दा होगी। उपकार करना तो दूर रहा पर जैनधर्म पर एक बड़ा कलंक लगेगा और अन्य मत के लोग कहेंगे कि जैन साधु चातुर्मास एवं बरसात के दिनों में भ्रमण करते फिर रहे हैं। दूसरे त्रस स्थावर जीवों को भी गहरी उत्पत्ति हो गई है। इन जीवों की भी आपको करुणा रखनी चाहिये और आपने चातुर्मास खम्भात में करने का वचन भी दिया था, उसका भी पालन करना कैसे हो सकेगा? अतः यहाँ के श्रीसंघ का तो यही कहना है कि चातुर्मास तो आप यहाँ ही करावें बाद विहार कर आगरे पधारना।

पर जिनचन्द्रसूरि किसकी सुनने वाला था? जब कि उसको तीर्थंकरों की आज्ञा की परवाह नहीं, लोकापवाद का भय नहीं, त्रस स्थावर जीवों की दया नहीं तो फिर श्रीसंघ की तो वह सुनता ही क्यों? आखिर श्रीसंघ का सख्त विरोध होने पर भी जिनचन्द्र ने वि. सं. १६४८ को आषाढ़ शुक्ल ८ को खम्भात से विहार

---

१. **गुजरात प्रान्त में आद्रा नक्षत्र लग जाने से चातुर्मास ही समझा जाता है और इन दिनों के पूर्व ही वर्षा होनी शुरु हो जाती है। त्रस स्थावर जीवों की उत्पत्ति भी प्रचुरता से हो जाती है। अतः आर्द्रा नक्षत्र लग जाने के बाद गुजरात में प्रायः जैन साधु विहार नहीं करते हैं यही अभिप्राय खम्भात के श्रीसंघ का था।**

कर दिया। इसमें जिनचन्द्र के कई यति लोग भी खिलाफ थे पर उन बिचारों की सुने कौन ?

जिनचन्द्र क्रमशः विहार कर आषाढ़ शुक्ल १३ को अहमदाबाद पहुँचे। जिसको सुनकर श्रीसंघ ने दुःख के साथ बड़ा ही अफसोस किया कि यति लोग चातुर्मास एवं बरसात के दिनों में इस प्रकार भ्रमण क्यों करते हैं ? वहाँ के श्रीसंघ ने जिनचन्द्र को बहुत समझाया पर वह अभिमान का पुतला जिनचन्द्र सुने किसकी ? अहमदाबाद के श्रीसंघ की सख्त मनाई होने पर भी जिनचन्द्र ने अपने यतियों के साथ वहाँ से विहार कर दिया, अब तो जिनचन्द्र जहाँ जाता वहाँ तमाशगिरी लोग देखने के लिये एकत्र हो जाते, क्योंकि इस प्रकार जैन यतियों का चातुर्मास में विहार करना पहले पहल ही था। इसके पूर्व पतित से पतित किसी यति ने भी चातुर्मास में विहार नहीं किया था। जिनचन्द्र महेसाने आया। वहाँ के श्रीसंघ ने भी इस प्रकार के विहार का सख्त विरोध किया। वहाँ से चलकर पालनपुर आया। वही हाल हुआ जो महेसाना में हुआ था।

यह सादी और सरल बात साधारण बुद्धिवालों की समझ में आ सकती है कि जैन यति के वेष में इस प्रकार चातुर्मास एवं बरसात के दिनों में फिरता फिरे और उसका श्रीसंघ सख्त विरोध करे इस में शंका ही किस बात की ? पर जब मनुष्य महत्त्वाकांक्षी हो अभिमान के हस्ती पर सवार हो जाता है तब वह अंधा बन जाता है। फिर भला बुरा उसको नहीं सूझता है, इसके लिये जमाली और गौसाला का उदाहरण मौजूद है। यही हाल जिनचन्द्र का हुआ।

आगे चलकर जिनचन्द्र सिरोही आया। वहां के संघ ने भी इस विहार का सख्त विरोध किया। इधर पर्युषणों के दिन भी आ गये थे। जिनचंद्र के हृदय में बादशाह अकबर से मिलकर मान प्राप्त करने की बिजली सतेज हो रही थी, अतः उसका विचार पर्युषण भी विहार में ही करने का था। पर सिरोही संघ ने अपनी सत्ता का सख्त उपयोग किया, जिससे जिनचन्द्र को लाचार हो पर्युषण सिरोही में ही करना पड़ा। जैन साधु जहाँ सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करता है वहाँ ७० दिन ठहरना निश्चित हो जाता है। पर जिनचन्द्र साधु था ही कहाँ !? वह शास्त्राज्ञा की परवाह ही क्यों करे। पर्युषण समाप्त होते ही वहाँ से जावलीपुर की ओर विहार कर दिया। सिरोही श्रीसंघ ने समझ लिया कि यह जैन यति क्या जैन धर्म को कलंकित करने वाला जैनधर्म का कट्टर दुश्मन है कि इस प्रकार चातुर्मास में विहार कर जैन धर्म की निन्दा करवा रहा है ?

इधर तो जिनचन्द्र जावलीपुर पहुँचता है उधर आगरे में समाचार मिला कि

जिनचन्द्र चातुर्मास एवं बरसात के दिनों में विहार कर आगरे आ रहा है। वहां के लोगों ने सोचा कि यदि जिनचन्द्र चातुर्मास में आगरे आ गया तो आचार्य विजयहीरसूरि ने जो बादशाह पर जैन धर्म का प्रभाव डाला है वह मटियामेट कर डालेगा।

समय पाकर किसीने बादशाह अकबर को अर्ज की कि हमारे जैन साधु चातुर्मास में विहार नहीं करते हैं क्योंकि बरसात के कारण जीवों की उत्पत्ति बहुत हो जाती है। अतः जैन धर्म के उसूल पर पाबन्द रहने वाले जैन साधु चातुर्मास में विहार नहीं करते हैं। सुना गया है कि आपके फरमान से जिनचन्द्रसूरि चातुर्मास में विहार कर आ रहे हैं और वह गुजरात से जावलीपुर तक आ भी गये हैं इत्यादि।

बादशाह ने सोचा कि जब जिनचन्द्रसूरि अपने धर्म के उसूलों को भी पालन नहीं करता है तो यहां आकर वह क्या करने वाला है? अतः बादशाह ने फौरन एक फरमान[१] जिनचन्द्रसूरि के नाम लिख कर जावलीपुर भेज दिया, जिसका आशय यह था कि आप चातुर्मास में यहां न पधारें। यदि आपको आना है तो चातुर्मास के बाद पधारना इत्यादि।

बादशाह का यह फरमान जावलीपुर जिनचन्द्रसूरि के पास पहुँचा। जिनचन्द्रसूरि ने किसी से पढ़ाकर उसको सुना तो एक दीर्घ निश्वास डाल कर पश्चाताप करने लगा कि हाय रे हाय! जिस बादशाह अकबर से मिलने के लिये मैंने तीर्थंकरों की आज्ञा का अनादर किया, शास्त्र मर्यादा और परम्परा का भंग किया, ग्राम ग्राम के श्रीसंघ की आज्ञा का उल्लंघन किया, त्रस स्थावर जीवों की विराधना की और जैन धर्म की निन्दा करवाई, फिर भी इन सब का नतीजा यह हुआ कि बादशाह की मनाई के हुकम का फरमान आ गया। शायद उस दिन जिनचन्द्र ने आहार पानी भी नहीं किया होगा। इतना ही क्यों पर जिनचन्द्रसूरि के कई साधु शुरु से इस प्रकार चातुर्मास में विहार करने के विरुद्ध थे, वे भी बोल उठे कि सूरिजी! हम लोगों ने आपसे अर्ज की थी कि बादशाह अकबर कहीं भाग जाने वाला नहीं है। आप चातुर्मास के बाद विहार कर आगरे पधारना पर आपने किसी की भी नहीं सुनी। खैर, लो अब पधारो आगरे और दो बादशाह अकबर को उपदेश! इसपर जिनचन्द्र ने कहा साधुओं! आज तुम हमारे दुश्मन बन कर 'दादा पर खार

---

१. **उस समय लाहौर से सम्राट ने दो व्यक्तियों के साथ फरमान पत्र सूरिजी को भेजा। जिसमें लिखा था कि चातुर्मास में आपको आने का कष्ट होता होगा, अतएव चातुर्मास पूरा करके पधारना।**

यु. प्र. जि., पृष्ठ ३९

क्यों लगा रहे हो' मैंने खम्भात से विहार किया था उस वक्त यह उम्मेद नहीं थी कि बीच में ही बादशाह का इस प्रकार मनाई का हुक्म आ जायेगा। ये तो किसी अन्य गच्छीयों की भद्दी कार्यवाई है। तुम घबराते क्यों हो ? मैं बादशाह से मिलूंगा तब इसका बदला ले ही लूंगा। साधुओं ने कहा कि आप अन्ध गच्छीयों के साथ वृथा ही वैरभाव बाँध रहे हैं। जिसका ही यह फल है कि आज आपको इस प्रकार निराश होना पड़ा है इत्यादि। गुरु शिष्यों में दांताकीची हो ही रही थी कि इतने में कई श्रावक आ गये अतः वे सब चुपचाप हो गये।

यह वही जावलीपुर है कि पाटण में जिनदत्तसूरि स्त्रियों को जिनपूजा निषेध करने के कारण ऊँट पर सवार होकर जावलीपुर आया था। अतः जावलीपुर का श्रीसंघ जिनचन्द्र को ही नहीं पर इनके पूर्वजों को भी अच्छी तरह जानता था। जिनचन्द्र को चातुर्मास में आनेका कारण पूछा। जिनचन्द्र ने कहा कि बादशाह अकबर का आमन्त्रण आया था, अतः मैं आगरे जा रहा था पर आज बादशाह का मनाई का हुक्म आ गया है। अतः मैं विचार में पड़ गया हूँ कि अब मैं आगरे जाऊं या यहां ठहर जाऊं ?

संघ अग्रेसरों ने कहा महाराज ! आप से तो बादशाह अकबर ही अच्छा है कि उनके हृदय में त्रस स्थावर जीवों की इतनी दया है कि आपको चातुर्मास में विहार करने की मनाई कर दी, इतना ही क्यों पर उसने जैनधर्म की ग्राम ग्राम निन्दा होने को भी रोक दिया। इसका श्रेय आचार्य विजयहीरसूरि को ही है कि उन्होंने बादशाह को प्रतिबोध देकर जैनधर्म का पक्का अनुरागी एवं दयाधर्मी बनाया है इत्यादि। अब आप चातुर्मास के शेष दिन यहाँ ही ठहर जाइये। बस जिनचन्द्रसूरि ने ज्यों त्यों करके शेष दिनों तक जावलीपुर में ही ठहरने का निश्चय किया ठीक है, महत्वाकांक्षियों का यही हाल हुआ करता है।

खम्भात, अहमदाबाद, महेसाना, पालनपुर और सिरोही वगैरह के श्रीसंघ ने जब जिनचन्द्रसूरि का हाल सुना कि बादशाह अकबर का फरमान आ गया कि आप चातुर्मास में आगरे न पधारें इत्यादि इस पर और भी अफसोस किया कि एक जैन यति इस प्रकार यतियों को साथ में लेकर ग्राम ग्राम जैन धर्म की निन्दा करवाता चातुर्मास में फिरता फिरे यह कितने दुःख की बात है। भला जिस व्यक्ति को जिनेन्द्रदेव की आज्ञा का भय नहीं, अपने व्रतों का ख्याल नहीं, लोकापवाद की परवाह नहीं वह बादशाह के पास जाकर क्या उजाला करने वाला है। इस जिनचन्द्र की बजाय तो बादशाह ही अच्छा है कि उसने जीवों की करुणा लाकर

जिनचन्द्र को चातुर्मास में विहार करने से रोक दिया।

नाहटा वरादरो ने 'युगप्रधानजिनचन्द्रसूरि' नामक थोथे पोथे में जिनचन्द्रसूरि के चातुर्मास के विहार की प्रशंसा कर कल्पना के पुल बाँध दिये हैं। पर यह बात किसी सभ्य मनुष्य के हृदयगम्य तो होनी चाहिये कि जैनयति के वेष में इस प्रकार चातुर्मास एवं बरसती बरसात में विहार करना। चातुर्मासिक प्रतिक्रमण किसी ग्राम में तो पर्युषण किसी ग्राम में करे जिसकी श्रीसंघ प्रशंसा करे यह सिवाय पक्षपातियों के कौन मान सकता है?

यदि कोई अन्य गच्छवाला इस प्रकार चातुर्मास में विहार कर देता तो खरतर उसकी पेट कूट-कूट कर निन्दा करते पर जिनचन्द्रसूरि तो थे खरतर। उनकी निन्दा खरतर कैसे कर सकते हैं? अतः जिनचन्द्रसूरि का कलंक धो डालने को उन्होंने झूठी झूठी प्रशंसा की हैं।

हाँ कई जैनेतर एवं तमाशगीर लोग एक नई बात देखने के लिये एकत्र हो गये हों कि छकाया के रक्षक और मुँह से दया दया की पुकार करने वाले जैनयति चातुर्मास में अनंत स्थावर एवं असंख्य त्रस जीवों का मर्दन करते हुये किस प्रकार भ्रमण करते है? तथा शायद नाहटाजी अभी नये लेखक प्रगट हुए हैं। उन्होंने अपनी लेख पद्धति एवं शब्दकोष का परिचय करवाया हो तो बुरा भी नहीं है।

शायद कोई दृष्टिरागी व्यक्ति कह दे कि जिनचन्द्रसूरि को बादशाह ने आमन्त्रण भेज कर बुलाया था और वह बादशाह को प्रतिबोध देने को चातुर्मास में विहार कर आगरे जाते थे। इस बात की श्रीसंघ को खुशी थी, अतः उन्होंने जिनचन्द्रसूरि के चातुर्मास के विहार का अच्छा स्वागत किया था।

अगर जिनचन्द्र में इतनी योग्यता होती तो बादशाह कहीं भागकर जाने वाला नहीं था। वे चातुर्मास के बाद विहार कर आगरे जा सकते थे। दूसरे जैन शास्त्रों में 'तन्नाणं तारियाणं' कहा है न कि 'डूबाणं तारियाणं' अर्थात् आप तरने वाला ही दूसरों को तार सकता है और उनका ही दूसरो पर प्रभाव पड़ता है और जो आप डूबने वाले हैं उनका न तो दूसरों पर प्रभाव ही पड़ता है और न वे दूसरों को तार ही सकते हैं। सच कहा जाय तो साधु था ही कौन? जिनचन्द्र तो एक महत्वाकांक्षी यति था। उसकी लगन तो यह थी कि तपागच्छ वालों ने बादशाह की सभा में जाकर यश एवं नाम कमाया तो मैं पीछे क्यों रहूँ? पर कहाँ तपागच्छ वालों की योग्यता और कहाँ जिनचन्द्र?

खैर। जिनचन्द्रसूरि जावलीपुर से विहार कर क्रमशः आगरे की ओर जा

रहा था पर जिनचन्द्र ने सुना कि न तो आगरा में कर्मचन्द है और न बादशाह ही है पर जिनचन्द्र को तो बादशाह से मिलना था अतः वह चलकर दिल्ही आये वहां भी न कर्मचन्द न बादशाह। जिनचन्द्र ने सुना कि बादशाह इस समय लाहौर में हैं, इस हालत में जिनचन्द्रसूरि को लाहौर की ओर विहार करना पड़ा।

अहा–हा कलिकाल। तुमको भी नमस्कार है कि एक जमाना यह था कि जैनाचार्यों के पीछे पीछे राजा महाराज फिरते रहते थे। आज जमाना यह है कि बादशाह के पीछे पीछे जैनयति फिर रहे हैं।

अस्तु। जिनचन्द्रसूरि हापणई ग्राम में पहुँचे, वहाँ से लाहौर करीब ४० कोस के फासले पर था, जैसे विजयहीरसूरि का आगमन सुन बादशाह अकबर फतेहपुर तक सामने आया था वैसे जिनचन्द्र भी बादशाह की राह देख रहा था परन्तु बादशाह ने तो जिनचन्द्र की कदर पहले से ही कर ली थी कि उसने अपने धर्म के उसूल तोड़ कर चातुर्मास में विहार कर दिया था।

हापणई से आदमी ने जाकर कर्मचन्द को खबर दी, शायद कर्मचन्द ने बादशाह को कहा भी होगा पर इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया फिर भी ''मान या न मान मैं तेरा महेमान'' जिनचन्द्रसूरि लाहौर पहुँच गया।

कर्मचन्द लाहौर था। उसने दृष्टिराग के कारण जिनचन्द्रसूरि का स्वागत किया और समय पाकर जिनचन्द्र को ले जाकर बादशाह से मिलाया। अकबर एक पक्का मुत्सद्दी और परीक्षक था। जिनचन्द्रसूरि की वार्तालाप से समझ गया कि कहाँ विजयहीरसूरि की योग्यता और कहाँ यह मान का पुतला एवं खुशामदी भक्त जिनचन्द्र। जिनचन्द्र की बातों में महत्व की बात यह थी कि जिनचन्द्र ने बादशाह से अर्ज की कि तपागच्छ वाले[१] हमारी निन्दा करते हैं, अतः आप उनको समझा दें इत्यादि। बस, बादशाह समझ गया कि यह सच्चा फकीर नहीं है। क्योंकि जिसको अभी निन्दा प्रशंसा का ख्याल है वह फकीर हो किस बात का? मुझे यह स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि चींटी जैसे क्षुद्र प्राणियों की रक्षा करने वाले

---

१. **हमारे चरित्र नायक श्रीजिनचन्द्रसूरि ने सम्राट् के सामने उपस्थित विद्वान् मंडली में उपरोक्त प्रवचन परीक्षादि ग्रन्थों की निःसारता और असभ्यता को सिद्ध किया। विद्वानों ने भी उसे अप्रमाणित और अमान्य प्रमाणित किया।**

यु. प्र. जि., पृष्ठ १२४

नाहटाजी के इन शब्दों से पता मिलता है कि जिनचन्द्रसूरि बादशाह को प्रतिबोध देने को नहीं पर अपने घर का रोना रोने को गया था।

जैन महात्मा आपस में लड़ते झगड़ते एवं आपस में एक दूसरे की निंदा करते होंगे। जिनचन्द्र के शब्दों से बादशाह समझ गया कि यह खुद निन्दाखोर होगा अतः बादशाह ने कह दिया कि तुम तपों की निन्दा मत करो और वे तुम्हारी निन्दा न करें। यदि तुम्हारी और उनकी किताबों में निन्दा के शब्द हों तो तुम दोनों निकाल[१] दो इत्यादि–

वाह रे ! बादशाह को उपदेश देने वाले जिनचन्द्र तुमने तो अपनी योग्यता का बादशाह को ठीक परिचय करवा दिया कि हम तपा खरतर आपस में लड़ते झगड़ते और परस्पर निंदा करते हैं। और आपस में निन्दा के ग्रन्थ लिख उसको चिरस्थायी बना रहे हैं। फिर तो बादशाह जिनचन्द्र की कदर करे इसमें आश्चर्य की बात ही क्या थी ? कारण, जिनचन्द्र ने अपनी योग्यता का परिचय अपने शब्दों में ही करवा दिया था। जिनचन्द्र बादशाह को प्रतिबोध देने क्या आया था वह तो अपने घर के झगड़ों का इन्साफ करवाने के लिए आया था। पर इसको इसमें सफलता नहीं मिली। इतना ही क्यों पर बादशाह ने तो उल्टा जिनचन्द्र को प्रतिबोध दिया था कि तुम आपस में निन्दा मत करो।

कई खरतर यह भी कहते हैं कि जिनचन्द्रसूरि की योग्यता नहीं होती तो बादशाह उनको आठ दिन जीव हिंसा बन्द का फरमान कैसे देता ?

यह फरमान जिनचंद्र की योग्यता पर नहीं मिला है। पर इसमें खास तो आचार्य विजयहीरसूरि की कृपा का ही कारण है। और जिनचंद्र ने जो प्रार्थना की है वह भी विजयहीरसूरि का आशय लेकर ही की थी। जो खास फरमान में बादशाह ने लिखा है कि :–

---

१. **बादशाह अपने फरमान में हुक्म करता है कि जो झगड़ा ईश्वर भक्त हीरविजयसूरि व विजयसेन सूरि के सम्प्रदाय वालों से हुआ था वह बादशाह के सामने अर्ज किया गया, बादशाह ने हुक्म फरमाया कि अब उनके अनुयायियों में किसी भी कारण से झगड़ा न हो और वह एक दूसरों की बदी (बुरी) न चाहे और जो कुछ उनके चेला धर्मसागर ने 'प्रवचन परीक्षा' नामक पुस्तक में उनकी बुराई लिखी हैं उनको उसमें से दूर कर दें और यदि उन्होंने अपनी पुस्तकों में उसके विरुद्ध कुछ लिखा है तो उसे वे भी दूर कर दें, क्योंकि ईश्वर भक्ति की पहली पूंजी (सीढ़ी) यह है कि ऐसे कार्यों से दूर रहे।**

पु. ग्र. जि., पृष्ठ ३०५

बादशाह जिनचन्द्र की द्वेषपूर्ण बातें सुन समझ गया कि यह ओछी प्रकृति का मनुष्य है। इसकी विजयहीरसूरि के समान साधु प्रकृति नहीं, अतः उसने उसको प्रतिबोध करते हुए कहा कि तुम उनकी निन्दा न करो वे तुम्हारी न करेंगे। बताइयें साधु अकबर था या जिनचन्द्र ?

''उसने (जिनचन्द्र ने) प्रार्थना की कि इससे पहले विजयहीरसूरि ने सेवा में उपस्थित होने का गौरव प्राप्त किया था और हर साल बारह दिन मांगे थे, जिनमें बादशाह के मुल्क में कोई जीव मारा नहीं जावे और कोई आदमी किसी पक्षी मछली और उनके जैसे जीवों को कष्ट न दे। उसकी प्रार्थना स्वीकार हो गई थी। अब मैं भी आशा रखता हूँ कि एक सप्ताह का और वैसा ही हुक्म इस शुभचिंतक के वास्ते हो जाय।''

''युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि, पृष्ठ २८८''

उपरोक्त लेख से पाठक समझ गये होंगे कि जिनचन्द्र ने विजयहीरसूरि का नाम लेकर प्रार्थना की और बादशाह ने भी विजयहीरसूरि के लिहाज से फरमान दिया था, न कि जिनचन्द्रसूरि की योग्यता पर।

दूसरे बादशाह अकबर एक चतुर मुत्सद्दी था, कर्मचन्द वच्छावत को अपना बनाकर अपने पास में रखना था। जिनचन्द्र उसका गुरु था और शुभचिंतक बनकर आशा करने वाले जिनचन्द्र को निराश भी नहीं करना था। अत: बादशाह ने फरमान लिख दिया। इसमें न तो जिनचन्द्र का महत्व था और न खरतरों को फूलना ही चाहिये।

अब जरा ध्यान लगाकर देखना चाहिये कि कहां तो विजयहीरसूरि का तप तेज और प्रभाव और कहां जिनचन्द्रसूरि की योग्यता–

१. विजय-हीरसूरि को बादशाह भक्ति पूर्वक आमंत्रण का फरमान अहमदाबाद के सूबेदार को भेजता है और उनके विहार के समाचारों को मंगाता हुआ दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहा है।	१. कर्मचंद वच्छावत के कहने से जिनचन्द्रसूरि को फरमान भेजता है पर जब जिनचंद्र चातुर्मास में विहार करता है तब वापिस मनाई का हुक्म भेजता है।
२. विजयहीरसूरि के दर्शनों के लिये बादशाह आगरे से फतेहपुर आता है।	२. जिनचंद्रसूरि बादशाह के दर्शनों के लिये उसके पीछे पीछे लाहौर जाता है।
३. विजयहीरसूरि ने बादशाह को प्रतिबोध कर जैन धर्म का अनुरागी बनाया तथा जैन साधुओं का आदर्श बतला कर जैन धर्म का पक्का भक्त बनाया।	३. जिनचंद्र ने बादशाह के पास अपने घर का रोना रोकर यह बतलाया कि हम जैन साधु आपस में लड़ते झगड़ते और परस्पर निंदा कर निंदा के ग्रंथ लिखते हैं।

४. विजयहीरसूरि ने बादशाह को आठ दिन जीवहिंसा बंध करवाने का उपदेश दिया तब बादशाह ने १२ दिन का फरमान लिख दिया और दूसरे प्रसंगों पर एक वर्ष में ६ मास जीवदया का फरमान लिख दिया तथा जैन तीर्थों की रक्षा का भी फरमान लिख दिये।

४. जिनचंद्रसूरि ने विजयहीरसूरि का नाम लेकर प्रार्थना की एवं शुभचिंतक की तौर पर और आशामुखी बन कर ८ दिन मांगा और बादशाह ने ८ दिन का फरमान लिख दिया।

५. बादशाह ने अपने पास की अमूल्य पुस्तकें विजयहीरसूरि की सेवा में अर्पण कर दी थीं।

५. जिनचंद्र को एक पन्ना तक भी नहीं मिला।

६. विजयहीरसूरि के चातुर्मास के बाद विहार करने पर भी बादशाह के आग्रह से उनके विद्वान शिष्य बादशाह की सभा में नौ वर्ष तक बादशाह को उपदेश देते रहे।

६. जिनचन्द्रसूरि चातुर्मास करके जाने के बाद बादशाह ने कभी याद तक भी नहीं किया। कारण, बादशाह ने जिनचंद्रसूरि की परीक्षा कर ली थी।

७. विजयहीरसूरि ने बादशाह को वि. सं. १६३९ में प्रतिबोध कर जैन धर्म का अनुरागी बना दिया था। बाद में भी आपके शिष्यों ने कई वर्ष तक बादशाह को उपदेश सुनाया।

७. जिनचंद्र वि. सं. १६४८ में बादशाह से मिले, जो कि विजयहीरसूरि की कृपा से ही उसका मिलन हुआ था।

८. विजयहीरसूरि के गुणों पर मुग्ध होकर बादशाह ने सूरिजी को 'जगद्गुरु' बिरुद देकर उनकी योग्यता की सच्ची कदर की थी, जिसका दुनियां में बड़ा ही महत्व हैं।

८. खरतर कहते हैं जिनचंद्रसूरि को युगप्रधान पद दिया। पर खरतरों में ऐसे युगप्रधान की कुछ भी कींमत नहीं है। कारण खरतरों में बालों में तेल डालनेवाले, रेलसवारी करनेवाले, पैसे रखनेवाले भी युगप्रधान कहला सकते हैं।

उपर दी हुई तालिका से पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि बादशाह को प्रतिबोध तपागच्छाधिपति जगद्गुरु भट्टारक विजयहीरसूरि ने दिया था या यु. प्रा. जिनचन्द्रसूरि ने दिया था? बादशाह अकबर के हृदय पर जैनधर्म का प्रभाव

विजयहीरसूरि ने डाला था या जिनचन्द्रसूरि ने? बादशाह के राज में विजयहीरसूरि का मान था या जिनचन्द्रसूरि का? इन सब बातों को तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाँय तो अव्वल नम्बर विजयहीरसूरि का ही रहेगा फिर बिचारे जिनचंद्रसूरि को अकबर प्रतिबोधक कहना यह उनके लिये एक कलंक की ही बात है।

जैसे राजा आम को बप्पभट्टसूरि ने प्रतिबोध दिया तथा राजा कुमारपाल को कलिकालसर्वज्ञ भगवान हेमचन्द्रसूरि ने प्रतिबोध दिया था। यदि बाद में कोई भी आचार्य उन राजाओं से मिले होंगे तो क्या मिलने वाले आचार्य उन राजाओं के प्रतिबोधक बन सकते हैं? नहीं। तो फिर वि. सं. १६३९ में विजयहीरसूरि ने बादशाह अकबर को प्रतिबोध दिया बाद १६४८ में जिनचंद्रसूरि बादशाह से मिले तो क्या इसको प्रतिबोधक कहा जा सकता है? नहीं कदापी नहीं !

खरतरों ने जिस प्रकार बादशाह अकबर को जिनचंद्र के प्रतिबोध देने का एक कल्पित ढांचा खड़ा किया है। इसी प्रकार जिनचंद्र ने बादशाह की सभा में मुल्ला की टोपी आकाश में उड़ाकर उसको अपने ओघे से ठोक कर मंगाई तथा बकरी वाली घटना लिखी हैं, यह भी कल्पना का कलेवर के अलावा कुछ भी नहीं है। कारण, यदि जिनचन्द्र ने इस प्रकार का काम किया होता तो बादशाह अकबर का इतिहास आज अंधेरे में नहीं है। यह बात किसी न किसी विद्वान द्वारा अवश्य लिखी जाती। पर इस बात की इतिहास में गन्ध तक भी नहीं मिलती हैं। अतः खरतरों ने जिनचंद्र का महत्व बढ़ाने के लिये इस प्रकार की झूठी बातें लिख डाली हैं।

इसी प्रकार जिनचंद्र के जीवन में श्रीअभयदेवसूरि को खरतर बनाने की एक गप्प लिख डाली है। पर जब खरतर शब्द की उत्पत्ति ही जिनदत्तसूरि से हुई है तो अभयदेवसूरि खरतर हो ही कैसे सकते हैं? इतना ही क्यों पर अभयदेवसूरि के साथ खरतरों का कुछ सम्बन्ध ही नहीं है। क्योंकि अभयदेवसूरि हुये हैं चान्द्रकुल में तब खरतरमत की उत्पत्ति हुई है कुर्च्चपुरा गच्छीय जिनवल्लभ के पट्टधर जिनदत्तसूरि से। अतएव खरतर वरमाल अभयदेवसूरि के कंठ में नहीं पर खरतरों के गले में ही शोभा देगी, इस विषय का विस्तृत लेख खरतर गच्छोत्पत्ति भाग १-२ में कर दिया है अतः वहां से देख लेना चाहिये।

कई अनभिज्ञ खरतर यतियों के धोखे में आकर यह भी कह देते हैं कि खरतराचार्यों ने नदी के बीच खड़े रह कर पांच पीरों की साधना कर उनको वश में कर लिये इत्यादि। खरतरों ने जैसे जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों के शास्त्रार्थ का कल्पित चित्र तथा जिनचन्द्रसूरि और मुल्ला की टोपी का जाली चित्र बनाया

है वैसा ही पाँच पीरों का भी चित्र बनाकर भद्रिकों को धोखा दिया है।

खरतरों को पूछा जाय कि भगवान महावीर के पश्चात और तुम्हारे पीर साधने वाले ढोंगी आचार्यों के पूर्व बहुत से धुरंधर विद्वान आचार्य हुये पर उनमें से किसी एक ने भी अनार्य निर्दय म्लेच्छ पीरों की साधना नहीं की थी, फिर एक खरतरों पर ही ऐसी कौन सी आफत आ पड़ी थी कि निर्दय पीरों की साधना की, वह भी एक नदी के बीच खड़े रहकर कि जिसमें अनंत जीवों की जान बूझ के बिना कारण ही हिंसा की।

क्यों रे खरतरों ! क्या जैन देवी देवताओं ने तुम्हारी सहायता नहीं की अथवा हिन्दू देवी देवताओं ने तुम्हारे पूर्वजों को साथ नहीं दिया या तुम्हारे पूर्वज उन देवी देवताओं से अनर्थ कार्य करवाना चाहते थे और उन्होंने ऐसा अनर्थ करने से इनकार कर दिया था या तुम्हारे पूर्वज उत्सूत्र प्ररुपणा होने से जैन या हिंदू देवी देवताओं ने उनका साथ नहीं दिया इसलिये उनको मलेच्छ निर्दय पीरों की साधना करनी पड़ी थी या कोई दूसरा कारण था ?

भला खरतरों ! तुम्हारे आचार्य ने पीरों की साधना की थी तो जैन विधि से की या म्लेच्छों की विधि से ? उस साधना में बलवाकुल भी दिये होंगे और वह सात्विकी पदार्थ के थे या तामसी पदार्थ के ? कारण, पीर लोग तो उन्हीं पदार्थों का बल बाकुल लेते हैं जो उनको प्रीय हों।

खरतरों ने पीरों की साधना क्यों की और पीरों से क्या काम लिया ? क्या जिस समय मुसलमान लोग मन्दिर मूर्तियों को तोड़ फोड़कर नष्ट कर रहे थे, आगम शास्त्रों को अग्नि में जला रहे थे उसको बंद करवाया था या खरतर आपस में लड़ते झगड़ते थे उनको सजा दिलाने के लिये पीरों की साधना कर उनको दंड-सजा दिलवाई थी। जैसे जिनदत्तसूरि ने चक्रेश्वरी देवी की स्तुति में प्रार्थना की थी कि हे देवी ! विधिमार्ग (खरतरों) के दुश्मनों के गले काटकर विधि मार्ग की रक्षा कर इसी प्रकार पीर साधने वालों ने भी किसी खरतर शाखा वालों के गला काटने का प्रयत्न तो नहीं किया था न ?

अरे खरतरों ! यह पांच पीरों की कल्पना तुम्हारे किसी प्राचीन ग्रंथों में है या यतियों ने नयी कल्पना की है। क्योंकि तुम्हारी पट्टावलियों वगैरह में तो इस बात की गन्ध तक भी नहीं मिलती है। फिर तुम उन आचार्य के दुश्मन बन बिचारे उन मृत आत्मा पर इस प्रकार कालस की कालिमा क्यों पोतते हो ? ऐसी भद्दी बातों और कल्पित चित्रों से तुम्हारी और तुम्हारे आचार्यों की तारीफ नहीं पर उल्टी हंसी होती है और ऐसे पतित कार्य करने वालों को सभ्य समाज बेवकूफ ही

कहते हैं।

इतने दिन तो खरतर लोग अपने आचार्यों की झूठी झूठी प्रशंसा पुस्तक में ही लिखते थे पर अब उन कल्पित बातों को चित्रों द्वारा प्रसिद्ध कर उनका प्रचार करने का मिथ्या प्रयत्न कर रहे हैं। पर क्या हजार मण साबुन से गधा को धो डालने पर भी वह घोड़ा बन सकता है? इसी प्रकार कितना ही जाल एवं प्रपंच रचें पर खरतरों पर जो उत्सूत्र रुपी कलंक लगा हुआ है वह कभी हटने का नहीं है।

लो वह हुई जिनचंद्रसूरि की बातें। आगे कुछ और बातें सुनाइये? बातें तो बहुत हैं पर समय बहुत हो गया है। आज तो में जाता हूँ समय मिला तो कभी गणि क्षमाकल्याण और सुखसागर की बातें सुनानी हैं, खैर जो मैंने आपको बातें सुनाई हैं वह सब मूल पाठ की ही है इस पर टीका भाष्य चूर्णि और निर्युक्ति सुनानी तो शेष रह ही गई है और वह है भी महत्व की, यदि कोशिश होगी तो समय पाकर वह भी सुना दूंगा, ठीक अभी तो चलिये।

कल्पित मत के कल्पित चित्र।

यह बात तो स्पष्ट प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो चुकी है कि खरतर मत एक कल्पित मत है। उत्सूत्र प्ररुपणा से इस मत की नींव डाली गई थी और उत्सूत्र से ही यह जीवित रहा है। पर अब इस मत की जहां तहां पोल खुलनी शुरु हो गई है। अतः जैसे देवालिया मनुष्य ज्यों त्यों कर अपनी इज्जत रखना चाहता है वैसे ही खरतर लोगों ने अपनी इज्जत रखने को काल्पनिक चित्र बना कर बिचारे थली जैसे भद्रिक लोगों को अपने जाल में फँसा रखने का प्रयत्न करना शुरु किया है, पर दिवालिया दिवाले से कहां तक बच सकता है? आखिर तो दिवाला निकल ही जाता है। यह हाल खरतरों का है।

१. जिनेश्वरसूरि चैत्यवासियों के शास्त्रार्थ का एक कल्पित चित्र हाल में खरतरों ने बनाया है पर वह बिल्कुल मिथ्या है। कारण खरतरों के ही भाई रुद्रपालीगच्छ के संघतिलकसूरि अपने दर्शन सप्ततिका ग्रन्थ में स्पष्ट लिखते हैं कि जिनेश्वरसूरि पाटण गये थे पर वे राजसभा में नहीं गये थे फिर चैत्यवासियों के साथ उनका शास्त्रार्थ कैसे हुआ और राजा दुर्लभ ने उनको खरतर बिरुद कैसे दिया?

२. प्रभाचन्द्रसूरि ने प्रभाविकचरित्र में अभयदेवसूरि का प्रबन्ध लिखा है, जिसमें भी यही लिखा है कि जिनेश्वरसूरि पाटण गये पर न तो वे राजसभा में गये न शास्त्रार्थ हुआ और न खरतर बिरुद ही मिला। इस विषय के और भी अनेक

प्रमाण हैं जिसके लिये देखो खरतरगच्छोत्पत्ति भाग पहला-दूसरा।

जब जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ ही नहीं है तो ऐसे कल्पित चित्रों की क्या कीमत हो सकती है?

३. जिनचन्द्रसूरि और मुल्ला को टोपी का भी एक कल्पित चित्र खरतरों ने बनाया है वह भी मिथ्या ही है। कारण, न तो जिनचन्द्र ने मुल्ला की टोपी उडाई थी और न उसने बकरी के भेद ही बतलाये थे। फिर ऐसे झूठे चित्रों की क्या फूटी कोड़ी जितनी भी कीमत हो सकती है। यदि थोड़ी देर के लिए यह बात मान भी लें तो इसमें जिनचन्द्र का क्या महत्व बढ़ा? क्योंकि यह काम तो बाजीगरों का है। जैन शास्त्रों में तो ऐसे कोतूहल करने वाले को आचार से भ्रष्ट और दंडित बतलाया है। खरतरों की अक्ल क्यों मारी गई है कि अपने आचार्यों को आचारभ्रष्ट और दण्डित बनाने की कोशिश करते हैं?

४. जिनचन्द्र नदी में खड़ा रह कर पांच पीरों की आराधना कर रहा है। इसका चित्र बनाया है। यह भी कल्पित ही है, न तो जिनचन्द्र ने पीरों को साधा है और न पीर आये ही थे।

५. जिनदत्तसूरि और बिजली का झूठा चित्र बनाया है। इसके विषय में इसी किताब में ठीक खुलासा कर दिया है।

इस प्रकार खरतरों ने कल्पना चित्र बनाना शुरु किया है, पर आज तो बीसवीं शताब्दी है। इस चित्र नायकों की इन्द्रजालियों से अधिक कीमत नहीं है। अतः जनता सावधान रहे, ऐसे धोकेबाजियों के जाल में फँस कर अपना अहित न कर डाले।

खरतरों की बातें

समाप्तम्

खरतरों के हवाइ किल्ला की दीवारों

लेखक

इतिहासप्रेमी मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज

प्रकाशक

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु. फलौदी (मारवाड़)

हृदयोद्गार

खरतरों ! तुम मेरे लिये भले बुरे कुछ भी कहो, मैं उपेक्षा ही करुंगा। पर पूर्वाचार्यों के लिये तुम लोग हलके एवं नीच शब्द कहते हो उनको मैं तो क्या पर कोई भी सभ्य मनुष्य सहन नहीं करेंगे, जैसे तुम लोगोंने कहा है कि:-

''तुम्हारा रत्नप्रभसूरि किस गटर में छीप गया था ?''

''रत्नप्रभसूरि हुए ही नहीं हैं। ओसियाँ में रत्नप्रभसूरिने ओसवाल बनाये भी नहीं है। ओसवाल तो खरतराचार्योंने ही बनाये हैं।'' इत्यादि।

खरतरों के अन्याय के सामने मैंने पन्द्रह वर्ष तक धैर्य रक्खा पर आखिर खरतरोंने मेरे धैर्य को जबरन् तोड़ डाला जिसकी यह ''पहली अवाज है''

''अरे खरतरों ! रत्नप्रभसूरि मेरा नहीं पर वे जगत्पूज्य हैं। तुम्हारे जैसी कोई व्यक्ति कह भी दें इससे क्या होने का हैं ?''

मुझे ऐसी किताब लिखने की आवश्यकता नहीं थी पर यह तुम्हारी ही प्रेरणा हैं कि मुझे लाचार होकर ऐसे कार्य में हाथ डालना पड़ा हैं। आचार्य रत्नप्रभसूरिने ओसवाल बनाया जिस के लिये तो आज अनेक प्रमाणिक प्रमाण उपलब्ध हैं पर क्या तुम भी तुम्हारे पूर्वजों के लिये एकाध प्रमाण बतला सकते हो ?''

पत्र की पहुँच

नागोर में विराजमान प्रिय खरतरगच्छीय महात्मन् !

सादर सेवा में निवेदन है कि आपका भेजा हुआ पत्र मिला है। यद्यपि पत्र गुमनाम का है पर उसके हरफ देखने से व मजमून पढ़ने से यह सिद्ध हुआ है कि यह पत्र आपका ही भेजा हुआ हैं।

पत्र एक आने के लिफाफे में है, लाल स्याही से कागद के दोनों ओर लिखा हुआ है। वह पत्र नागोर की पोष्ट से ता. ६-६-३७ को रवाना हुआ है। ता. ७-६-३७ को पीपाड की पोष्ट से डिलेवरी हुइ हैं। ता. ८-६-३७ को मुकाम तीर्थ कापरडा में मुझे मिला है। यह सब हाल लिफाफा पर लगी हुई पोष्ट ऑफिस की छापों से विदित हुआ है।

प्रस्तुत पत्र एक बार नहीं पर तीन बार ध्यानपूर्वक पढ़ लिया है। जिस मजमून को आपने लिखा है उसको पढ़ कर मुझे किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं हुआ है क्योंकि यह सब आप लोगों की चिरकालीन परम्परा के अनुसार ही लिखा हुआ है।

पत्र में ११ कलमों के अन्त में आपने लिखा है कि "तुम नागोर आओ, तुम्हारा बुढ़ापा यहीं सुधारा जायेगा" इत्यादि। पर मेरा बदनसीब हैं कि आपका आग्रहपूर्वक आमंत्रण होने पर भी मैं नागोर नहीं आ सका। इसका खास कारण यह था कि आपका पत्र मिलने के पूर्व ही मैंने सोजत श्रीसंघ की अत्याग्रहपूर्वक विनति होने से वहां चातुर्मास करने की स्वीकृति दे दी थी। अन्यथा मेरा बुढ़ापा सुधारने को अवश्य आप की सेवा में उपस्थित हो जाता।

मेरा बुढापा सुधारने का सौभाग्य तो शायद आप के नसीब में नहीं लिखा होगा, तथापि आप की इस शुभ भावना के लिये तो मैं आप का महान उपकार ही समझता हूं।

खैर! आपकी शुभ भावना यदि किसी का सुधार-कल्याण करने की ही है तो मेरी निस्वत आप के पूर्वजों के जन्म कई प्रकार से बिगड़े हुए पुराने पोथों में पडे हैं उन्हें सुधार कर कृतकृत्य बनें। शायद आप की स्मृति में न हो तो उसके लिए यह छोटासा लेख मैं आज आप की सेवा में भेज रहा हूँ। यदि आप की दीर्घ भावना इतना सा छोटे लेख से तृप्त न हो तो फिर कभी समय पाकर विस्तृत लेख लिख आपको संतुष्ट कर दूँगा। उम्मीद है कि अभी तो आप इतने से ही संतोष कर लेंगे।

सोजत सिटी (मारवाड) — आपका कृपाकांक्षी
ता. १-१०-३७ ज्ञानसुन्दर

नोट-इस पत्र की भाषा इतनी अश्लील है कि सभ्य मनुष्य लिख तो क्या सके पर पढ़ने में भी धृणा करते हैं। पत्र के लिखनेवालों की योग्यता, कुलीनता और द्वेषाग्नि का परिचय स्वयं यह पत्र ही करा रहा हैं, सिवाय नीच मनुष्य के पूर्वाचार्यों पर मिथ्या कलंक कौन लगा सकता है? खैर! मिथ्या आक्षेपों का निवारण मिथ्या आक्षेपों से नहीं पर सत्य से ही हो सकता हैं, जिस का दिग्दर्शन इस किताब में करवाया गया है, जरा ध्यान लगा कर पढें।

नेक सलाह

''क्या मेरा यह खयाल ठीक है कि बिना ही शरण मुनि ज्ञानसुन्दरजी की छेड़छाड़ कर हमारे खरतर लोग बड़ी भारी भूल करते हैं, क्योंकि इनके न तो कोई आगे है और न कोई पीछे। इनका डङ्का चारों ओर बज रहा है। सत्य का संशोधन करने की इनकी शुरु से आदत पड़ी हुई है। एवं सत्य कहने में व लिखने में यह किसी की भी खुशामदी नहीं रखते हैं। इस बात की भी इनको परवाह नहीं कि कोई इनको सच्चा साधु मानें या कोई ढोंगी, व्यभिचारी, दोषी, कलंकित वेषधारी, यति या गृहस्थ ही क्यों माने ? इन्हें इसका भी भय नहीं है कि कोई असभ्य शब्दों में आक्षेप कर इन पर कलंक ही क्यों न लगावें ? ये वीर इन सब बातों पर लक्ष्य नहीं देता हुआ अपनी धून में काम करता ही रहता हैं। पर खरतरगच्छवाले तो बहुत परिवारी है। बड़ी दुकान में घाटा नफा भी उसी प्रमाण से होता है, अतः क्या खरतरवाले आज भूल[१] गए हैं कि एक खरतर साधु को खरतरों के उपाश्रय में साध्वी के साथ मैथुन क्रिया करते हुए को खास खरतरों की साध्वीने ही रात्रि में पकड़ा था और वह साध्वी आज भी विद्यमान है। कइ खरतर साधुओंने तीर्थो पर इसी विडम्बना के कारण जूते भी खायें हैं, और भी इनकी व्यभिचार लीला से ओतप्रोत अनेक पत्र भी कइ स्थानों पर पकड़े गए हैं। खरतरों ने केवल साधु ही इस कोटि के नहीं पर इनकी साध्वीयें तो इनसे भी दो कदम आगे बढ़ी हुई है। इतना ही क्यों पर ऐसे कार्यों के लिए तो यदि इन साध्वीयों को उन साधुओं के गुरु कह दिया जाय तो भी कुछ अतिशयोक्ति नहीं है। कारण कई साध्वीयोंने तीर्थों पर अपना उदर रीता किया है तो कई एकोंने साधुवेश में गर्भ धारण कर गृहस्थ बन अपने उदर का वजन को हलका कर पुनः खरतरों के शिर पर गुरुत्व धारण किया हैं। कई एक साध्वीएँ गृहस्थों के यहां से सोना चांदी के डिब्बे उठा लाई तो कइ एक साध्वीयों की रकमें गृहस्थ हजम कर गये हैं।

---

१. सं. १९९४ श्रावण सुद ११ पाली में खरतर साध्वी प्रमोद श्री की चेली साध्वी अव्वल श्री भाग गइ थी, जिसकी एक पत्रिका प्रकाशित हुई, जिसमें खरतरों के साधु साध्वीयों की व्यभिचार लीला का ठीक दिग्दर्शन करवाया हैं। अधिक जानने की अभिलाषा वाला उस पत्रिका को देख कर निर्णय करें। यहाँ तो उस पत्रिका का एक अंश मात्र बतलाया है।

इत्यादि हजारों दोषों के पात्र होते हुए भी अपने कलंक को पब्लिक में प्रसिद्ध करवाने की प्रेरणा सिवाय इन खरतर जैसे मूर्खों के कौन करता है ? अतएव खरतरों से मेरी सलाह है कि गच्छ कदाग्रह की वजह से थोड़े बहुत खरतर जानबूझ कर भी तुम्हारे दोषों को जहर के प्यालों की भाँति पी रहे हैं। पर तुम दूसरों की छेडछाड कर अपनी रही सही कलुषित इज्जत को नीलाम करवाने की चेष्टा न करो ! इसी में तुम्हारा जीवन निर्वाह है। शेष फिर कभी समय मिलने पर...

आपका अन्तरभेदी,
''एक अनुभवी''

दो शब्द

प्यारे खरतरों ! आज से ५० वर्ष पूर्व आपके पूर्वज अन्य गच्छवालों से मिलझूल कर चलते थे उस समय अन्य गच्छवाले आपके पूर्वाचार्यों के प्रति कैसी भक्ति एवं किस प्रकार पूजा करते थे ? और आज आपकी कुटनीति के कारण वही लोग आपसे तो क्या पर आपके पूर्वाचार्यों के नामसे किस प्रकार दूर भाग रहे हैं। इसका कारण क्या है जरा सोचो।

आपके अन्तिम आचार्य तिलोक्यसागरजी म. तथा श्रीमती साध्वी पुण्यश्रीजीने अन्य गच्छवालों के साथ किस प्रकार प्रेम रखकर उनको अपनी ओर आकर्षित किये थे ? जब आज आप अन्य गच्छवालों के साथ द्वेष रख समाज का संगठन तोड़ने की कोशीश कर रहे हैं ? शायद ही ऐसा कोइ स्थान बच सका हो कि जहां आपके उपदेश का अमल करनेवालें खरतरों का अस्तित्व हो और वहां आपने रागद्वेष के बीज न बोया हो।

खैर ! इतना होने पर भी आपने अपना, अपने गच्छ का और अपने पूर्वाचार्यों का मान प्रतिष्ठा गौरव कहां तक बढाया ? कारण खरतरगच्छवालें तो

आपके आचार्यों की भक्ति पूजा करते ही थे और आज भी कर रहे हैं। इसमें तो आपकी अधिकता हैं ही नहीं। जब अन्य गच्छवालें आपके पूर्वजों प्रति पूज्यभाव रक्ख सेवा पूजा करते थे आज उन्हीं के मुँह से आप अपने आचार्यों के अपमान के शब्द सुन रहे हो। इसमें निमित्त कारण तो आप ही हैं न?

यदि आप अपना पतित आचार को छीपाने के लिये ही शान्त समाज में राग द्वेष फैला रहे हो तो आप का यह खयाल बिलकुल गलत हैं कारण अब जनता और विशेष खरतर लोग इतने अज्ञात नहीं रहे हैं कि आप इस प्रकार फूट कुसम्प फैला कर अपने पतित आचार की रक्षा कर सको। यह बात आपकी जानकारी के बहार तो नहीं होगा कि कई लोग खरतर होते हुए भी आप लोगों का मुंह देखने में भी महान् पाप समझते हैं।

मेरे खयाल से तो आप इस प्रकार अन्यगच्छीय आचार्यों की व्यर्थ निंदा कर अपना और अपने भक्तों का अहित ही कर रहे है, यदि अन्य गच्छवालों ने आपका बहिष्कार कर दिया तो आपके चंद ग्रामों में मूठीभर ही भक्त रह जायेंगे।

खरतरो! अब भी समय है, आप अपनी द्वेष भावना को प्रेम में प्रणित कर दो, सब गच्छवालों के साथ मिल झूलकर रहो। प्रत्येक गच्छ में प्रभाविक आचार्य हुए हैं, उन सबके प्रति पूज्यभाव रक्खों। तुम अन्यगच्छीय आचार्यों के लिये पूज्यभाव रखोंगे तो आपके आचार्यों प्रति अन्य गच्छवाले भी पूज्यभाव रक्खेंगे। अतएव मूर्तिपूजक समाज में प्रेम, ऐक्यता और संगठन बढाओं, इसमें सब के साथ साथ शासन का हित रहा हुआ हैं।

- लेखक

खरतरों के हवाइ किल्ला की दीवारों ।

(आधुनिक कई खरतरों ने अपनी और अपने गच्छ की उन्नति का एक नया मार्ग निकाला हैं, जिसका खास उद्देश्य है कि अन्य गच्छीय आचार्य चाहे वे कितने ही उपकारी एवं प्रभाविक क्यों न हो उनकी निंदा कर गलतफहमी फैला कर उनके प्रति जनता की अरुची पैदा करना और अपने गच्छ के आचार्यों की झूठी झूठी प्रशंसा कर भद्रिक लोगों को अपनी ओर झूकाना, परन्तु उन लोगों को अभी यह मालूम नहीं हैं कि हम लोग इस प्रकार हवाइ किल्ला की दीवारें बना रहे हैं, पर इस ऐतिहासिक युग में वे कहां तक खड़ी रह सकेगी ? आज मैंने इस हवाई किल्ला की दीवारों का दिग्दर्शन करवाने के लिये ही लेखनी हाथ में ली हैं।)

दीवार नम्बर १

कई खरतरगच्छवाले कहते या अपनी किताबों में लिखा करते हैं कि आचार्य उद्योतनसूरिने वड़वृक्ष के नीचे रात्रि में नक्षत्रबल को जान कर अपने वर्धमानादि ८४ शिष्यों पर छाण (सूखा गोबर) का चूर्ण डाल उन्हें आचार्य बना दिये। और बाद में उन ८४ आचार्यों के अलग अलग ८४ गच्छ हुए। अतः आचार्य उद्योतनसूरि ८४ गच्छों के गुरु है। शायद आप का यह इरादा हो कि उद्योतनसूरि खरतर होने से ८४ गच्छों के गुरु खरतर है।

समीक्षा-इस कथन की सच्चाई के लिये केवल किम्वदन्ती के अतिरिक्त कोई भी प्रमाण आज पर्यन्त किन्हीं खरतरगच्छीय विद्वानों ने नहीं दिया है। और इस कथन में सर्व प्रथम यह शङ्का पैदा होती हैं कि वे ८४ आचार्य और ८४ गच्छ कौन कौन थे ? क्योंकि जैन श्वेताम्बर संघ में जिन ८४ गच्छों का जनप्रवाद चला आता है वे ८४ गच्छ किसी एक आचार्य का एक समय में नहीं बने हैं। पर उन ८४ गच्छों का समय विक्रम की आठवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी तक का है। और उन ८४ गच्छों के स्थापक आचार्य भी पृथक् पृथक् तथा ८४ गच्छ निकलने के कारण भी पृथक् पृथक् हैं। इस विषय में तो हम आगे चलकर लिखेंगे, पर पहले आचार्य उद्योतनसूरि के विषय में थोड़ा सा खुलासा कर लेते है कि आचार्य उद्योतनसूरि कब हुए और वे किस गच्छ या समुदाय के थे ?

चन्द्रकुल के स्थापक आचार्य चन्द्रसूरि भगवान महावीर के १५वें[१] पट्टधर थे और चन्द्रसूरि के १६ वें पट्टधर अर्थात् महावीर के ३१ वें पट्टधर आचार्य यशोभद्रसूरि हुए और इन यशोभद्रसूरि के चन्द्रकुल में दो शाखाएँ हुई जैसे कि :-

आचार्य यशोभद्रसूरि

प्रद्युम्नसूरि	विमलचंद्रसूरि
।	।
मानदेवसूरि	देवसूरि
।	।
विमलचंद्रसूरि	नेमिचन्द्रसूरि
।	।
उद्योतनसूरि (वि. दशवीं शताब्दी ''इस शाखा में आगे चल कर ४४ वें पट्टधर जगच्चन्द्रसूरि से चन्द्रकुल का नाम तपागच्छ हुआ''	उद्योतनसूरि (वि. दशवीं शताब्दी) 'इस शाखा में आगे चल कर ४४ वें पट्टधर जिनदत्तसूरि से चन्द्रकुल का खरतर नाम हुआ'

उपर्युक्त वंशावलि से पाया जाता है कि उस समय उद्योतनसूरि नाम के दो आचार्य हुए होंगे। एक प्रद्युम्नसूरि की शाखा में विमलचंद्र के शिष्य और सर्वदेव के गुरु। दूसरे-विमलचंद्र शाखा में नेमिचन्द्र के शिष्य और वर्धमान के गुरु। यही कारण हैं कि तपागच्छ की पट्टावली में लिखा है कि उद्योतनसूरिने वडवृक्ष के नीचे सर्वदेवादि आठ आचार्यों को सूरिपद देने से वनवासी गच्छ का नाम वड़गच्छ हुआ। और खरतरगच्छ की पट्टावली में लिखा है कि वर्धमानादि ८४ शिष्यों को उद्योतनसूरि ने आचार्यपद देने से वडगच्छ नाम हुआ। अंचलगच्छ की शतपदी में इन से भिन्न कुछ और ही लिखा है। वहां लिखते हैं कि केवल एक सर्वदेवसूरि को ही वड़वृक्ष के नीचे आचार्य बनाने से वनवासी गच्छ का नाम वड़गच्छ हुआ

---

१. **तपागच्छ की पट्टावलि में चन्द्रसूरि को १५ वाँ पट्टधर लिखा है तब खरतर गच्छ की कई पट्टावलियों में चन्द्रसूरि को १८ वें पट्टधर लिखा है। इसका कारण यह है कि खरतर पट्टावलीकार एक तो महावीर को प्रथम पट्टधर गिनते हैं। दूसरा आचार्य यशोभद्र के संभूतिविजय और भद्रबाहु दो शिष्य हुए। दोनों को क्रमशः ७-८ वाँ पट्ट गिना है। तीसरा आर्यस्थूलभद्र के महागिरि और सुहस्ती इन दोनों शिष्यों को भी क्रमशः दो पट्टधर गिन लेने से चन्द्रसूरि १८ वें पट्टधर हैं। इसमें कोई विरोध तो नहीं आता है। केवल गिनती की संख्या में ही न्यूनाधिकता है।**

है। खैर! कुछ भी हो हमें तो यहां उद्योतनसूरि द्वारा ८४ आचार्यों से ८४ गच्छ हुए उनका ही निर्णय करना है।

यदि कोई व्यक्ति इधरउधर के नाम लिख कर चौरासी गच्छ और आचार्यों की संख्या पूर्ण कर भी दे तो इस बीसवीं शताब्दी में केवल नाम से ही काम चलने का नहीं है, पर उन नामों के साथ उनकी प्रमाणिकता के लिये भी कुछ लिखना आवश्यक होगा, जैसे कि :- उन ८४ आचार्योंने अपने जीवन में क्या क्या काम किए? किन किन आचार्योंने क्या क्या ग्रंथ बनाये? किसने कितने मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई आदि आदि। इस प्रकार उन आचार्य और गच्छों का सत्यत्व दिखाने के लिये कुछ ऐतिहासिक प्रमाणों की भी आवश्यकता है। आशा है, हमारे खरतरगच्छीय विद्वान अपने लेख की सत्यता के लिए ऐसे प्रमाण जनता के सामने जरुर रखेंगे कि जिस से उन पर विश्वास कर उद्योतनसूरि को ८४ गच्छों का स्थापक गुरु मानने को वह तैयार हो जाये।

यदि खरतरों के पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं है तो फिर यह कहना कि उद्योतनसूरि ने ८४ शिष्यों का आचार्य पद दिया और उन आचार्यों से ८४ गच्छ हुए यह केवल अरण्यरोदनवत् व्यथा का प्रलाप ही समझना चाहिये।

दीवार नम्बर २

कई खरतरगच्छवाले यह भी कहते हैं कि वि. सं. १०८० में पाटण के राजा दुर्लभ की राजसभा में आचार्य जिनेश्वरसूरि और चैत्यवासियों के आपस में शास्त्रार्थ हुआ। जिस में जिनेश्वरसूरि को खरा रहने से राजा दुर्लभने खरतर बिरुद दिया और चैत्यवासियों की हार होने से उनको कँवला कहा। इत्यादि।

समीक्षा :- इस लेख की प्रामाणिकता के लिये न तो कोई प्रमाण दिया है और न किसी प्राचीन ग्रन्थ में इस बात की गंध तक भी मिलती है। खरतरों की यह एक आदत पड़ गई है कि वे अपने दिल में जो कुछ आता है उसे अडंग-बडंग लिख मारते हैं, जैसे कि खरतरगच्छीय यति रामलालजी अपनी ''महाजनवंश मुक्तावली'' नामक पुस्तक के पृष्ठ १६८ पर उक्त शास्त्रार्थ उपकेश गच्छाचार्यों के साथ होना लिखते हैं और खरतरगच्छीय मुनि मग्नसागरजीने अपनी 'जैनजाति निर्णय समीक्षा'' नामक पुस्तक के पृष्ठ ९४ में एक पट्टावलि का आधार लेकर के लिखा है कि :-

''३९ तत्पट्टे यशोभद्रसूरि लघु गुरुभाई श्रीनेमिचन्द्रसूरि एहवइ डोकरा आ. गुरुश्री उद्योतनसूरिनी आज्ञा लइ श्रीअंझहारी नगर थकी विहार करतां श्रीगुर्जरइ अणहलपाटणि आवी वर्धमानसूरि स्वर्गे हुआ, तेहना शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरि पाटणिराज

श्रीदुर्लभनी सभाइं कूर्चपुरागच्छीय चैत्यवासी साथी कास्यपात्रनी चर्चा कीधी, त्यां श्रीदशवैकालिकनी चर्चा गाथा कहीने चैत्यवासीने जीत्या तिवारइं राजा श्रीदुर्लभ कहइ ''ऐ आचार्य शास्त्रानुसारे खरुं बोल्या.'' ते थकी वि. सं. १०८० वर्षे श्री जिनेश्वरसूरि खरतर बिरुद लीधो। तेहना शिष्य जिनचंद्र-लघु गुरुभाई अभयदेव सूरि हुआ। तत्पाटे श्रीजिनवल्लभसूरि हुआ। तिणे चित्रकूट पर्वती आवी श्रीमहावीर नओ छटो कल्याणक प्ररुप्यो इत्यादि।''

उपर्युक्त लेख का सारांश निम्न लिखित हैं :-

१. वर्धमानसूरि का स्वर्गवास पाटण में हुआ। बाद जिनेश्वरसूरिने चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ किया।

२. शास्त्रार्थ जिनेश्वरसूरि और कूर्चपुरागच्छीय चैत्यवासियों के आपस में हुआ था।

३. राजा दुर्लभने कहा था ''ए आचार्य शास्त्राऽनुसार खरुं बोल्या'' इस शब्द को ही जिनेश्वरसूरिने खरतर बिरुद मान लिया।

४. शास्त्रार्थ का विषय था कांस्य (कांसी) पात्र का।

५. जिनवल्लभसूरिने चित्तौड़ के किले में भगवान महावीर का छट्ठा कल्याणक की प्ररुपणा की।

समीक्षा :-

(विद्वानों को इन खरतरों के प्रमाण पर जरा ध्यान देना चाहिये)

(१) पाटण के इतिहास से यह निश्चय हो चुका है कि पाटण में दुर्लभ राजा का राज वि. सं. १०७८ तक था। अर्थात् १०७८ में दुर्लभ राजा का देहान्त हो चुका था। तब वर्धमानसूरिने वि. सं. १०८८ में आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाइ थी। बाद वे किस समय परलोकवासी हुए और उनके बाद कब जिनेश्वरसूरि ने चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ किया होगा? क्योंकि वर्धमानसूरिने जब आबू के मन्दिरों की प्रतिष्ठा करवाई थी तब तो दुर्लभ राजा का देहान्त हुए को दश वर्ष हो चुके थे, तो क्या शास्त्रार्थ के समय फिर दुर्लभ राजा भूत होके दश वर्षों से वापिस आया था? जो कि उनके अधिनायकत्व में जिनेश्वरसूरिने शास्त्रार्थ कर खरतर बिरुद प्राप्त किया। जरा इस बात को पहले सोचना चाहिये।

(२) शास्त्रार्थ कूर्चपुरा गच्छवालों के साथ हुआ तब यति रामलालजी आदि खरतरों का यह कहना तो बिलकुल मिथ्या ही है न? कि खरा रहा सो खरतरा और हारा सो कवला। कारण कूर्चपुरागच्छ को कोई कवला नहीं कहते हैं। कवला तो उपकेशगच्छवालों को ही कहते हैं। शास्त्रार्थ बताना कूर्चपुरागच्छ के साथ और

हार बतलानी उपकेशगच्छवालों की। ऐसा अनूठा न्याय खरतरों के अलावा किस का हो सकता है? शायद ! यति रामलालजी आदि को कोई दूसरा दर्द तो नहीं है क्योंकि बीकानेर में उपकेशगच्छवालों के अधिकार में १४ गवाड़ (मुहल्ले) हैं तब खरतरों के ११ गवाड़ हैं और इन दोनों के आपस में कसाकसी चलती ही रहती है। संभव है इसी कारण खरतर यतियोंने यह युक्ति गढ़ निकाली हो कि खरतर का अर्थ खरा और कवलों का अर्थ हारा हुआ, पर उस समय यतियों को यह भान नहीं रहा कि आगे चल कर मुनि मग्नसागर जैसे खरतर साधु ही हमारी इस कल्पित युक्ति को ठुकरा देंगे। जैसा कि हम पहले लिख आए हैं।

(३) यदि हम मुनि मग्नसागरजी का कहना कुछ देर के लिये मान भी लें तो राजा दुर्लभने तो इतना ही कहा कि – ''ऐ आचार्य शास्त्रानुसार खरुं बोल्या.' बस, इस शब्द पर ही जिनेश्वरसूरिने खरतर बिरुद मान लिया? यदि हां, तब तो इस बिरुद की क्या कीमत हो सकती है और राजा दुर्लभने तो किसी को कवला कहा ही नहीं फिर खरतर यह कवला शब्द कहां से लाया?

(४) राजा दुर्लभ स्वयं बड़ा भारी विद्वान् था। उस की सभा में अच्छे अच्छे विद्वान् उपस्थित रहते थे। जिनेश्वरसूरि भी विद्वान ही होंगे। फिर कांसीपात्र का ऐसा कौन सा तात्त्विक विषय था? जिसका कि निर्णय राजसभा में करवाने को शास्त्रार्थ करना पड़ा। चैत्यवासीयों का समय विक्रम की पहली-दूसरी शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी का है। क्या इतने दीर्घकालीक अर्से में किसी चैत्यवासीने साधु के लिए कांसीपात्र रखने का कहा हैं? जो कि जिनेश्वरसूरि को एक साधारण बात के लिए इतना बड़ा भारी शास्त्रार्थ करना पड़ा? इस से मालूम होता है कि या तो जिनेश्वरसूरि कोई साधारण व्यक्ति होंगे या खरतरोंने यह कोई कल्पित ढांचा ही तैयार किया हैं।

(५) जिनवल्लभसूरिने-चित्तौड़ के किले पर महावीर के छ कल्याणक की प्ररुपणा की, यही कारण हैं कि चैत्यवासियोंने जिनवल्लभसूरि को उत्सूत्र प्ररुपक निह्नव घोषित कर दिया और यह बात उपर के लेख से सिद्ध भी होती हैं।

वास्तव में न तो दुर्लभराजाने खरतर बिरुद दिया और न खरतरों के पास इस विषय का कोई प्रबल प्रमाण ही हैं। आचार्य जिनदत्तसूरि की प्रकृति खरतर होने के कारण लोग उनको खरतर खरतर कहा करते थे। पहले तो यह शब्द अपमान के रुप में समझा जाता था पर कालान्तर में यह गच्छ के रुप में परिणत हो गया।

यदि ऐसा न होता तो जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागरसूरि, धनेश्वरसूरि, जिनचन्द्रसूरि,

अभयदेवसूरि और जिनवल्लभसूरि आदि जो आचार्य हुए और जिन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना भी की, पर किसी स्थान पर उन्होंने खरतर शब्द नहीं लिखा। क्या शास्त्रार्थ के विजयोपलक्ष्य में मिला हुआ बिरुद इतने दिन तक गुप्त रह सकता है? क्या किसी को भी यह खरतर शब्द याद नहीं आया? इतना ही क्यों बल्कि आचार्य अभयदेवसूरि और जिनदत्तसूरि के गुरु जिनवल्लभसूरिने अपने आपको ही नहीं किन्तु वर्धमानसूरि और जिनेश्वरसूरि तक को अपने ग्रंथों में चन्द्रकुलीय लिखा है।

खरतरगच्छीय कई लोगोंने खरतर शब्द को प्राचीन सिद्ध करने के लिए विक्रम की बारहवीं शताब्दी के कई प्रमाण ढूँढ निकाले हैं जो कि जिनदत्तसूरि के साथ संबंध रखनेवाले हैं। किन्तु सांप्रतिक इतिहास-संशोधक लोग तो जिनेश्वरसूरि के समय के प्रमाण चाहते हैं पर खरतरों के पास इनका सर्वथा अभाव ही है। खरतर लोग जिन प्रमाणों को देख फूले नहीं समाते हैं वे प्रमाण जिनेश्वरसूरि को खरतर बनाने में तनिक भी सहायता नहीं देते हैं, अत: खरतरों का कर्तव्य है कि वे या तो अपनी इस भूल को सुधार लें कि वि. सं. १०८० में जिस शास्त्रार्थ का उल्लेख हम और हमारे पूर्वजोंने किया है वह गलत है या इस विषय के विश्वसनीय प्रमाण उपस्थित करें। मैं इस विषय में यहां अधिक लिखना इस कारण ठीक नहीं समझता हूं कि मैंने "खरतरगच्छोत्पत्ति" नामक एक स्वतंत्र पुस्तक इस विषय की प्रकाशित करवा दी है। उसमें अकाट्य ऐतिहासिक और खास खरतरों के ग्रन्थों के ही प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया है कि खरतर शब्द जिनेश्वरसूरि से नहीं पर जिनदत्तसूरि की प्रकृति से ही पैदा हुआ है और यह प्रारंभ में अपमानसूचक होने के कारण खरतरोंने उसे कई वर्षों तक नहीं अपनाया। इसकी साबूती के लिये मैंने खरतराचार्यों के कई शिलालेख भी दिये हैं और बताया हैं कि खरतर शब्द आमतौर पर जिनकुशलसूरि के समय में ही काम में लिया गया है।

यदि किसी भाई को इस बात का निर्णय करना हो तो खरतरगच्छोत्पत्ति नामक पुस्तक को मंगवाकर पढ़ना चाहिए।

दीवार नम्बर ३

कई लोग आचार्य जिनदत्तसूरि को युगप्रधान कहा करते हैं तो क्या आचार्य जिनदत्तसूरि युगप्रधान थे?

समीक्षा-युगप्रधानों की नामावली में जिनदत्तसूरि का नाम नहीं है, पर गच्छराग के कारण कई लोग अपने अपने आचार्यों को युगप्रधान लिख देते हैं। इस समय युगप्रधान दो कोटि के समझे जाते हैं :-

१. नाम युगप्रधान और २. गुण युगप्रधान, यदि जिनदत्तसूरि नाम युगप्रधान

हो तो इसमें विवाद को स्थान नहीं मिलता हैं और उनकी कीमत भी कृपाचन्द्रसूरि आदि से अधिक नहीं हो सकती हैं। दूसरा गुण युगप्रधान के लिये युगप्रधान के गुण होना चाहिए वे जिनदत्तसूरि में नहीं थे, क्योंकि–

(१) युगप्रधान उत्सूत्र की प्ररुपणा नहीं करते हैं किन्तु जिनदत्तसूरिने पाटण नगर में यह प्ररुपणा की थी कि स्त्री जिनपूजा नहीं कर सके। इस से जिनदत्तसूरि को अर्द्ध ढूंढिया कहा जा सकता हैं, क्योंकि ढूंढियोंने पुरुष और स्त्रियें दोनों को जिनपूजा का निषेध किया हैं और जिनदत्तसूरिने एक स्त्रियों को ही प्रभुपूजा का निषेध किया। किन्तु शास्त्रों में विधान है कि द्रौपदी, मृगावती, जयन्ति, प्रभावती, चेलना आदि स्त्रियोंने प्रभुपूजा की हैं और इस शास्त्राज्ञा को जिनदत्तसूरि के गुरु तक भी मानते आए थे। केवल जिनदत्तसूरिने ही ''स्त्री जिनपूजा न करे'' ऐसा कह कर जिनाज्ञा का भंग किया। अर्थात् उत्सूत्र की प्ररुपणा की। क्या ऐसे जिनाज्ञाभञ्जक को ही युगप्रधान कहते हैं ?

(२) युगप्रधान उत्सूत्र प्ररुपकों का पक्ष नहीं करते हैं तब जिनदत्तसूरिने छ कल्याणक प्ररुपक जिनवल्लभसूरि का पक्ष कर खुदने भी भगवान् महावीर के छः कल्याणक की प्ररुपणा कर कई भद्रिक जैन लोगों को सन्मार्ग से पतित बनाया। क्या ऐसे उत्सूत्र प्ररुपक भी युगप्रधान हो सकते हैं ?

(३) युगप्रधान किसी को शाप नहीं देते हैं तब जिनदत्तसूरिने पाटण के अंबड श्रावक को शाप दिया कि जा ! तूं निर्धन एवं दुःखी होगा। (देखो दादाजी की पूजा में)

(४) युगप्रधान की आज्ञा सकल संघ शिरोधार्य करते हैं तब चन्द व्यक्तियों के सिवाय जैन संघ जिनदत्तसूरि को उत्सूत्रप्ररुपक मानते थे।

(५) युगप्रधान आचार्यपद के लिये झगड़ा नहीं करते है किन्तु जिनवल्लभसूरि का देहान्त के बाद जिनदत्तसूरि और जिनशेखरसूरिने आचार्य पदवी के लिए झगड़ा किया। जिनदत्तसूरि कहते थे कि मैं आचार्य होऊँगा और जिनशेखरसूरि कहते थे कि मैं आचार्य बनूंगा। आखिर दोनों आचार्य बन गए। क्या युगप्रधान ऐसे ही होते हैं ? सकल संघ तो दूर रहा पर एक गुरु की संतान में भी इतना झगड़ा होवे और ऐसे झगड़ालुओं को युगप्रधान कहना क्या हमारे खरतरों का अन्तरात्मा स्वीकार कर लेगा ?

(६) यदि ''महाजनवंश मुक्तावली'' पुस्तक के कथन को खरतर लोग सत्य मानते हो तो जिनदत्तसूरिने कई स्थान पर गृहस्थों के करने योग्य कार्य किये है। क्या जैन शासन में ऐसे व्यक्तियों को युगप्रधान माना जा सकता है ?

(७) अंचलगच्छीय आचार्य मेरुतुंगसूरिने अपने शतपदी ग्रंथ के १४९ पृष्ठ पर जिनदत्तसूरि की नवीन आचरणा के बारे में पच्चीस बातें विस्तार से लिखी हैं। पर मैं उनसे कतिपय बातें पाठकों की जानकारी के लिए यहां उद्धृत कर देता हुं। वे लिखते हैं कि जिनदत्तसूरि–

१. श्राविकाने पूजा नो निषध कर्यो।

२. लवण (निमक) जल, अग्नि में नोखवुं ठेराव्यो।

३. देरासर में जुवान वेश्या नहीं नचावी किन्तु जे नानी के वृद्ध वेश्या होय ते नचाववी एवी देशना करी।

४. गोत्रदेवी तथा क्षेत्रपालादिकनी पूजाथी सम्यक्त्व भागे नहीं एम ठेराव्युं।

५. अमे ज युगप्रधान छीए एम मनावा मांड्युं।

६. वली एवी देशना करवा मांडी के एक साधारण खातानुं बाजोठ (पेटी) राखवुं, तेने आचार्यनो हुकम लइ उघाडवुं। तेमांना पैसामांथी आचार्यादिकना अग्निसंस्कार स्थाने स्तूपादिक कराववी तथा ज्यां यात्रा अने उजणीओ करवी।

७. आचार्योनी मूर्तियों कराववी।

८. चक्रेश्वरीनी स्तुति में जिनदत्तसूरि ए कह्युं छे के विधि [1]मार्गना शत्रुओंना गला कापनार चक्रेश्वरी मोक्षार्थी जनना विघ्न निवारो।

९. श्रावकने तीन वार सामायिक उच्चराववानी प्ररुपणा करवा मांडी।

१०. अजमेरमां पार्श्वनाथना देरामां तथा पोसहशालामां सरस्वतीनी प्रतिमा थपावी। एज देहरामां जेमने मांस पण चढ़े छे एवी शीतला वगेरा देवियों थपावी।

११. ऐरावण समारुढ़ इत्यादि बली उडावी दिक्पालोंनी पूजा करवाना श्लोको तथा ''सद्वेद्यां भद्रपीठे'' इत्यादि काव्यों चैत्यवासी वादिवैताल शान्तिसूरिना करेल होवाथी सुविहितो ए निषेध कर्या छतां जिनदत्तसूरिए चलाव्या।

इनके अलावा और भी कई बातों को रद्दो बदल कर स्वच्छन्दता पूर्वक आचरण प्रचलित कर डाली। क्या ऐसे भी युगप्रधान हो सकते है?

इस विषय में मैं अब अधिक लिखना ठीक नहीं समझता हूँ। कारण एक तो ग्रन्थ बढ़ जाने का भय है, दूसरा खरतरों में सत्य स्वीकार करने की बुद्धि नहीं है। वे तो उल्टा लेखक उपर एकदम टूट पड़ते हैं। खैर! फिर भी मैं तो उनका उपकार ही समझता हुं कि उन्होंने मुझे इस लेख के लिखने की प्रेरणा की और विश्वास है आगे भी इस प्रकार करते रहेंगे ताकि मुझे प्राचीन ग्रन्थ देखने का अवसर

---

१. **जिनवल्लभसूरिने अपना विधिमार्ग मत अलग स्थापित किया।**

मिलता रहें।

खरतरों का यह सर्व प्रथम कर्तव्य है कि वे हो-हा का हुल्लड न मचा कर जिनदत्तसूरि को गुणयुगप्रधान होना सिद्ध करने के लिए ऐसे ऐसे प्रमाण ढूंढ निकालें कि जिन पर सर्व साधारण विश्वास कर सके।

दीवार नं. ४

कई लोग यह भी कह उठते है कि जिनदत्तसूरिने अपने जीवन में १,२५,००० नये जैन बनाए थे।

समीक्षा :- जैनाचार्योंने लाखों नहीं पर करोड़ों अजैनों को जैन धर्म के उपासक बनाये जिसके कई प्रमाण मिलते हैं। पर जिनदत्तसूरिने किसी एकादो अजैन को भी जैन बनाया हो इसका एक भी प्रमाण नहीं मिलता है। हां जिनवल्लभसूरिने चित्तौड़ के किले में रहकर भगवान् महावीर के पांच कल्याणक के बदले छः कल्याणक की नयी प्ररुपणा की तथा जिनदत्तसूरिने पाटण में स्त्री जिनपूजा का निषेध किया इस कारण जैनसंघने इसका बहिष्कार कर दिया था। इधर इनके गुरुभाई जिनशेखरसूरि के पक्षकार भी जिनदत्तसूरि से खिलाफ हो गए थे। इस हालत में जिनदत्तसूरिने इधर उधर घूमकर भद्रिक जैनों को महावीर के पांच कल्याणक के बदले छः कल्याणक मनवा कर तथा स्त्रियों को प्रभुपूजा छुड़ाकर बारह करोड़ जैनों में से सवा लाख भद्रिक जैनों को पूर्व मान्यता से पतित बनाकर अपने पक्ष में कर भी लिया हो तो इसमें दादाजीने क्या बहादुरी की? क्योंकि उस समय जैनियों की संख्या कोई बारह करोड़ की थी और उसमें से यंत्र मंत्र तंत्र आदि कर सवा लाख मनुष्यों को पतित बनाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है जिस से कि खरतरे अब फूले ही नहीं समाते हैं। यदि खरतर इसमें ही अपना गौरव समझते हैं, तो इससे भी अधिक गौरव ढूंढिया तेरहपंथियों के लिए भी समझना चाहिये। क्योंकि दादाजीने तो १२ करोड़ में से सवा लाख लोगों को अपने पक्ष में किया, पर ढूंढिया तेरहपन्थियोंने तो लाखों मनुष्यों से दो तीन लाख लोगों को पूर्व मान्यता से पतित बना कर अपने उपासक बना लिए। कहिये! अब विशेषता किस की रही? ढूंढियों के सामने तुम्हारे दादाजी के सवा लाख शिष्य किस गिनति में गिने जा सकते हैं?

अस्तु! आधुनिक जिनदत्तसूरि के भक्तोंने जिनदत्तसूरि का एक जीवन लिखा है। उसमें जिन जातियों का उल्लेख किया है उनमें से एक दो जातियों के

---

१. **'हम चोरड़िया खरतर नहीं है' नामक किताब देखो.**

उदाहरण मैं यहां दे देता हूं कि जिन जातियों को जिनदत्तसूरि से प्रतिबोधित लिखी हैं। वे जातियें इतनी प्राचीन हैं कि उस समय वे दादाजी तो क्या पर इन दादाजी की सातवीं पीढी का भी पता नहीं था। अर्थात् वे जातिएँ दादाजी के जन्म के १५०० वर्षों पूर्व भी मौजूद थी। जैसा कि खरतरोंने चोरड़िया जाति के लिये लिखा है कि–

(१) चंदरी के राजा खरहत्थ को जिनदत्तसूरिने प्रतिबोध कर जैन बनाया और चौरों के साथ भिड़ने से उसकी जाति चोरड़िया हुई इत्यादि लिखा है।

अब देखना यह है कि चोरड़िया जाति शुरु से स्वतंत्र जाति है या किसी प्राचीन गोत्र की शाखा हैं? यदि किसी प्राचीन गोत्र की शाखा है तो यह मानना पड़ेगा कि पहले गोत्र हुआ और बाद में उसकी शाखा हुई। इसके लिए यों तो हमारे पासे इस विषय के बहुत प्रमाण हैं, जो चोरड़िया, बाफना, संचेती, रांका और बोत्थरों की किताब में विस्तार से लिखूँगा। पर यहां केवल दो शिलालेख और एक सरकारी परवाना की नकल दे देता हूँ जो कि निम्न लिखित हैं :–

''सं. १५२४ वर्षे मार्गशीर्ष सुद १० शुक्रे उपकेशज्ञातौ आदित्यनाग गोत्रे सा. गुणधर पुत्र सा. डालण भा. कर्पुरी पुत्र स. क्षेत्रपाल भा. जिणदेबाई पुत्र सा. सोहिलन भातृ पासदत्त देवदत्त भा. नामयुत्तेन पुण्यार्थ श्री चन्द्रप्रभ चतुर्विंशति पट्ट कारितः प्रतिष्ठा श्री उपकेशगच्छे कुकुदाचार्य सन्ताने श्री कक्कसूरिः श्रीभद्रनगरे''

बाबू पूर्णचंद्रजी नाहर सं. शि. प्र., पृष्ठ १३, लेखांक ५०

''सं. १५६२ व. वै. सु. १० खौ उपकेशज्ञातौ श्रीआदित्यनाग गोत्रे चोरड़िया शाखायां सा. डालण पुत्र रत्नपालेन स. श्रीपत व. धघुमलयुतेन मातृ पितृ श्रे. श्रीसंभवनाथ बिं. का. प्र. उपकेशगच्छे ककुदाचार्य (सं.) श्रीदेवगुप्तसूरिभिः''

बाबू पूर्ण. सं. शि. प्र., पृष्ठ ११७, लेखांक ४९७

ऊपर दिये हुए शिलालेखों में पहले शिलालेख में आदित्यनाग गोत्र है और दूसरे में आदित्यनाग गोत्र की शाखा चोरड़िया लिखी है इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि चोरड़िया जाति का मूल गोत्र आदित्यनाग है और उसके स्थापक आचार्य रत्नप्रभसूरि है। गोलेच्छा, पारख, गदइया, सावसुखा, नाबरिया, बुचा वगैरह ८४ जातिएँ उस आदित्यनाग गोत्र की शाखएँ हैं।

खरतरगच्छीय यति रामलालजीने अपनी ''महाजनवंश मुक्तावली'' नामक पुस्तक के पृष्ठ १० पर आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा स्थापित [१]अठारह गोत्र में

---

१. **खरतर यति रामलालजीने अपनी ''महाजनवंश मुक्तावली'' किताब के पृष्ठ १० पर आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा स्थापित महाजनवंश के अठारह गौत्रों के नाम इस प्रकार**

''अइच्चणागा'' अर्थात् आदित्यनाग गोत्र लिखा है फिर समझ में नहीं आता है कि जिनदत्तसूरि का जीवन लिखनेवाले आधुनिक लोगोंने यह क्यों लिख मारा कि जिनदत्तसूरिने चोरड़िया जाति बनाई ? जहां चोरड़ियों के घर हैं वहां वे सबके सब आज पर्यन्त उपकेशगच्छ के श्रावक और उपकेशगच्छ के उपाश्रय में बैठनेवाले हैं और उपकेशगच्छ के महात्मा ही इनकी वंशावलियाँ लिखते हैं।

दूसरा आचार्य जिनदत्तसूरि का जीवन गणधर सार्द्धशतक की बृहद् वृत्ति में लिखा है परन्तु उसमें इस बात की गन्ध तक भी नहीं है कि जिनदत्तसूरिने चोरड़िया जाति एवं सवा लाख नये जैन बनाये थे।

संभव है कइ ग्रामों में खरतरगच्छ के आचार्योंने भ्रमण किया होगा और गुलेच्छा, पारख, सावसुखा आदि जो चोरड़ियों की शाखा हैं उन्होंने अधिक परिचय के कारण खरतरगच्छ की क्रिया कर ली होगी। इससे उनको देख कर आधुनिक यतियोंने यह ढाँचा खड़ा कर दिया होगा। परन्तु चोरड़िया किसी भी स्थान पर खरतरों की क्रिया नहीं करते हैं। हां गुलेच्छा, पारख वगैरह चोरड़ियों की शाखा होने पर भी कई स्थानों में खरतरों की क्रिया करते हों और उन्हें खरतर बनाने के लिए ''चोरड़ियों को जिनदत्तसूरिने प्रतिबोध दिया'' ऐसा लिख देना पड़ा है। जो ''मान या न मान मैं तेरा मेहमान'' वाली उक्ति को सर्वांश में चरितार्थ कर बतलाई हैं। पर कल्पित बात आखिर कहाँ तक चल सकती है ? इस चोरड़िया जाति के लिए एक समय अदालती मामला भी चला था और अदालतने मय साबूती के फैसला भी दे दिया था। इतना ही क्यों पर जोधपुर दरबार से इस विषय का परवाना भी कर दिया था। जिसकी नकल में यहां उद्धृत कर देना समुचित समझता हूँ।

-: नकल :-

श्रीनाथजी **मोहर छाप** **श्रीजलंधरनाथजी**

संघवीजी श्री फतेराजजी लिखावतों गढ़ जोधपुर, जालोर, मेड़ता, नागोर, सोजत, जैतारण, बीलाड़ा, पाली, गोड़वाड़, सीवाना, फलोदी, डिड़वाना, पर्वतसर,

---

लिखे हैं :-

''तातेड़, बाफना, कर्णाट, बलहरा, मोरक, कुलहट, विरहट, श्री (श्रीमाल, श्रेष्ठि, सहचेती (संचेती), अइचणागा (आदित्यनाग) भुरि, भाद्र, चिंचट, कुमट, डिडु, कनोजिया, लघुश्रेष्ठि.''

इनमें जो अइचणाग (आदित्यनाग) मूल गोत्र है। चोरड़िया उसकी शाखा है जो उपर के शिलालेख में बतलाइ गई है।

वगैरह परगनों में ओसवाल अठारह खोपरी दिशा तथा थांरे ठेठु गुरु कवलागच्छरा भट्टारक सिद्धसूरिजी है जिणोंने तथा इणांरा चेला हुवे जिणांने गुरु करीने मानजो ने जिको नहीं मानसी तीको दरबार में रु. १०१ कपुररा देशीने परगना में सिकादर हुसी तीको उपर करसी। इणोंरा आगला परवाणां खास इणोंकने हाजिर हैं।

(१) महाराजाजी श्री अजितसिंहजीरी सिलामतीरो खास परवाणो सं. १७५७ रा आसोज सुद १४ रो।

(२) महाराज श्री अभयसिंहजीरी खास सिलामतीरो खास परवाणो सं. १७८१ रा जेठ सुद ६ रो।

(३) महाराज बड़ा महाराज श्री विजयसिंहजीरी सिलामतीरो खास परवाणो सं. १८३५ रा आषाढ वद ३ रो।

(४) इण मुजब आगला परवाणा श्री हजुर में मालुम हुआ तरे फेर श्री हजुररे खास दस्तखतोरो परवाणो सं. १८७७ रा वैशाख वद ७ रो हुओ है तिण मुजब रहसी।

विगत खांप अठारेरी–तातेड़, बाफणा, वेदमुहता, चोरडिया, करणावट, संचेती, समदड़िया, गदइया, लुणावत, कुम्भट, भटेवरा, छाजेड़, वरहट, श्रीश्रीमाल, लघुश्रेष्ठी, मोरख–पोकरणा, रांका, डिडू इतरी खाँपांवाला सारा भट्टारक सिद्धसूरि और इणोंरा चेला हुवे जिणांने गुरु करने मानजो अने गच्छरी लाग हुवे तिका इणांने दीजो।

अबार इणोंरेने लुंकोरा जातियोंरे चोरडियोंरी खांपरो असरचो पड़ियो, जद अदालत में न्याय हुवोने जोधपुर, नागोर, मेड़ता, पीपाड़रा चोरड़ियोंरी खबर मंगाई तरे उणोंने लिखायो के मारे ठेठु गुरु कवलागच्छरा है तिणा माफिक दरबारसु निरधार कर परवाणो कर दियो हैं सो इण मुजब रहसी श्री हजूररो हुकम है। सं. १८७८ पोष वद १४।

इस परवाना के पीछे लिखा हैं (नकल हजूररे दफ्तर में लीधी छे)

इन पांच परवानों से यह सिद्ध होता है कि अठारा गोत्रवाले कवला (उपकेश) गच्छ के उपासक हैं। यद्यपि इस परवाना में १८ गोत्रों के अन्दर से तीन गोत्र कुलहट चिंचट (देसरड़ा), कनोजिया इस में नहीं आये हैं। उनके बदले गदइया, जो चोरड़ियों की शाखा है, लुनावत और छाजेड़ जो उपकेश गच्छाचार्योंने बाद में प्रतिबोध दे दोनों जातियां बनाई हैं इनके नाम दर्ज कर १८ की संख्या पूरी की है। तथापि मैं यहां केवल चोरड़िया जाति के लिये ही लिख रहा हूं। शेष जातियों के लिये देखो ''जैनजाति निर्णय'' नामक मेरी लिखी हुई पुस्तक।

ऊपर के शिलालेखों से और जोधपुर दरबार के पांच परवानों से डंके की

चोट सिद्ध है कि चोरड़िया जाति जिनदत्तसूरिने नहीं बनाई, पर जिनदत्तसूरि के पूर्व १५०० वर्षों के आचार्य रत्नप्रभसूरिने ''महाजन संघ'' बनाया था उसके अन्तर्गत आदित्यनाग गोत्र की एक शाखा चोरड़िया है। जब चोरड़िया जाति उपकेशगच्छ की उपासक है तब चोरड़ियों से निकली हुई गुलेच्छा, गदइया, पारख, सावसुखा, बुचा, नाबरिया आदि ८४ जातिएं भी उपकेशगच्छाचार्य प्रतिबोधित उपकेशगच्छोपासक ही हैं।

यदि किसी स्थान पर कोई जाति अधिक परिचय के कारण किसी अन्य गच्छ की क्रिया करने लग जाय तो भी उनका गच्छ तो वही रहेगा जो पूर्व में था। यदि ऐसा न हो तो पूर्वाचार्य प्रतिबोधित कई जातियों के लोग ढूंढिया, तेरहपन्थियों के उपासक बन उनकी क्रिया करते हैं, पर इस से यह कभी नहीं समझा जा सकता कि उन जातियों के प्रतिबोधक ढूंढकाचार्य हैं। इसी भांति खरतरों के लिए भी समझ लेना चाहिये। इस विषय में यदि विशेष जानना हो तो मेरी लिखी ''जैनजातियों के गच्छों का इतिहास'' नामक पुस्तक पढ़ कर निर्णय कर लेना चाहिये।

जिनदत्तसूरि के बनाये हुए सवा लाख जैनों में एक बाफना जाति का भी नाम लिखा है परन्तु वह भी जिनदत्तसूरि के १५०० वर्ष पूर्व आचार्य रत्नप्रभसूरि द्वारा बनाई गई थी और बाफनो का मूल गोत्र बप्पनाग है। विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक बाफनों का मूल गोत्र बप्पनाग ही प्रसिद्ध था, इतना ही क्यों पर शिलालेखों में भी उक्त नाम ही लिखा जाता था। उदाहरणार्थ एक शिलालेख की प्रति लिपी यह है–

''सं. १३८६ वर्षे ज्येष्ठ व. ५ सोमे श्रीउपकेशगच्छे बप्पनाग गोत्रे गोल्ह भार्या गुणादे पुत्र मोखटेन मातृपितृश्रेयसे सुमतिनाथबिम्बं कारितं प्र. श्रीककुदाचार्य सं. श्री कक्कसूरिभिः।

बाबू पूर्णचंद्रजी सं. शि. तृ., पृष्ठ ६४, लेखांक २२५३

इस लेख से यह पाया जाता है कि बाफनों का मूल गोत्र बप्पनाग है और इनके प्रतिबोधक जिनदत्तसूरि के १५०० वर्षों पहले हुए आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि हैं। इस शिलालेख में १३८६ के वर्ष में ''उपकेशगच्छे बप्पनागगोत्रे'' ऐसा लिखा हुआ है फिर समझ में नहीं आता है कि ऐसी ऐसी मिथ्या बातें लिख खरतरे अपने आचार्यों की खोटी महिमा क्यों करते हैं? यदि खरतरों के पास कोई प्रामाणिक प्रमाण हो तो जनता के सामने रक्खें अन्यथा ऐसी मायावी बातों से न तो आचार्यों की कोई तारीफ होती है और न गच्छ का गौरव बढ़ता है बल्कि उल्टी हँसी होती है।

जब बाफना उपकेशगच्छ प्रतिबोधित उपकेशगच्छोपासक श्रावक हैं तब

बाफनों से निकली हुई नाहटा, जांगड़ा, वैतालादि ५२ जातिएँ भी उपकेशगच्छ के ही श्रावक हैं। फिर जिनदत्तसूरि के ऊपर यह बोझ क्यों लादा जाता है? यदि कभी जिनदत्तसूरि आकर खरतरों को पूछे कि मैंने कब बाफना जाति बनाई थी? तो खरतरों के पास क्या कोई उत्तर देने को प्रमाण है? (नहीं)

जैसे चोरड़ियों के लिये जोधपुर की अदालत में इन्साफ हुआ है वैसे ही बाफनों के लिए जैसलमेर की अदालत में न्याय हुआ था। वि. सं. १८९१ में जैसलमेर के पटवों (बाफनों) ने श्रीशत्रुंजय का संघ निकालने का निश्चय किया उस समय खरतर गच्छाचार्य महेन्द्रसूरि वहां विद्यमान थे। इस बात का पता बीकानेर में विराजमान उपकेशगच्छाचार्य कक्कसूरि को मिला। उन्होंने बाफनों की वंशावलियों की बहियों देकर ११ विद्वान साधुओं को जैसलमेर भेजा और वे वहां पहुंचे। संघ रवाना होने के समय वासक्षेप देने में तकरार हो गई, क्योंकि खरतराचार्यने कहा कि बाफना हमारे गच्छ के हैं, वासक्षेप हम देंगे और उपकेशगच्छवालोंने कहा कि बाफना हमारे गच्छ के श्रावक हैं अतः वासक्षेप हम लोग देंगे। झगड़ा यहां तक बढ़ गया कि दोनों गच्छवाले जैसलमेर के महाराज गजसिंहजी के दरबार तक पहुंच गए। रावल गजसिंहजीने दोनों को साबूती पूछी तो उपकेशगच्छवालोंने तो अपने प्रमाण की बहियों दरबार के सामने रख दी, पर खरतरों के पास तो केवल जबानी जमा खर्च के और कुछ था ही नहीं। वे क्या सबूत देते? महाराज गजसिंहजीने इन्साफ किया कि उपकेशगच्छ वाले कुलगुरु हैं और खरतरगच्छवाले क्रियागुरु है। वासक्षेप देने का अधिकार उपकेशगच्छवालों को है क्योंकि बाफनों के मूल प्रतिबोधक आचार्य रत्नप्रभसूरि उपकेशगच्छ के ही हैं। बस! फिर क्या था? खरतरे तो मुंह ताकते दूर खड़े रहे और संघ प्रस्थान का वासक्षेप उपकेशगच्छीय यतिवर्योंने दिया। संघ वहां से यात्रार्थ रवाना हुआ। इस विषय का उल्लेख विस्तार से बीकानेर की बहियों में है।

शेष जातियों के लिए इतना समय तथा स्थान नहीं है कि मैं सबके लिए विस्तार से लिख सकूं। तथापि संक्षेप में इतना अवश्य कह देता हूँ कि जिनदत्तसूरि के जीवन में जिन जातियों का नामोल्लेख किया है उनमें एक भी जाति ऐसी नहीं है कि जो जिनदत्तसूरिने बनाई हो, क्योंकि नाहटा, राखेचा, बहुफूणा, दफ्तरी, चोपड़ा, छाजेड़, संचेती, पारख, गुलेच्छा, बलाह, पटवा, दुघड़, लुणावत, नाचरिया, कांकरिया और श्रीश्रीमाल आदि जातियाँ उपकेशगच्छाचार्य प्रतिबोधित हैं। बोथरा, बच्छावत, मुकीम धाड़िवाल, फोफलिया, शेखावत आदि जातियें कोरंटगच्छाचार्य प्रतिबोधित हैं। कोठारी, दुधेड़िया जातिएं वायट गच्छाचार्योंने बनाई हैं। कटारीयां वड़ेरा

आंचलगच्छ के और नाहर नागपुरिया तपागच्छ के, सेठिया संखेश्वरा गच्छ के तथा भंडारी संडेरागच्छ के हैं। डागा मालु नाणावल गच्छ के नौलखा, बरड़िया, बांठिया, शाह, हरखाबत, लोढा आदि तपागच्छ के हैं। इस विषय का विशेष खुलासा मेरी लिखी "जैन जातियों के गच्छों का इतिहास" नाम की पुस्तक में देखो।

प्यारे खरतर भाईयों! अब वह अन्धकार और गतानुगति का जमाना नहीं है, जो आप झूठ मूठ बातें लिख कर भोले भाले लोगों को धोखा दे अपना अनुचित स्वार्थ सिद्ध कर सको। आज तो बीसवीं सदी है, मुंहसे बात निकालते ही जनता प्रमाण पूछती है। आप जिन जातियों को जिनदत्तसूरि द्वारा प्रस्थापित होने का लिखते हो क्या उनके लिये एकाध प्रमाण भी बता सकते हो? मैंने कोई १२ वर्ष पहले पूर्वोक्त जातियों के लिए ऐतिहासिक प्रमाणों के साथ "जैनजाति निर्णय" नामक पुस्तक प्रकाशित करवाई थी पर उसके प्रतिवाद में असभ्य शब्दों में मुझे गालियों के सिवाय आज पर्यन्त एक भी प्रमाण आपने नहीं दिया है और अब उम्मेद भी नहीं है, क्योंकि जहां केवल जबानी जमा खर्च रहता है वहां प्रमाणों की आशा भी क्या रखी जा सकती है?

यदि किसी ग्राम में अधिक परिचय के कारण कई जातियों को खरतरगच्छ की क्रिया करते देख के ही यह ढांचा तैयार किया हो तो आपने बड़ी भारी भूल की है। क्योंकि पूर्वोक्त जातियां कइं स्थानों पर ढूंढिया और तेरहपन्थियों की क्रियाएं भी करती हैं। पर इस से यह मानने को तो आप भी तैयार न होंगे कि उन जातियों की स्थापना किसी ढूंढिये या तेरहपन्थी आचार्यने की है। अतएव यह बात हम बिना संकोच के कह सकते हैं कि खरतरों के किसी आचार्यने एक भी नया ओसवाल नहीं बनाया। आपने जो अपने उपासक बनाये हैं वे सब जैनसंघ में फूट डाल कर भगवान् महावीर के पांच कल्याणक माननेवाले थे, उन्हें छः कल्याणक मनवा कर और स्त्रियें जो प्रभुपूजा करती थी उन से प्रभुपूजा छुडा कर अर्थात् उनके कल्याण कार्य संपादन में अन्तराय दे कर, जैसे ढूंढियोंने जिन लोगों को मूर्तिपूजा छूडा कर और तेरहपंथियोंने दया दान के शत्रु बना कर अपने श्रावक माने हैं वैसे ही आप खरतरोंने भी इन से बढ़के कुछ काम नहीं किया है। इस लिये किसी जैन को खरतरों की लिखी मिथ्या कल्पित पुस्तकों को पढ़ कर भ्रम में न पड़ना चाहिये। और अपनी अपनी जाति की उत्पत्ति का निर्णय कर अपने मूल प्रतिबोधक आचार्यों का उपकार और उनके गच्छ को ही अपना गच्छ समझना चाहिये।

दीवार नंबर ५

कई खरतर भक्त यह कह उठते हैं कि कई ब्राह्मणोंने एक मृत गाय को जिनदत्तसूरि के मकान में डलवा दी। तब जिनदत्तसूरिने उस मृत गाय को ब्राह्मणों के शिवालय में फिंकवा दी। इस चमत्कार को देख वे ब्राह्मण लोग दादाजी के भक्त बन गए। इत्यादि-

समीक्षा-अव्वल तो इस बात के लिये खरतरों के पास कोई भी प्रामाणिक नहीं है तब प्रमाणशून्य ऐसी मिथ्या गप्पें हांकने में क्या फायदा है? और ऐसी कल्पित बातों से जिनदत्तसूरि की तारीफ नहीं प्रत्युत हांसी होती है।

वास्तव में ८४ गच्छों में एक वायट नाम का गच्छ हैं, उसमें कई जिनदत्तसूरि नाम के आचार्य हुए हैं। यह गायवाली घटना एक बार उन वायट गच्छाचार्यों के साथ घटी थी। खरतरोंने वायट गच्छीय जिनदत्तसूरि व जीवदेवसूरि की घटना अपने जिनदत्तसूरि के साथ लिख मारी है।

प्रभाविक चरित्र जो प्रामाणिक आचार्य प्रभावचन्द्रसूरिने विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में बनाया है और वह मुद्रित भी हो चुका है उसमें निम्नलिखित वर्णन है। पाठक इसे पढ़ सत्यासत्य का स्वयं विवेचन कर लें।

अन्यदा बटवः पाप-पटवः कटवो गिरा ।
आलोच्य सूरभिं कांचि-दंचन्मृत्युदशास्थिताम् ॥ १३१ ॥
उत्पाट्योत्पाट्य चरणान्निशायां तां भृशं कृशाम् ।
श्रीमहावीरचैत्यान्तस्तदा प्रावेशयन् हटात् ॥ १३२ ॥ युग्मम्
गतप्राणां च तां मत्वा बहिः स्थित्वाऽतिहर्षतः ।
ते प्राहुरत्र विज्ञेयं जैनानां वैभवं महत् ॥ १३३ ॥
वीक्ष्य प्रातर्विनोदोऽयं श्वेताम्बरविडम्बकः ।
इत्थञ्च कौतुकाविष्टास्तस्थुर्देवकुलादिके ॥ १३४ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय यतयो यावदङ्गणे ।
पश्यन्ति तां मृतां चेतस्यकस्माद्विस्मयावहाम् ॥ १३५ ॥
निवेदिते गुरुणाञ्च चित्रेऽस्मिन्नरतिप्रदे ।
अचिन्त्यशक्तयस्ते च नाऽक्षुभ्यन् सिंहसन्निभाः ॥ १३६ ॥
मुनीन् मुक्त्वाङ्गरक्षार्थं मठान्तः पट्टसंन्निधौ ।
अमानुषप्रचारेऽत्र ध्यानं भेजुः स्वयं शुभम् ॥ १३७ ॥
अन्तर्मुहूर्त्तमात्रेण सा धेनुः स्वयमुत्थिता ।

चेतनाकेतनाचित्रहेतुश्चैत्याद्बहिर्ययौ ॥ १३८ ॥
पश्यन्तस्ताञ्च गच्छन्तीं प्रवीणाः ब्राह्मणास्तदा ।
दध्युरध्युषिता रात्रौ मृता चैत्यात्कथं निरैत् ॥ १३९ ॥
नाऽणुकारणमत्राऽस्ति, व्यसनं दृश्यते महत् ।
अबद्धा विप्रजातिर्यद् दुर्ग्रहा बटुमण्डली ॥ १४० ॥
एवं विमृशतां तेषां गौब्रह्मभवनोन्मुखी ।
प्रेंखत्पदोदयापित्र्यस्नेहेनेव हृता ययौ ॥ १४१ ॥
यावत्तत्पूजकः प्रातर्द्वारमुद्घाटयत्यसौ ।
उत्सुका सुरभिर्ब्रह्मभवने तावदाविशत् ॥ १४२ ॥
खेटयन्तं बहिः शृङ्गयुगेनाऽमुं प्रपात्य च ।
गर्भागारे प्रविश्याऽसौ ब्रह्ममूर्तेः पुरोऽपतत् ॥ १४३ ॥
तद्ध्यानं पारयामास, जीवदेवप्रभुस्ततः ।
पूजको झल्लरीनादान्महास्थानममेलयत् ॥ १४४ ॥
विस्मिताः ब्राह्मणाः सर्वे मतिमूढास्ततोऽवदन् ।
तदा दध्युरयं स्वप्नः सर्वेषाञ्च मतिभ्रमः ॥ १४५ ॥

''प्रभाविक चरित्र, पृष्ठ ८७''

उपर्युक्त प्रमाण से स्पष्ट सिद्ध है कि गाय की घटना जिनदत्तसूरि के साथ नहीं पर वायट गच्छीय जिनदत्तसूरि के पट्टधर जीवदेवसूरि के साथ घटी थी जिस को खरतरोंने अपने जिनदत्तसूरि के साथ जोड़ कर दादाजी की मिथ्या महिमा बढाइ है। क्या खरतर इस विषय का कोई भी प्रमाण दे सकते हैं? जैसा हमने प्रभाविक चरित्र का प्राचीन प्रमाण दिया है।

दीवार नंबर ६

कई खरतरों का यह भी कहना है कि दादाजी जिनदत्तसूरिने बिजली को अपने पात्र के नीचे दबाकर रख दी और उससे वचन लिया कि मैं खरतरगच्छवालों पर कभी नहीं पडूँगी इत्यादि।

समीक्षा-प्रथम तो इस कथन में कोई भी प्रमाण नहीं है, केवल कल्पना का कलेवर ही हैं। दूसरा यह कथन जैसा शास्त्रविरुद्ध है वैसा लोकविरुद्ध भी हैं, क्योंकि बिजली के अन्दर अग्निकाय की सत्ता है, वह काष्ठ के पात्र के नीचे दबाइ हुई नहीं रह सकती। तीसरा-बिजली के अन्दर जो अग्नि है वह एकेन्द्रिय होने के कारण उसके वचन भी नहीं है। इस हालत में वह दादाजी को वचन कैसे

दे सकी ? शायद जिनदत्तसूरिने उस बिजली (अग्नि) में किसी भूत प्रवेश कर के वचन ले लिया हो तो बात दूसरी है।

खरतर लोग जिनदत्तसूरि को युगप्रधान बतलाते हैं फिर जिनदत्तसूरि के इतना पक्षपात क्यों ? जो बिजली के पास वचन केवल खरतरगच्छ के लिए ही लिया। क्या अखिल जैनों के लिए वचन लेना दादाजीने ठीक नहीं समझा था ? पक्षपात का एक उदाहरण और भी मिलता है जो योगिनियों के पास सात वरदान लिये उसमें एक वह भी वरदान है कि खरतर श्रावक सिन्ध देश में जायेंगे तो ये निर्धन नहीं होंगे। क्या युगप्रधान का ये ही लक्षण हुआ करता हैं ? अपने गच्छ के अलावा दूसरे जैनों पर बिजली गिरे या वे निर्धन हो इसकी युगप्रधानों को परवाह ही नहीं। वास्तव में जैसे गायवाली घटना यतियोंने दादाजी की महिमा बढ़ाने को गढ़ ली है, वैसे ही बिजली की कल्पित कथा भी गढ डाली है। यदि ऐसा न होता तो कुछ वर्षों पूर्व जब खरतरगच्छीय कृपाचन्दजी मालवा में रतलाम के पास एक ग्राम् में प्रतिक्रमण कर रहे थे उस समय जोर से बिजली गिरी, जिससे २-३ श्रावकों को बड़ा भारी नुकशान हुआ, तो क्या कृपाचन्द्रजी खरतर गच्छ के नहीं थे ? या बिजली अपना वचन भूल गई थी ? खरतरों ! ऐसी झूठ मूठ बातों से तुम अपने आचार्यों की शोभा बढ़ानी चाहते हो, पर याद रक्खो तुम्हारी इस धांधली से उल्टी हंसी ही होती है। क्या दादाजी के किसी जीवन में ऐसी असत्य बातें लिखी हैं ? यदि हिम्मत हो तो भला एकाद पुष्ठ प्रमाण दे अपने कलंक का परिमार्जन करो। इत्यलम्।

दीवार नंबर ७

कइ खरतर लोग कहा करते है कि दादा जिनदत्तसूरिने ५२ वीर और ६४ योगिनीयों को वश में कर ली थी इत्यादि।

समीक्षा-इस कथन में क्या प्रमाण है ? कुछ नहीं। भले जिनदत्तसूरिने ५२ वीर और ६४ योगिनियों को वश में कर शासन का क्या अर्थ करवाया ? जिस समय मुसलमान लोग जैन मन्दिर-मूर्तियां तोड़ रहे थे उस समय वे ५२ वीर और ६४ योगिनिएं किस गुफा में गुप्त रहकर दादाजी की सेवा कर रहे थे ?

शायद जिनदत्तसूरि और जिनशेखरसूरि इन दोनों गुरु भाइयों में जब आचार्य पदवी के लिए बड़ा भारी क्लेश चल रहा था तब जिनदत्तसूरि के पक्ष में ५२ वीर-लडाकु पुरुष और ६४ औरतें लड़ती होगी ! बाद में पीछे के लोगोंने उन ५२ लड़वैयों को वीर और ६४ औरतों को योगिनीएं लिख दी हों तो यह बात ठीक संभव हो सकती है। यदि ऐसा न हो तो खरतरों का कर्तव्य है कि वे जिनदत्तसूरि

के समसामायिक किसी प्रामाणिक ग्रंथ का प्रमाण जनता के सामने रख अपनी बात को सिद्ध कर बतलावे। याद रहे यह बीसवीं शताब्दी है। असभ्य शब्दों में गालीगलौज करने से या आधुनिक यतियों के लिखे पोथों का प्रमाण से अब काम नहीं चलेगा।

दीवार नंबर ८

कइ खरतर लोग जिनदत्तसूरि के जीवन में यह भी लिखते है कि योगिनियोंने दादाजी को सात वरदान दिए, जिनमें एक यह वरदान भी है कि खरतरगच्छ में यदि कोई कुमारी कन्या दीक्षा लेगी तो वह ऋतुधर्म में नहीं आएगी इत्यादि।

समीक्षा-गच्छराग और गुरुभक्ति इसीका ही तो नाम है, फिर चाहे वह बात शास्त्र और कुदरत से खिलाफ ही क्यों न हो ? पर अपने गच्छ या आचार्यों की महिमा बढ़ाने के लिए वे ऐसी भद्दी बातें कहने में तनिक भी विचार नहीं करते हैं। भला इस खरतरगच्छ में बहुत सी कुमारी कन्याओंने दीक्षा ली थी और वर्तमान में भी विद्यमान हैं, किन्तु ये सबकी सब यथाकाल ऋतुधर्म को प्राप्त होती हैं। इस हालत में खरतरों को समझना चाहिये कि या तो वे कुमारी कन्याएं दीक्षा लेने के उपरान्त कुमारी नहीं रह सकी या योगिनियों का वचन असत्य है। खरतरों को जरा सोचना चाहिये कि ऐसी भद्दी बातों से गच्छ व दादाजी की तारीफ होती हैं या हंसी ? क्योंकि इस प्रत्यक्ष प्रमाण को कोई भी इन्कार नहीं कर सकता हैं।

दीवार नंबर ९

आधुनिक कइ खरतर लोग प्रतिक्रमण के समय दादाजी का काउस्सग्ग करते हैं तब कहते हैं कि ''चौरासी गच्छ शृंगारहार'' और आधुनिक लोग जिनदत्तसूरि के जीवन में बताते हैं कि ८४ गच्छ में ऐसा कोई भी प्रभाविक आचार्य नहीं हुआ हैं, इस से जिनदत्तसूरि को ८४ गच्छवाले ही मानते हैं। इत्यादि।

समीक्षा-चौरासी गच्छों को तो रहने दीजिये पर जिनवल्लभसूरि को संतान अर्थात् जिनशेखरसूरि के पक्षवाले भी जिनदत्तसूरि को प्रभाविक नहीं मानते थे। यही कारण है कि जिनदत्तसूरि से खिलाफ होकर उन्होंने अपना रुद्रपाली नामक अलग गच्छ निकाला। जब एक गुरुके शिष्यों की भी यह बात है तो अन्य गच्छों के लिए तो बात ही कहां रही ?

चौरासी गच्छों में जिनदत्तसूरि के सदृश कोई भी आचार्य नहीं हुआ, शायद इसका कारण यह हो कि ८४ गच्छों में किसीने स्त्रीपूजा का निषेध नहीं किया परन्तु एक जिनदत्तसूरिने ही किया। और भी भगवान् महावीर के छः कल्याणक, श्रावक को तीन बार करेमि भंते, सामायिक उच्चराना। पहले सामायिक और बाद में

इरियावही आदि जिनशास्त्र के विरुद्ध प्ररुपणा किसी अन्याचार्योंने नहीं की जैसी कि जिनदत्तसूरिने की थी।

चौरासी गच्छोंवाले जिनदत्तसूरि को प्रभाविक नहीं पर उत्सूत्र प्ररुपक निह्नव जरुर मानते थे। और उन्होंने स्त्रीपूजा का निषेध कर उत्सूत्र की प्ररुपणा भी की थी। क्या खरतर इस बात को सिद्ध करने को तैयार है कि जिनदत्तसूरिने स्त्रीपूजा निषेध की वह शास्त्रानुसार की थी और इस बात को ८४ गच्छवाले मान कर जिनदत्तसूरि को प्रभाविक मानते थे ? अन्यथा यही कहना पड़ता है कि खरतरोंने केवल हठधर्मी से ''मान या न मान मैं तेरा मेहमान'' वाला काम ही किया है। और इस प्रकार जबरन मेहमान बनने का नतीजा यह हुआ कि एक शहर में पहले तो समझदार खरतर दादाजी का काउस्सग्ग करते समय ''खरतर गच्छशृंगार'' कहते थे पर आधुनिक ''चौरासीगच्छशृंगार'' कहने लग गए। जिसका यह नतीजा हुआ कि खरतरगच्छवाला एक समय तपागच्छ के साथ में प्रतिक्रमण करते हुए खरतरोंने ''चौरासीगच्छशृंङ्गारहार'' कहा इतने में एक भाई बोल उठा कि दादाजी हमारे गच्छ के शृंगारहार नहीं हैं, आप ८३ गच्छशृंगार बोले ! अब इसमें मेहमानों की क्या इज्जत रही ? यदि रुद्रपाली गच्छ की मौजूदगी में यह काउस्सग्ग किया जाता तो कुछ और ही बनाव बनता। खैर ! खरतरगच्छवालों को चाहिये कि वे अपने आचार्य को चाहे जिस रुप में माने, पर शेष गच्छवालों के शृंगारहार बनाना मानो अपना और अपने आचार्य का अपमान कराना है। यदि खरतरों के पास ८४ गच्छवालों का कोई प्रमाण हो कि जिनदत्तसूरि को वे अपने शृंगारहार मानते हैं, तो उसे शीघ्र जनता के सामने रखना चाहिये।

यदि कोई किसी के गुणों पर मुग्ध हो उस गुणीजन को पूज्यदृष्टि से मानता भी हो तो उसकी संतान को इस बात का आग्रह करने से क्या फायदा है ? जैसे खरतरगच्छीय जिनप्रभसूरिने एक देवी द्वारा महाविदेह में विराजमान श्रीसीमन्धर तीर्थंकर से निर्णय कराया कि भारत में किस गच्छ का उदय होगा ? और प्रभाविक आचार्य कौन हैं ? इस प्रश्न का उत्तर तीर्थंकर श्रीसीमन्धर के मुँह से सुन कर देवीने जिनप्रभसूरि के पास आकर कहा कि भारत में तपागच्छीय सोमतिलकसूरि महाप्रभाविक हैं, उनके गच्छ का उदय होगा। इस पर जिनप्रभसूरि अपने बनाये सब ग्रंथ ले कर सोमतिलकसूरि के पास आए और उन्हें वन्दन कर वे ग्रंथ उनको अर्पण कर दिये। इस बात का प्रमाण काव्यमाला के सप्तम गुच्छक में मुद्रित हो चुका है। दादाजी के समय कक्कसूरि नामक आचार्य को सब गच्छोंवाले राजगुरु के नाम से मान कर पूजा करते थे, कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य उनके चरणों में शीश झूकाता

था पर उनकी संतानने कभी ऐसे शब्दोच्चारण नहीं किया कि हमारे आचार्य ऐसे हुए हैं, कारण केवल कहने से ही उनका महत्व नहीं बढ़ता हैं पर काम करनेवालों को सब लोग पूज्यद्दष्टि से देखते हैं।

इतना होने पर भी तपागच्छीय किसी व्यक्तिने यह नहीं कहा कि इस समय भारत में तपागच्छ का ही उदय है। और न उनको कहने की आवश्यकता ही है, क्योंकि तपागच्छ के आधुनिक प्रभाव को जनता स्वयं जानती है। कहा है कि :-

''नहि कस्तूरिका गन्ध शपथेन विभाव्य।''

अर्थात्-कस्तूरी की सुगन्ध सौगन्ध से सिद्ध नहीं होती, वह तो स्वयं जाहिर होती है। जिनदत्तसूरि के लिये केवल आधुनिक खरतरे ही यह कहते हैं कि ८४ गच्छों में जिनदत्तसूरि जैसा कोई प्रभाविक व्यक्ति हुआ ही नहीं, पर शेष गच्छवाले तो इन का कभी जिक्र ही नहीं करते हैं। जिनदत्तसूरि के समकालिन आचार्य हेमचन्द्रसूरिने परमार्हत कुमारपाल को जैन बना कर जैनधर्म की महान् प्रभावना की तब जिनदत्तसूरिने शासन में भयङ्कर विरोध उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया। जिसका कटु फल आज तक जैनजगत् चाख रहा है। इस प्रकार प्रत्येक गच्छ में प्रभाविक आचार्य हुए है।

खरतरों! जरा समय को पहचानों, सोच समझ कर बातें करो तथा विवेक से लिखो, ताकि आज की जनता जरा आप की भी कदर करे, अन्यथा याद रक्खो :-

''विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखाः''

दीवार नंबर १०

कइ खरतर लोग लिखते हैं कि दादाजी जिनदत्तसूरिने सिन्धदेश में जा कर पांच पीरों को साधे थे इत्यादि।

समीक्षा-भगवान् महावीर के पश्चात् और जिनदत्तसूरि के पूर्व हजारों जैनाचार्य हो गुजरे, पर मुसलमान जैसे निर्दय पीरों की किसीने आराधना नहीं की और मोक्ष मार्ग की आराधना करनेवाले मुमुक्षुओं को ऐसे निर्दय पीरों को साधने की कोई जरुरत भी नहीं थी, फिर जिनदत्तसूरि को ही ऐसी क्या गरज पड़ी थी कि वे पीरों की आराधना की थी? और यदि की भी थी तो फिर वह किस विधि विधान से? जैन विधि से या पीरों की विधि से? उस साधना में बलि बाकुल किस पदार्थ का किस विधि से दिया? भला, पांच पीरों को साध कर जिनदत्तसूरि ने क्या किया? क्या किसी मुसलमान को भारत पर आक्रमण करते को रोका या

मन्दिर-मूर्तियें तोड़ते को वहां से भगाया ? मेरे ख्याल से जिनदत्तसूरिने इन में से तो कुछ नहीं किया। हाँ, शायद उस समय जिनदत्तसूरि और जिनशेखरसूरि इन दोनों गुरुभाईयों में पारस्परिक द्वन्द्वता चल रही थी, इस कारण किसी जैन या हिन्दू देवताने तो जिनदत्तसूरि की सहायता न की हो और इस से उन यवन पीरों की साधना की हो तो बात दूसरी है, पर खरतरों को चाहिये कि वे दो बातों के प्रमाण बतलावें। एक तो यह बात किस प्राचीन शास्त्र में लिखी है कि जिनदत्तसूरिने पांच पीरों की साधना की और दूसरा उन पांच पीरों से उन्होंने क्या अभीष्ट सिद्धि की थी ? यदि जिनशेखरसूरि के लिए ही पीरों को साधन किया हो तो उस समय जिनशेखरसूरि का समुदाय विद्यमान ही था। पीरों द्वारा उनको क्या नसियत दी ?

दीवार नंबर ११

कई खरतर कहते हैं कि जिनदत्तसूरिने ''स्त्रियों को जिनपूजा करने का निषेध किया है'' इसलिए खरतरगच्छ में आज तक स्त्रियाँ पूजा नहीं करती हैं। यदि कोई तीर्थयात्रा वगैरह में अन्य गच्छीयों की देखादेखी पूजा करती भी हैं वे दादाजी की आज्ञा का भंग करती हैं। इत्यादि।

समीक्षा-जिनदत्तसूरि के पूर्व तीर्थंकर, गणधर और सैकड़ों आचार्य हुए पर किसीने स्त्रीपूजा का निषेध नहीं किया। इतना ही क्यों पर जिनदत्तसूरि के गुरु जिनवल्लभसूरिने भी कइ तरह की स्थापना उत्थापना की परन्तु स्त्रियों को प्रभुपूजा करने से तो उन्होंने भी निषेध नहीं किया। फिर समझ में नहीं आता है कि जिनदत्तसूरि को ही यह स्वप्न क्यों आया कि जो उन्होंने स्त्रीपूजा निषेध कर उत्सूत्र की प्ररुपणा की। शायद किसी औरत के साथ दादाजी का झगड़ा हो गया हो और दादाजीने आवेश में आकर कह दिया हो कि जाओ तुमको प्रभुपूजा करना नहीं कल्पता हैं। बाद लकीर के फकीरोंने इस बात को आग्रह कर पकड़ ली हो, जैसे कि कोई कोई हठधर्मी व्यक्ति खरपुच्छ पकड़ने पर नहीं छोड़ता है तो ऐसा संभव हो सकता है।

यदि ऐसा नहीं हुआ हो तो शास्त्रों में स्त्रीपूजा के खुल्लमखुल्ला पाठ होने पर भी फिर यह अर्द्ध ढूँढियों की प्ररुपणा दादाजी कभी नहीं करते और शायद दादाजीने किसी द्वेष के कारण यह कर भी दिया तो पिछले लोग सदा के लिए इसको पकड़ नहीं रखते। अब हम कतिपय शास्त्रों के प्रमाण यहाँ उद्धृत करते हैं।

१. श्री ज्ञातासूत्र में महासती द्रौपदीने जिनपूजा की है।

२. उत्तराध्ययनसूत्र में महासती प्रभावतीने प्रभुपूजा की है।

३. श्री भगवतीसूत्र में मृगावती जयंतिने जिनपूजा की है।

४. श्रीपाल चरित्र में मदनमञ्जूषा आदि स्त्रियोंने प्रभुपूजा और अंगीरचना की है।

५. राजा श्रेणिक की रानी चेलना हंमेशां पूजा करती थी।

इत्यादि स्त्रियों की पूजा के प्रमाण लिखे जाय तो एक बृहद् ग्रंथ बन सकता है, पर इस बात के लिए प्रमाणों की आवश्यकता ही क्या है ? क्योंकि जहां श्रावकों को पूजा का अधिकार है वहां श्राविकाएँ पूजा करे इसमें शंका हो ही नहीं सकती है फिर समझ में नहीं आता है कि कहनेवाले युगप्रधान ऐसी उत्सूत्र प्ररुपणा कैसे कर सके होंगे ? शायद यह कहा जाता हो कि कई विवेकशून्य औरतें प्रभुपूजा करते समय कभी कभी आशातना कर डालती हैं। इस लिये स्त्रीपूजा का निषेध किया है। पर विश्वास होता है कि यह कथन दादाजी का तो नहीं होगा क्योंकि एकाद व्यक्ति आशातना कर भी डाले तो सब समाज के लिए इसका निषेध नहीं हो सकता है। और यदि ऐसा हो सकता है तो फिर विवेकशून्य मनुष्यों से कभी आशातना होने पर मनुष्य जाति के लिये भी प्रभुपूजा का निषेध क्यों नहीं किया ? अथवा यह हमारा तकदीर ही अच्छा था कि जिनदत्तसूरि एक स्त्रीपूजा का ही निषेध कर अर्द्ध ढूंढक बन गये। यदि किसी पुरुष को भी कभी आशातना करते देख लेते तो वे पुरुषों को भी प्रभुपूजा का निषेध कर आधुनिक ढूंढियों से ४०० वर्ष पूर्व ही ढूंढिये बन जाते। फिर यह भी अच्छा हुआ कि उस समय बारह करोड़ जैनों में से केवल विवेकशून्य सवा लाख जैन ही जिनदत्तसूरि के नूतन मत में सामिल हुए। खरतरों को यह सोचना चाहिये कि इस उत्सूत्र की प्ररुपणा कर आपके आचार्योंने ढूंढिया तेरहपंथियों से कम काम नहीं किया है। क्या आप अपनी मिथ्या प्ररुपणा को किन्हीं शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध कर सकते हो ?

दीवार नंबर १२

कई खरतर लोग यह भी कह देते हैं कि जिनदत्तसूरिने अमावस की पूर्णिमा कर बतलाई थी।

समीक्षा-यदि ऐसा हुआ भी हो तो इस में जिनदत्तसूरि की कौन सी अधिकता हुई ? कारण यह कार्य तो आज इन्द्रजालवाले भी कर के बता सकते हैं। क्या ऐसे इन्द्रजाल से आत्मकल्याण हो सकता है ? शास्त्रकारोंने तो ऐसे कौतुक करनेवालों को जिनाज्ञा का विराधक बतलाया हैं। देखो ! ''निशीथसूत्र'' जिसमें चातुर्मासिक प्रायश्चित बतलाया है।

फिर भी हम खरतरों को पूछते हैं कि इस बात के लिए आप के पास क्या प्रमाण है कि जिनदत्तसूरिने अमावस की पूनम कर दिखाई थी ? खरतरों के बनाए

गणधर सार्द्धशतक की बृहद्वृत्ति में जिनदत्तसूरि का संपूर्ण जीवन लिखा है। जिस में छोटी से छोटी बातों का उल्लेख है पर इस बात की गंध तक भी नहीं है कि दादाजीने अमावस की पूनम कर बतलाई थी। इस हालत में खरतरलोग जैनाचार्यों को ऐन्द्रजालिक बनाके उनकी हंसी करवाने में क्या फायदा समझ बैठे हैं ? यह समझ में नहीं आता है कि यदि खरतरलोगों के पास कोई प्राचीन प्रमाण हैं तो वे उन्हें प्रसिद्ध करा के आचार्यों को ऐन्द्रजालिक होना साबित क्यों नहीं करते ?

दीवार नंबर १३

खरतरगच्छ पट्टावलि में लिखा हैं कि आचार्य जिनचंद्रसूरिने दिल्ली के बादशाह को बहुत चमत्कार बतलाकर अपना भक्त बनाया, बाद वि. सं. १२२३ में आप का देहान्त भी दिल्ली में ही हुआ।

समीक्षा- कोई भी जैनाचार्य इस प्रकार बादशाह वगैरह को अपना भक्त बनावे, इसमें केवल खरतरों को ही नहीं पर समग्र जैन समाज को खुशी मनाने की बात है पर वह बात तो सत्य होनी चाहिये न ? हमारे खरतर भाईयों को तो इस बात का तनक भी ज्ञान नहीं हैं कि दिल्ही पर बादशाह का राज कब हुआ और जिनचन्द्रसूरि कब हुए थे ? जरा इतिहास के पृष्ठ उथल कर देखिये-विक्रम सं. १२४९ तक तो दिल्ही पर हिन्दूसम्राट पृथ्वीराज चौहान का राज था, बाद दिल्ही का राज बादशाह के अधिकार में गया हैं तब जिनचन्द्रसूरि का देहान्त १२२३ में ही हो गया था, फिर समझ में नहीं आता हैं कि जिनचन्द्रसूरि दिल्ली के बादशाह को कैसे चमत्कार बतला कर अपना भक्त बनाया होगा ? शायद जिनचन्द्रसूरि काल कर भूत, पीर या देवता हो कर बादशाह को चमत्कार बतला कर अपना भक्त बनाया हो तो यह बात ही एक दूसरी है। पर खरतर लोग इस प्रकार की अनर्गल बाते कर अपने आचार्यों की क्यों हाँसी करवाते हैं, ऐसे लोगों को भक्त कहना चाहीये या मश्करा ?

दीवार नंबर १४

कई खरतर लोग कहते हैं कि बादशाह अकबर की राजसभा में खरतराचार्य जिनचन्द्रसूरिने मुल्लाओं की टोपी आकाश में उडा दी थी और बाद में ओंघा से पीट पीट कर उस टोपी को उतारी। इत्यादि।

समीक्षा-यह भी उसी सिग्गे की और बे शिर पाँव की गप्प है कि जो उपर लिखी उक्त गप्पों से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है।

वि. सं. १६३९ में बादशाह अकबर को जगद्गुरु आचार्य श्री विजयहीरसूरिने प्रतिबोध कर जैनधर्म का प्रेमी बनाया। बाद विजयहीरसूरि के शिष्य शांतिचन्द्र,

भानुचंद्र आदि बादशाह अकबर को उपदेश देते रहे। बादशाहने जैन धर्म को ठीक समझ कर आचार्य विजयहीरसूरि के उपदेश से एक वर्ष में छ मास तक अहिंसा का तथा शत्रुञ्जय वगैरह तीर्थों के बारे में फरमान लिख दिया। इस से तपागच्छ की बहुत प्रभावना हुई। उस समय बीकानेर का कर्मचन्द्र बछावत बादशाह की सेवा में था। उसने सोचा कि यह यश केवल तपागच्छवालोंने ही कमा लिया तो खरतरगच्छाचार्यों को बुला कर कुछ हिस्सा इन से खरतरगच्छवालों को क्यों न दिखाया जाय? तब वि. सं. १६४८ में खरतराचार्य जिनचन्द्रसूरि को बुला कर बादशाह की भेंट करवाई। पर इसमें खरतरगच्छवालों को अभिमान कर के फूल जाने की कोई बात नहीं है, क्योंकि वि. सं. १६३९ से १६४८ तक तपागच्छवालोंने ही बादशाह का मन जैनधर्म की ओर आकर्षित किया। बाद में जिनचन्द्रसूरि और बादशाह की भेट हुई तथा जो मान सन्मान मिला था वह तपागच्छीय आचार्यों की कृपा का ही फल था। इस से खरतरों को तो उल्टा तपागच्छवालों का उपकार समझना चाहिए।

बादशाह अकबर स्वयं मुसलमान था और मुल्ला था। बादशाह का गुरु? क्या जिनचन्द्रसूरि या दूसरों की यह शक्ति थी कि वे सभा में उनका अपमान कर सकें? बादशाह अकबर को ३०० वर्ष हुए हैं और उस समय का इतिहास ज्यों का त्यों आज उपस्थित है। क्या खरतर लोग उसमें इस बात की गंध भी बता सकते हैं कि अमुक समय व जगह यह किस्सा बना था। जब यह बात ही कल्पित है तो ऐसे दृश्य का चित्र बनाकर भद्रिक जीवों को भ्रम में डाल अपने आचार्य की झूठी प्रशंसा करने की क्या कीमत हो सकती है? हां, जरा देरके लिए दुनिया उसे देख भले ही ले, पर समझेंगी क्या यही न कि चित्र बनाने और बनवानेवाले दोनों अक्ल के दुश्मन हैं।

हाल ही में श्रीमान् अगरचन्दजी नाहटा बीकानेरवालोंने जिनचन्द्रसूरि नामक पुस्तक लिखी है, उसमें जिनचन्द्रसूरि और बादशाह अकबर का सब हाल दिया है, पर जिनचंद्रसूरिने मुल्ला की टोपी उडाई इस बात का जिक्र तक भी नहीं किया है। नाहटाजी इतिहास के अच्छे विद्वान् हैं। यदि ऐसी टोपीवाली बात सत्य होती तो वे अपनी पुस्तक में लिखने से कभी नहीं चुकते। यद्यपि नाहटाजी उपकेशगच्छीय श्रावक हैं फिर भी आप को खरतरगच्छ का अत्यधिक मोह है। इससे आपने अपनी ''जिनचन्द्रसूरि'' नामक पुस्तक में बादशाह अकबर और जिनचंद्रसूरि का एक कल्पित चित्र दिया है उसमें आकाश के अन्दर टोपी का चिन्ह जरुर है, परन्तु यह शायद नाहटाजीने खरतरों को खुश रखने की गर्ज से दिया है, अन्यथा वे इसका

उल्लेख जरुर करते, किन्तु इतिहास से इस टोपीवाली घटना को असत्य जानकर ही आपने उसका कहीं नामवर्णन भी नहीं किया है, क्योंकि विद्वान् तो सदा मिथ्या लेखों से डरते रहते हैं। उन्हें भय रहता है कि झूठी बात के लिये पूछने पर प्रमाण क्या देंगे ? पर जिन्होंने अपनी अक्ल का दिवाला निकाल दिया है वे फिर झूठ सत्य की परवाह क्यों करते ?

जिस प्रकार जिनचन्द्रसूरि के साथ मुल्ला के टोपी की घटना कल्पित है वैसे ही बकरी के भेद बतलाने की घटना भी भ्रममात्र है, क्योंकि न तो यह घटना घटी थी और न इसके लिए कोई प्रमाण ही है। यदि खरतरों के पास इन दोनों घटनाओं के लिये कुछ भी प्रमाण हों तो अब भी प्रगट करें। वरना इस बीसवीं शताब्दी में ऐसे कल्पित कलेवरों की कौड़ी भी कीमत नहीं है बल्कि हांसी का ही कारण है।

दीवार नंबर १५

कई लोग अपनी अनभिज्ञता एवं आन्तरिक द्वेषभावना के कारण यह भी कह उठते हैं कि सं. २२२ में न तो ओसियां में ओसवाल हुए हैं और न रत्नप्रभसूरिने ओसवाल बनाये हैं। प्रत्युत ओसवाल तो खरतरगच्छाचार्योंने ही बनाये हैं। इसलिए तमाम ओसवालों को खरतरगच्छाचार्यों का ही उपकार समझना एवं मानना चाहिए।

समीक्षा–अव्वल तो यह बात कहां लिखी है ? किसने कही है ? और आपने कहां सुनी है ? क्योंकि आज पर्यन्त किसी विद्वान्ने यह न तो किसी ग्रंथ में लिखी है और न कहा भी है कि २२२ संवत् में रत्नप्रभसूरिने ओसियां में ओसवाल बनाये थे। यदि किन्हीं भाट भोजकोंने कह भी दिया हो तो आपने बिना प्रमाण उस पर कैसे विश्वास कर लिया ? यदि किसी द्वेष के वशीभूत हो आपने इस कल्पित बात को सच मान ली है तो उन भाट भोजकों के वचनों से अधिक कीमत आप के कहने की भी नहीं है। खरतरों ! लम्बी चौड़ी हांक के बिचारे भद्रिक लोगों को भ्रम में डालने के पहले थोडा इतिहास का अभ्यास करिये–देखिये !!

(१) आचार्य रत्नप्रभसूरि प्रभु पार्श्वनाथ के छट्ठे पट्टधर भगवान् महावीर के निर्वाण के बाद पहली शताब्दी में हुए है।

(२) जिसे आप ओसियां नगरी कह रहे हैं पूर्व जमाना में इसका नाम उपकेशपुर था।

(३) जिन्हें आप ओसवाल कह रहे हैं इन का प्राचीन काल में उपकेशवंश नाम था।

(४) उपकेशपुर में क्षत्रिय आदि राजपुत्रों को जैन बनाने का समय विक्रम पूर्व ४०० वर्ष अर्थात् वीरात् ७० वर्ष का समय था।

(५) उपकेशपुर में नूतन जैन बनानेवाले वे ही रत्नप्रभसूरि हैं जो प्रभु पार्श्वनाथ के छट्ठे पट्टधर भगवान् महावीर के पश्चात् ७० वें वर्ष हुए और उन्होंने क्षत्रियादि नूतन जैनों का न तो ओसवाल नाम संस्करण किया था और न वे १५०० वर्ष ओसवाल ही कहलाये थे। हां, वे लोग कारण पाकर उपकेशपुर को त्याग कर अन्य स्थानों में जा बसने के कारण उपकेशी एवं उपकेशवंशी जरुर कहलाए थे। बाद विक्रम की दशवीं ग्यारहवीं शताब्दी में उपकेशपुर का अपभ्रंश ओसियां हुआ। तब से उपकेशवंशी लोग ओसवालों के नाम से पुकारे जाने लगे। यही कारण है कि ओसवालों की जितनी जातिएं हैं और उन्होंने जो मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा करवाने के शिलालेख लिखाये हैं उन सब में प्रायः प्रत्येक जाति के आदि में उएश, उकेश और उपकेश वंश का प्रयोग हुआ है। और ऐसे हजारों शिलालेख आज भी विद्यमान हैं। जरा पक्षपात का चश्मा आंखों से नीचे उतार शान्त चित्त से निम्नलिखित शिलालेखों को देखिये :-

-: मूर्तियों पर के शिलालेख :-

संग्रहकर्ता-मुनि जिनविजयजी, प्राचीन जैनशिलालेख संग्रह भा. २

लेखांक	वंश और गोत्र-जातियों	लेखांक	वंश और गोत्र जातियों
३८४	उपकेशवंशे गणधरगोत्रे।	२५९	उपकेशवंशे दरडागोत्रे
३८५	उपकेश ज्ञातिका करेचगोत्रे	२६०	उपकेशवंशे प्रामेचागोत्रे
३९९	उपकेशवंशे कहाड़गोत्रे	३८९	उ. गुगलेचागोत्रे
४१५	उपकेशज्ञाति गदइयागोत्रे	३८८	उ. चुंदलियागोत्रे
३९८	उपकेशज्ञाति श्रीश्रीमाल	३९१	उ. भोगरगोत्रे
	चंडालियागोत्रे	३६६	उ. रायभंड़ारीगोत्रे
४१३	उपकेशज्ञाति लोढागोत्रे	२९५	उपकेशवंशीय वृद्धसज्जनिया

-: मूर्तियों पर के शिलालेख :-

संग्रहकर्ता-श्रीमान् बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर, जैनलेखसंग्रह भा. १-२-३

लेखांक	वंश और गोत्र-जातियों	लेखांक	वंश और गोत्र जातियों
४	उपकेशवंशे जाणेचागोत्रे	७५	उकेशवंशे गांधीगोत्रे

५	उपकेशवंशे नाहरगोत्रे	९३	उपकेशवंशे गोखरूगोत्रे
६	उपकेशज्ञाति भादड़ागोत्रे	९९	उपकेशवंशे कांकरीयागोत्रे
८	उपकेशवंशे लुणियागोत्रे	४९७	उपकेशज्ञाति आदित्यनाग-
१०	उपकेशवंशे बारड़ागोत्रे		गोत्रे चोरड़िया शाखायां
२९	उपकेशवंशे सेठियागोत्रे	५०९	उपकेशज्ञाति चोपडागोत्रे
४१	उपकेशवंशे संखवालगोत्रे	५९६	उपकेशज्ञाति भंडारीगोत्रे
४७	उपकेशवंशे ढोकागोत्रे	५९८	ढेढियाग्रामे श्रीउएसवंशे
५०	उपकेशज्ञातौ आदित्यनागगोत्रे	६१०	उएशवंशे कुर्कटगोत्रे
		६१९	उपकेशज्ञाति प्रावेचगोत्रे
५१	उपकेशज्ञातौ बंबगोत्रे	६५९	उपकेशवंशे मिठडियागोत्रे
७४	उ. बलहगोत्रे रांकाशाखायां	६६४	श्री श्रीवंशे श्रीदेवा[१]
		१०१२	उ. ज्ञाति विद्याधरगोत्रे
१०८	उकेशवंशे भोरेगोत्रे	१२९२	उपकेशज्ञातिय आर्यागोत्रे
१२९	उकेशवंशे बरड़ागोत्रे		लुणाउतशाखायां।
१३०	उपकेशज्ञातौ वृद्धसज्जनिया	१३०३	उकेशवंशे सुराणागोत्रे
४००	उपकेशगच्छे तातेहडगोत्रे	१३३४	उपकेशवंशे मालूगोत्रे
४३७	उपकेशवंश नाहटागोत्रे	१३३५	उपकेशवंशे दोसीगोत्रे
४८०	उकेशवंशे जांगडागोत्रे	१०२५	उएश ज्ञा. कोठारी गोत्रे
४८८	उकेशवंशे श्रेष्ठिगोत्रे	१०९३	उ. ज्ञा. गुदचागोत्रे
१२७८	उकेशज्ञा. गहलाड़ागोत्रे	११०७	उपकेशज्ञाति डांगरेचा-
१२८०	उपकेशज्ञातौ दूगड़ागोत्रे		गोत्रे
१२८५	उएसवंशे चंड़ालियागोत्रे	१२१०	उ. सिसोदियागोत्रे
१२८७	उपकेशवंशे कटारियागोत्रे	१२५५	उपकेशज्ञाति साधुशाखायां
१२५६	उपकेशज्ञातौ श्रेष्ठिगोत्रे	१४१३	उकेसवंशे भागसाली गोत्रे
११७६	उ. ज्ञा. श्रेष्ठिगोत्रे वैद्य शाखायां।	१४३५	उएसवंशे सुचिन्ती गोत्रे
१३८४	उ. वंशे भूरिगोत्रे (भटेवरा)	१४९४	उपकेश सुचंति
१३५३	उपकेशज्ञातौ बोडियागोत्रे	१५३१	उ. ज्ञातौ बलहागोत्ररांकाशा

१. **इस ज्ञाति का शिलालेख पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर वीरात् ८४ वर्ष का हाल कि शोधखोज मे मिला हें। वह मूर्ति कलकत्ता के अजायब घर में सुरक्षित हैं।**

१३८६	उ. ज्ञा. फुलपगरगोत्रे	१६२१	उपकेशज्ञातौ सोनीगोत्रे
१३८९	उपकेशज्ञाति बाफणागोत्रे		

इनके अलावा आचार्य बुद्धिसागरसूरि सम्पादित धातु प्रतिमा लेखसंग्रह में भी इस प्रकार सेंकडो शिलालेख है।

इत्यादि सैकड़ों नहीं पर हजारों शिलालेख मिल सकते हैं, पर यहां पर तो यह नमूना मात्र दिया गया है।

इन शिलालेखों से यह सिद्ध होता है कि जिस ज्ञाति को आज ओसवाल जाति के नाम से पुकारते हैं उसका मूल नाम ओसवाल नहीं पर उएश, उकेश और उपकेश वंश था। इसका कारण पूर्व में बता दिया है कि उएस-उकेश और उपकेशपुर में इस वंश की स्थापना हुइ। बाद देश-विदेश में जाकर रहने से नगर के नाम पर से जाति का नाम प्रसिद्धि में आया। जैसे अन्य जातियों के नाम भी नगर के नाम पर से पड़े, वे जातिएँ आज भी नगर के नाम से पहचानी जाती हैं। जैसे महेश्वर नगर से महेसरी, खंडवा से खंडेलवाल, मेड़ता से मेड़तवाल, मंडोर से मंडोवरा, कोरंट से कोरंटिया, पाली से पल्लिवाल, आगरा से अग्रवाल, जालोर से जालोरी, नागोर से नागोरी, साचोर से साचोरा, चित्तोड़ से चित्तौड़ा, पाटण से पटणी इत्यादि ग्रामों परसे ज्ञातियों का नाम पड़ जाता है। इसी माफिक उएश, उकेश, उपकेश जाति का नाम पड़ा है। इससे यह सिद्ध होता है कि आज जिसको ओसियां नगरी कहते हैं उसका मूल नाम ओसियां नहीं पर उएसपुर था और आज जिनको ओसवाल कहते हैं उनका मूल नाम उएस, उकेश और उकेशवंश ही था।

उपकेशवंश का जैसे उपकेशपुर से सम्बन्ध हैं वैसा ही उपकेशगच्छ से हैं क्योंकि उपकेशपुर में नये जैन बनाने के बाद रत्नप्रभसूरि या आप की सन्तान उपकेशपुर या उसके आसपास विहार करते रहे, अतः इन समूह का ही नाम उपकेशगच्छ हुआ है, अतएव उपकेशवंश का गच्छ उपकेश गच्छ होना युक्तियुक्त और न्यायसंगत ही हैं। इतना ही क्यों पर इस समय के बाद भी ग्रामों के नाम से कई गच्छ प्रसिद्धि में आये है जैसे कोरंटगच्छ, शंखेश्वरगच्छ, नाणावालगच्छ, वायटगच्छ, संडेरागच्छ, हर्षपुरियागच्छ, कुर्चपुरागच्छ, भिन्नमालगच्छ, साचौरागच्छ इत्यादि। यह सब ग्रामों के नाम से अर्थात् जिस जिस ग्रामों की और जिन जिन साधु समुदाय का अधिक विहार हुआ वे वे समुदाय उसी ग्राम के नाम से गच्छ के रुप में ओलखाने लग गए। अतएव उपकेशवंश का मूल स्थान उपकेशपुर और

इसका मूल गच्छ उपकेशगच्छ ही हैं। हाँ, बाद में किसी अन्य गच्छ का अधिक परिचय होने से वे किसी अन्य गच्छ की क्रिया करने लग गए हो यह एक बात दूसरी है पर ऐसा करने से उनका गच्छ नहीं बदल जाता है। अतएव उएश-उकेश-उपकेशवंश वालों का गच्छ उपकेशगच्छ ही हैं।

(६) आचार्य रत्नप्रभसूरिने उपकेशपुर (ओसियां) में ओसवाल नहीं बनाए तो फिर ये किसने और कहाँ बनाये ? तथा ये ओसवाल कैसे कहलाए ? क्या हमारे खरतर भाई इसका समुचित उत्तर दे सकेंगे ?

(७) यदि खरतरगच्छीय आचार्योंने ही ओसवाल बनाये हो तो फिर इन ओसवालों के मूलवंश के आगे उपकेशवंश क्यों लिखा मिलता है जो कि हजारों शिलालेखों में आज भी विद्यमान हैं ?

हमारा तो यही एकान्त सिद्धान्त है कि यह उपकेशवंश का निर्देश उपकेशपुर और उपकेशगच्छ को ही अपना मूल स्थान और उपदेशक उद्घोषित करता है।

(८) यदि खरतरगच्छ के आचार्योंने ही ओसवाल बनाए हैं तो फिर इन ओसवालों की जातियों के साथ उपकेशवंश नहीं पर खरतरवंश ऐसा लिखा होना चाहिये था, पर ऐसा कहीं भी नहीं पाया जाता है। अतः आप को भी मानना होगा कि ओसवालों का मूलवंश उपकेशवंश है और यह उपकेशगच्छ एवं उपकेशपुर का ही सूचक है। जैसे नागोरियों का मूल स्थान नागोर, जालोरियों का जालोर, रामपुरियों का रामपुर, फलोदियों का फलोदी और बोरुंदियों को बोरुदा है वैसे ही उपकेशियों का मूल स्थान उपकेशपुर (ओसियां) है तथा कोरंट, शखेसरा, नाणावाल, संडेरा, कूर्चपुरा, हर्षपुरा आदि गच्छ गाँवों के नाम से ही हैं, ऐसे ही उपकेशगच्छ भी उपकेशपुर में उपकेशवंशीया श्रावकों का प्रतिबोध होने से प्रसिद्धि में आया है।

(९) यदि खरतरगच्छाचार्योंने ही ओसवाल बनाये ऐसा कहा जाय तो यह कहां तक सङ्गत है ? क्योंकि ओसवाल (उपकेशवंश) के अस्तित्व में आने के समय तक खरतरों का जन्म भी नहीं हुआ था। कारण खरतरगच्छ तो आचार्य जिनदत्तसूरि की प्रकृति के कारण विक्रम की बारहवीं शताब्दी में पैदा हुआ है और ओसवाल (उपकेशवंशी) विक्रम पूर्व ४०० वर्षों में हुए हैं। अर्थात् खरतरगच्छ के जन्म से १५०० वर्ष पूर्व ओसवाल हुए हैं तो उन १५०० वर्ष पहले बने हुए ओसवालों को खरतर गच्छाचार्योंने कैसे बनाये होंगे ? सभ्य समाज इस बात को समझ सकता हैं। इस विषय के लिये मेरी लिखी ''ओसवाल ज्ञाति समय निर्णय'' ''ओसवालोत्पत्ति विषयक शंकाओं का समाधान'' और ''जैन जातियों के गच्छों का इतिहास'' नामक पुस्तके मंगाकर पढिये। उनसे स्वतः स्पष्ट हो जायेगा कि ओसवाल किसने बनाये

है।

यदि कई अज्ञ ओसवाल अपने मूल प्रतिबोधक आचार्यों एवं गच्छ को भूल कर खरतरों के उपासक बन गए हो और इसी से ही कहा जाता हो कि ओसवाल खरतरोंने बनाए हैं। यदि हाँ, तब तो ढूंढिये तेरहपन्थियों को ही ओसवाल बनानेवाले क्यों न मान लिया जाय? कारण कई अज्ञ ओसवाल इनके भी उपासक हैं।

खरतरों! अब तक आप को इतिहास का तनक भी ज्ञान ही नहीं, यही कारण है कि ऐसे स्पष्ट विषय को भी अडंग बडंग कह कर अपने हृदय के अन्दर रही हुई द्वेषाग्नि को बाहर निकालकर अपनी हांसी करवा रहे हो।

भाईयो! अब केवल जबानी जमा खर्च का जमाना नहीं है। आज की बीसवीं शताब्दी इतिहास का शोधन युग है। यदि आप को ओसवालों का स्वयंभू नेता बनना है तो कृपया ऐसा कोई प्रमाण जनता के सामने रक्खो ताकि समग्र ओसवाल जाति नहीं तो नहीं सही पर एकाद ओसवाल तो किसी खरतराचार्य का बनाया हुआ साबित हो सके।

(१६) कई खरतर लोग जनता को यो भ्रम में डाल रहे हैं कि ८४ गच्छों में सिवाय खरतराचार्यों के कोई भी प्रभाविक आचार्य नहीं हुआ है। जैन समाज पर एक खरतराचार्यों का ही उपकार है। इत्यादि।

समीक्षा–खरतरों! आपको इस बात के लिए लम्बे चौड़े विशेषणों से कहने की जरुरत नहीं है। थली के अनभिज्ञ मोथों को भ्रम में डालने का अब जमाना नहीं है। एक खरतरगच्छ में ही क्यों पर मेरे पास जो ३०० गच्छों की लिस्ट है उन सभी गच्छों में जो जो प्रभाविक आचार्य हुए हैं वे सब पूज्यभाव से मानने योग्य हैं, किन्तु आप का हृदय इतना संकीर्ण क्यों है कि जो आप दृष्टिराग में फँस कर केवल एक खरतरगच्छ के आचार्यों की ही दुन्दुभी बजा रहे हो? आप के इस एकान्तवादने ही लोगों को समीक्षा करने को अवकाश दिया है। भला, आप जरा एक दो ऐसे प्रमाण तो बतलाईये कि खरतरगच्छ के अमुक आचार्यने जनोपयोगी कार्य कर अपनी प्रभाविकता का प्रभाव जनता पर डाला हो? जैसे कि :–

१. आचार्य रत्नप्रभसूरिने उपकेशपुर में राजा प्रजा को जैनी बना कर महाजनसंघ की स्थापना की। इसी प्रकार यक्षदेवसूरि, कक्कसूरि, देवगुप्तसूरि, सिद्धसूरि आदि ने अनेक नरेशों को जैन बनाये।
२. आचार्य भद्रबाहुने मौर्यमुकुट चन्द्रगुप्तनरेश को प्रतिबोध कर जैन बनाया।
३. आर्यसुहस्तीने सम्राट् सम्प्रति को प्रतिबोध कर जैन बनाया।

४. आर्यसुस्थीसूरिने चक्रवर्ती खारवेल को जैन बनाया।
५. सिद्धसेनदिवाकरसूरिने भूपति विक्रम को जैन बनाया।
६. आचार्य कालकसूरिने राजा ध्रूवसेन को जैन बनाया।
७. आचार्य बप्पभट्टसूरिने ग्वालियर के राजा आम को जैन बनाया।
८. आचार्य शीलगुणसूरिने वनराज चावड़ा गुर्जरनरेश को जैन बनाया।
९. उपकेशगच्छीय जम्बुनाग गुरुने लोद्रवापट्टन में ब्राह्मणों को पराजित कर वहाँ के भूपति पर प्रचण्ड प्रभाव डाल जैनधर्म की उन्नति की और अनेक मंदिर बनाये।
१०. उपकेशगच्छीय शान्तिमुनिने त्रिभुवनगढ़ के भूपति को जैन बनाया, उनके किल्ले में जैन मंदिर की प्रतिष्ठा की।
११. उपकेशगच्छीय कृष्णर्षिने सपादलक्ष प्रान्त में अजैनों को जैन बना कर धर्म का प्रचार बढ़ाया।
१२. अंचलगच्छीय जयसिंहसूरिने भी कई जैनेतरों को जैन बनाये।
१३. उदयप्रभसूरिने हजारों अजैनों को जैन बनाये।
१४. तपागच्छीय सोमतिलकसूरि, धर्मघोषसूरि आदि महाप्रभाविक हुए और कइ नये जैन बनाये।
१५. संडारागच्छीय यशोभद्रसूरिने नारदपुरी के राव दूधा को जैन बनाया।
१६. कलिकालसर्वज्ञ भगवान् हेमचन्द्राचार्यने राजा कुमारपाल को जैन बनाकर १८ देशों में जैन धर्म का झण्डा फहराया और हजारों जैन मंदिरों की प्रतिष्ठा करवाई।
१७. आचार्य वादीदेवसूरिने ८४ वाद जीत कर जैन धर्म की पताका फहराई।
१८. द्रोणाचार्य के पास अभयदेवसूरिने अपनी टीकाओं का संशोधन करवाया।

यदि इस भाँति क्रमशः लिखे जाय तो खरतरातिरिक्त गच्छाचार्यों के हजारों नंबर आ सकते हैं तो क्या किसी खरतरगच्छ के आचार्यने भी पूर्व कार्यों में से एक भी कार्य करके बतलाया है कि आप फूले ही नहीं समाते हो ? आप नाराज न होना, हमारी राय में तो खरतराचार्योंने केवल उत्सूत्रप्ररुपणा करने के और जैन समाज में फूट कुसंप बढ़ाने के सिवाय और कोई भी काम नहीं किया और आज भी श्वेताम्बर समाज में जो कुसम्प है वह अधिकतर खरतरों के प्रताप से ही है। अन्यथा आप यह बतावें कि ''जिस ग्राम से खरतरों का अस्तित्व होने पर भी उस ग्राम में फूट कुसम्प नहीं है, ऐसा कौन सा ग्राम है ?'' दूर क्यों जावें ? आप खास कर नागौर का वर्तमान देखिये-श्रीमान् समदड़ियाजी के बनाये हुए स्टेशन

के मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय क्या श्वेताम्बर, क्या दिगम्बर और क्या स्थानकवासी सभीने अभेदभाव से एकत्रित होकर जैन धर्म की प्रभावना की थी और इसके लिये जैनेतर जनता जैन धर्म की मुक्त कण्ठ से भूरि भूरि प्रशंसा कर रही थी, किन्तु जब खरतरों का आगमन होने का था तब खरतरगच्छीय अज्ञ लोगोंने अपने आचार्यों की अगवानी के निमित्त ही मानों जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज के बंधे हुए प्रेम के टुकडे टुकड़े कर दो पार्टिये बना डाली। यही कारण है कि अब तपागच्छ के बृहद् समुदाय को भी खरतर साधुओं की क्लेशमय प्रवृत्ति के कारण उनका बॉयकाट करना पड़ा है। समझ में नहीं आता है कि खरतरलोग ऐसी दशा में बिना शिर पैर की गप्पे हांक अपने आचार्यों का कहाँ तक प्रभाव बढ़ाना चाहते हैं? खरतरों को यह सोच लेना चाहिये कि अब केवल हवाई किल्लों से मानी हुई इज्जत का भी रक्षण न होगा, क्योंकि वर्तमान में तो जनता जरा सी बात के लिए भी प्रामाणिक प्रमाण पूछती है और उसीको ही मान देती है।

इसके अलावा खरतरगच्छीय यतियोंने अपनी किताबों में अपने खरतरगच्छाचार्यों को ऐसे रुप में चित्र दिये है कि वे वर्तमान यतियों से अधिक योग्यतावाले सिद्ध नहीं होते हैं, क्योंकि उन्होंने किसी को यंत्र मंत्र करनेवाला, किसी को दवाई करनेवाला, किसी को कौतूहल (तमाशा) करनेवाला, किसी को गृहस्थियों की हुण्डी स्वीकारनेवाला तो किसी को जहाज तरानेवाला, किसी को धन, पुत्र देनेवाला आदि आदि लिख कर उनको चमत्कारी सिद्ध करने की कोशिश की है। पर जब थली के लोग बिल्कुल ज्ञानशून्य थे तब वे इन चमत्कारों पर मुग्ध हो जाते थे। पर अब तो लोग लिख पढ़ कर कुछ सोचने समझनेवाले हुए हैं। अब वे ऐसी कल्पित घटनाओं से उल्टा नफरत करने लग गए हैं। इस विषय में विशेष खुलासा देखो ''जैन जाति निर्णय'' नामक पुस्तक।

खरतरगच्छीय कितनेक क्लेशप्रिय साधु जिनमें कि किसी के प्रश्न का उत्तर देने की योग्यता तो है नहीं, वे अपने अज्ञ भक्तों को यों ही बहका देते हैं कि देखो इस किताब में अमुक व्यक्तिने अपने दादाजी की निंदा की है। जैसे कि आज से १२ साल पहले ''जैन जाति निर्णय'' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जिसके विषय में उसका कुछ भी उत्तर न लिख पक्षपाती लोगों में यह गलतफहमी फैला दी कि इस में तुम्हारी निन्दा है, परन्तु जब लोगोंने प्रस्तुत पुस्तक पढ़ी तो मालूम हुआ कि इसमें खरतरगच्छीय आचार्यों की कोई निंदा नहीं, पर आधुनिक लोगोंने खरतरगच्छीय आचार्यों के विषय में कितनीक अयोग्य घटनाएँ घड़ डाली हैं उन्हीं का प्रतिकार है। और वह भी ठीक ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा किया गया है।

आशा है, इस समय भी यह पुस्तक पढ़कर वे लोग एकदम चौक उठेंगे और अपने अज्ञ भक्तों को अवश्य भड़कावेंगे, पर मेरे खयाल से अब तो खरतरगच्छीय साधु एवं श्रावक इतने अज्ञानी नहीं रहे होंगे कि बिना पुस्तक को आद्योपान्त पढ़े वे मात्र क्लेशी साधुओं के बहकावे में आकर अपना अहित करने को तैयार हो जाए।

मैंने मेरी किताब में खरतरगच्छीय आचार्य तो क्या पर किसी गच्छ के आचार्यों की निन्दा नहीं की है। क्योंकि किसी गच्छ के आचार्य क्यों न हो पर जिन्होंने जैन धर्म की प्रभावना की है मैं उन सब को पूज्यदृष्टि से देखता हूं। हां, आधुनिक कई व्यक्ति पक्षपात के कीचड़ में फसकर मिथ्या घटनाओं को उन महान् व्यक्तियों के साथ जोड़कर उनकी हँसी करना चाहते हैं उन लोगों के साथ मेरा पहले से ही विरोध था और यह प्रस्तुत पुस्तक भी आज उन्हीं व्यक्तियों के मिथ्यालेख के विरोध में लिखी है। इसमें पूर्वाचार्यों की निन्दा को कहीं लेश भी नहीं आने दिया है। मैं उन मिथ्या पक्षपाती लोगों से अपील करता हूँ कि आप में थोड़ी भी शक्ति और योग्यता है तो न्याय के साथ मेरी की हुई समीक्षाओं का प्रमाणिक प्रमाणों द्वारा उत्तर दे।

बस, आज तो मैं इतना ही लिख लेखनी को विश्रांति देता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ कि यदि उपर्युक्त बातों के लिए खरतरों की ओर से कोई प्रमाणिक उत्तर मिलेगा तो भविष्य में ऐसी ऐसी अनेक बाते हैं जिन्हें लिख मैं खरतरों की सेवा करने में अपने को भाग्यशाली बनाऊंगा।

प्यारे खरतरों! पूर्वोक्त बातों को पढ़कर आप एकदम उखड़ नहीं जाना, तथा चिढ़के गालीगलौज देकर कोलाहल न मचाना, अपितु शान्ति से इस पुस्तक का उत्तर देना, क्योंकि प्रमाणों के प्रश्न असभ्य शब्दों में गालीगलीच करने या व्यक्तिगत निन्दा से हल न हो सकेंगे किन्तु प्रमाणों से ही हल होंगे। यदि आप अपनी प्राचीन पद्धति के अनुसार असभ्यता से पेश आएँगे तो याद रखना आपके शिर पर से मिथ्या लेख लिखने का कलंक कदापि नहीं धुपेगा और इस विषय में भविष्य में जो आप की कुछ पोले हैं वे भी प्रकाशित होंगी। अतएव उसके प्रेरक कारण आप ही होंगे। इस बात को पहले ठीक सोच समझ के ही आगे कदम रक्खें।

इति खरतरों के हवाइ किल्ला की दीवारों
समाप्तम्

खरतरों का गप्प पुराण

(लेखक-केसरीचन्द चोरड़िया)

ओसवाल यह उपकेशवंश का अपभ्रंश है और उपकेशवंश यह महाजन वंश का ही उपनाम है, इसके स्थापक जैनाचार्य श्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी महाराज हैं। आप श्रीमान् भगवान पार्श्वनाथ के छट्ठे पट्टधर थे और वीरात ७० वर्षे उपकेशपुर में क्षत्रीय वंशादि लाखों मनुष्यों को मांस मदिरादि कुव्यसन छुड़ा कर मंत्रों द्वारा उन्हों की शुद्धि कर वासक्षेप के विधि विधान से महाजन वंश की स्थापना की थी, इस विषय के विस्तृत वर्णन के लिये देखो ''महाजन वंश का इतिहास।''

महाजन वंश का क्रमशः अभ्युदय एवं वृद्धि होती गई और कई प्रभावशाली नामाङ्कित पुरुषों के नाम एवं कई कारणों से गोत्र और जातियां भी बनती गई। महाजन संघ की स्थापना के बाद ३०३ अर्थात् वीर निर्वाण के बाद ३७३ वर्षे उपकेशपुर में महावीर प्रतिमा के ग्रंथी छेद का एक बड़ा भारी उपद्रव हुआ जिसकी शान्ति आचार्य श्रीकक्कसूरिजी महाराज के अध्यक्षत्व में हुई, उस समय निम्नलिखित १८ गोत्र के लोग स्नाात्रीय बने थे, जिन्हों का उल्लेख उपकेश गच्छ चरित्र में इस प्रकार से किया हुआ मिलता है, उक्तं च।

तप्तभटो बाप्पनागस्ततः कर्णाट गोत्रजः ।
तुय बलाभ्यो नामाऽपि श्री श्रीमाल पञ्चमस्तथा ॥ १६६ ॥
कुलभद्रो मोरिषश्च, विरिहिद्याह्वयोऽष्टमः ।
श्रेष्टि गौत्राण्यमून्यासन, पक्षे दक्षिण संज्ञके ॥ १७० ॥
सुन्चितिताऽदित्यनागौ, भूरि भाद्रोऽथ चिंचटि ।
कुमट कन्याकुब्जोऽथ, डिडूभाख्येष्टमोऽपि च ॥ १७१ ॥
तथाऽन्यः श्रेष्टिगौत्रीय, महावीरस्य वामतः ।
नव तिष्टन्ति गोत्राणि, पञ्चामृत महोत्सवे ॥ १७२ ॥

(१) तप्तभट (तातेड़) (२) बाप्पनाग (बाफना[१]) (३) कर्णाट (कर्णावट) (४) वलाह (रांका बांका सेठ) (५) श्रीश्रीमाल (६) कुलभद्र (सूरवा) (७) मोरख

---

१. नाहटा, जांघड़ा, वैताला, पटवा, बलिया, दफ्तरी वगैरह।

(पोकरणा) (८) विरहट (भूरंट) (९) श्रेष्टि (वैद्य मेहता) एवं नव गोत्र वाले स्नात्रीय प्रभु प्रतिमा के दक्षिण-जीमण तरफ पुजापा का सामान लिये खडे थे ।

(१) सूंचिति (संचेती) (२) आदित्यनाग (चोरडिया[1]) (३) भूरि (भटेवरा) (४) भाद्रो (समदड़िया) (५) चिंचट (देसरड़ा) (६) कुमट (७) कन्याकुब्ज (कनोजिया) (८) डिडू (कोचर मेहता) (९) लघु श्रेष्टि (वर्धमाना) एवं नव स्नात्रीय पञ्चामृत लिए महावीर मूर्ति के वाम-डावे पासें खड़े थे।

यह कथन केवल उपकेशपुर के महाजन संघ का ही है, जिसमें भी स्नात्रीय बने थे उन्हों के गौत्र है पर इनके सिवाय उपकेशपुर में तथा अन्य स्थानों में बसने वाले महाजनों के क्या क्या गोत्र होंगे उनका उल्लेख नहीं मिलता है, तथापि सम्भव है कि इतने विशाल संघ में तथा तीन सौ वर्ष जितने लम्बे समय में कई गोत्र हुए ही होंगे। यदि खोज करने पर पता मिलेगा उनको भविष्य में प्रकाशित करवाया जायेगा।

उपरोक्त गोत्र एवं जातियों के अलावा भी जैनाचार्यों ने राजपूतादि जातियों की शुद्धि कर महाजन संघ (ओसवाल वंश) में शामिल मिला कर उसकी वृद्धि की थी जैसे कि-

१. आर्य गोत्र-लुनावत शाखा-वि. सं. ६८४ आचार्य देवगुप्तसूरि ने सिन्ध का रावगौसलभाटी को प्रतिबोध कर जैन बना कर ओसवंश में शामिल किया, जिन्हों का खुर्शीनामा और धर्म कृत्य की नामावली जैन जाति महोदय द्वितीय खण्ड में दी जायेगी-

''खरतर गच्छीय यति रामलालजी ने महाराज वंश मुक्तावली पृष्ठ ३३ में कल्पित कथा लिख वि. सं. ११९८ में तथा यति श्रीपालजीने वि. सं. ११७५ में जिनदत्तसूरि ने आर्य गोत्र बनाया घसीट मारा है। यह बिलकुल गप्प है। इससे पांच सौ वर्षों के इतिहास का खून होता है।''

२. भंडारी-वि. सं. १०३९ में आचार्य यशोभद्रसूरि ने नाडोल के राव लाखण का लघुभाई राव दुद्धको प्रतिबोध कर जैन बनाया। बाद माता आशापुरी के भण्डार का काम करने से भंडारी कहलाया। जैतारण, सोजत और जोधपुर के भण्डारियों के पास अपना खुर्शीनामा आज भी विद्यमान है।

''खरतर. यति रामलालजी ने महा. मुक्ता. पृष्ठ ६९ पर लिखा है कि वि. सं. १४७८

---

१. **गुलेच्छा, पारख, गदइया, सावसुखा, बुचा, नाबरिया, चौधरी, दफ्तरी वगैरह भी आदित्यनाग गौत्र की शाखाए हैं।**

में खरतराचार्य जिनभद्रसूरि ने नाडोल के राव लाखण के महेसादि ६ पुत्रों को प्रतिबोध दे कर भण्डारी बनाया। मूल गच्छ खरतर है।''

कसौटी-पं. गौरीशंकरजी ओझा ने राजपूताना का इतिहास में लिखा है कि वि. सं. १०२४ में राव लाखण शाकम्भरी (सांभर) से नाडोल आकर अपनी राजधानी कायम की, फिर समझ में नहीं आता है कि यतिजी ने यह सफेद गप्प क्यों हांकी होगी ? कहाँ राव लाखण का समय विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी और कहां भद्रसूरि का समय पंद्रहवीं शताब्दी ? क्या भण्डारी इतने अज्ञात हैं कि इस प्रकार गप्प पर विश्वास कर अपने इतिहास के लिए चार शताब्दी का खून कर डालेगा ? कदापि नहीं।

३. संघी-वि. सं. १०२१ में आचार्य सर्वदेवसूरि ने चन्द्रावती के पास ढेलड़िया ग्राम में पँवारराव संघराव आदि को प्रतिबोध देकर जैन बनाये। संघराव का पुत्र विजयराव ने एक करोड़ द्रव्य व्यय कर सिद्धगिरि का संघ निकाला तथा संघ को सुवर्ण मोहरों की लेन दी और अपने ग्राम में श्री पार्श्वनाथजी का विशाल मंदिर बनवाया इत्यादि। संघराव की संतान संघी कहलाई।

''खरतर-यति रामलालजी महा. मुक्ता. पृष्ठ ६९ पर लिखा है कि सिरोही राज में ननवाणा बोहरा सोनपाल के पुत्र को सांप काटा, जिसका विष जिनवल्लभसूरि ने उतारा, वि. सं. ११६४ में जैन बनाया मूल गच्छ खरतर-''

कसौटी-जिनवल्लभसूरि के जीवन में ऐसा कहीं पर भी नहीं लिखा है कि उन्होंने संघी गौत्र बनाया। दूसरा उस समय ननवाणा बोहरा भी नहीं थे कारण जोधपुर के पास दस मील पर ननवाण नामक ग्राम है। विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी में वहां से पल्लीवाल ब्राह्मण अन्यत्र जाकर वास करने से वे ननवाणा बोहरा कहलाया। फिर ११६४ में ननवाणा बोहरा बतलाना यह गप्प नहीं तो क्या गप्प के बच्चे हैं ?

४. मुनौयत-जोधपुर के राजा रायपालजी के १३ पुत्र थे, जिसमें चतुर्थ पुत्र मोहणजी थे, वि. सं. १३०१ में आचार्य शिवसेनसूरिने मोहणजी आदि को उपदेश देकर जैन बनाये। आपकी संतान मुणोयतो के नाम से मशहूर हुई। मोहणजीके सत्तावीसवीं पीढि में मेहताजी विजयसिंहजी हुए (देखो आपका जीवनचरित्र)

''खरतर-यति रामलालजी ने महा. मुक्ता. पृ. ९८ पर लिखा है कि वि. सं. १५९५ में आचार्य जिनचन्द्रसूरि ने किसनगढ़ के राव रायमलजी के पुत्र मोहनजी को प्रतिबोध कर जैन बनाये, मूलगच्छ खरतर-''

कसौटी-मारवाड़ राज के इतिहास में लिखा है कि जोधपुर के राजा उदयसिंहजी के पुत्र किसनसिंहजी ने वि. सं. १६६६ में किसनगढ़ बसाया। यही

बात भारत के प्राचीन राज वंश (राष्ट्रकूट) पृष्ठ ३६८ पर ऐ. पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ ने लिखी है, जब किसनगढ़ ही वि. सं. १६६६ में बसा है तो वि. सं. १५९५ में किसनगढ़ के राजा रायमल के पुत्र मोहणजी को कैसे प्रतिबोध दिया? क्या यह मुनोयतों के प्राचीन इतिहास का खून नहीं है? यतिजी जिस किशनगढ़ के राजा रायपाल का स्वप्न देखा है उसको किसी इतिहास में बतलाने का कष्ठ करेगा?

५. सुरांणा-वि. सं. ११३२ में आचार्य धर्मघोषसूरि ने पँवार राव सुरा आदि को प्रतिबोध कर जैन बनाये, जिसकी उत्पत्ति खुर्शीनामा नागोर के गुरो गोपीचन्दजी के पास विद्यमान हैं। सुरा की संतान सुरांणा कहलाई।

''खरतर-यति रामलालजी ने महा. मुक्ता. पृ. ४५ पर लिखा है कि वि. सं. ११७५ में जिनदत्तसूरि ने सुराणा बनाया, मूलगच्छ खरतर-''

कसौटी-यदि सुरांणा जिनदत्तसूरि प्रतिबोधित होते तो सुरांणागच्छ अलग क्यों होता? जो चौरासी गच्छों में एक है, उस समय दादाजी का शायद जन्म भी नहीं हुआ होगा, अतएव खरतरों का लिखना एक उड़ती हुई गप्प है।

६. झामड़ झावक-वि. सं. ९८८ आचार्य सर्वदेवसूरि ने हथुड़ी के राठोड़ राव जगमालादिकों प्रतिबोध कर जैन बनाये। इन्हों की उत्पत्ति वंशावली नागपुरिया तपागच्छ वालों के पास विस्तार से मिलती हैं।

''खरतर-यति रामलालजी महा. मुक्ता. पृ. २१ पर लिखते हैं कि वि. सं. १५७५ में खरतराचार्य भद्रसूरि ने झाबुआ के राठोड़ राजा को उपदेश देकर जैन बनाये, मूलगच्छ खरतर-''

कसौटी-भारत का प्राचीन राजवंश नामक इतिहास पुस्तक के पृष्ठ ३६३ पर पं. विश्वेश्वरनाथ रेउ ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि :-

''यह झाबुआ नगर ईसवी सन् की १६ वीं शताब्दी में लाझाना जाति के झब्बू नायक ने बसाया था परन्तु वि. सं. १६६४ (ई. सं. १६०७) में बादशाह जहाँगीर ने केसवदासजी (राठोड़) को उक्त प्रदेश का अधिकार देकर राजा की पदवी से भूषित किया।''

सभ्य समाज समझ सकता है कि वि. सं. १६६४ में झाबुआ राठोड़ों के अधिकार में आया, तब वि. सं. १५७५ में वहां राठोड़ों का राज कैसे हुआ होगा? दूसरा जिनभद्रसूरि भी उस समय विद्यमान ही नहीं थे, कारण उनके देहान्त वि. सं. १५५४ में हो चुका था। झावक लोग इस बीसवीं शताब्दी में इतने अज्ञात शायद ही रहे हों कि इस प्रकार की गप्पों पर विश्वास कर सकें। भंवाल के झामड विक्रम

की पन्द्रहवीं शताब्दी में अन्य प्रदेश से आकर भंवाल में वास किया, वहां से क्रमशः आज पर्यन्त की हिस्ट्री उन्हों के पास विद्यमान हैं, अतएव खरतरों का लिखना सरासर गप्प है।

७. बाठिया–वि. सं. ९१२ में आचार्य भावदेवसूरि ने आबू के पास प्रमा स्थान के राव माधुदेव को प्रतिबोध कर जैन बनाया। उन्होंने श्री सिद्धाचल का संघ निकाला। बांठ बांठ पर आदमी और उन सब को पैरामणि देने से बांठिया कहलाये। बाद वि. सं. १३४० रत्नाशाह से कवाड़, वि. सं. १६३१ हरखाजी से शाह हरखावत हुए इत्यादि इस जाति की उत्पत्ति एवं खुर्शीनाम शुरु से श्रीमान् धनरुपमलजी शाह अजमेर वालों के तथा कल्याणमलजी बांठिया नागौर वालों के पास मौजूद है।

''ख.–यति रामलालजी महा. मुक्ता. पृष्ठ २२ पर लिखते हैं कि वि. सं. ११६७ में जिनवल्लभसूरि ने रणथंभोर के पँवार राजा जालसिंह को उपदेश दे जैन बनाया, मूल गच्छ खरतर–विशेषता यह है कि बांठिया ब्रह्मेच शाह हरखावत वगैरह सब शाखाए लालसिंह के पुत्रों से ही निकली बतलाते हैं।''

कसौटी–कहाँ तो वि. सं. ९१२ का समय और कहाँ ११६७ का समय। कवाड़ शाखा का समय १३४० का है तथा शाह हरखावत का समय वि. सं. १६३१ का है, जिसको खरतरों ने वि. सं. ११६७ का बतलाया हैं। इस जाति की उत्पत्ति के लिये तो खरतरों ने एक गप्पों का खजाना ही खोल दिया है पर क्या करें बिचारे! यतियों की इस प्रकार गप्पों पर कोई भी बाठिया शाह हरखावत कवाड़ विश्वास ही नहीं करते हैं।

८. बोत्थरा–वि. सं. १०१३ में कोरंट गच्छाचार्य नन्नप्रभसूरि ने आबु के आस पास विहार कर बहुत से राजपूतों को प्रतिबोध कर जैन बनाये, जिसमें मुख्य पुरुष राव धांधल चौहान था। धांधल के पुत्र सुरजन–सुरजन के सांगण और सांगण के पुत्र राव बोहत्थ हुआ। बोहत्थ ने चन्द्रावती में एक जैन मंदिर बनाया और श्री शत्रुंजय का विराट् संघ निकाल सर्व तीर्थों की यात्रा कर सोना की थाली और जनौउ की लेन दी, जिसमें सवा करोड़ द्रव्य खर्च हुआ। अतः बोहत्थ की सन्तान से बोत्थरा कहलाये।

''खरतर. यति रामलालजी ने महा. मुक्ता. पृष्ठ ५१ पर लिखा है कि जालौर का राजा सावंतसिंह देवाड़ा की दो राणियां थी। एक का पुत्र सागर दूसरी का वीरमदेव, जालौर का राज वीरमदेव को मिला तब सागर अपनी माता को लेकर आबु अपना नाना राजा भीम पँवार के पास चला गया, राजा भीम ने आबु का राज सागर को दे दिया। उस समय चित्तौड़ का राणा रत्नसिंह पर मालवा का बादशाह फौज लेकर आया। राणा ने आबु से सागर को मदद के लिये

बुलाया, सागर बादशाह को पराजय कर मालवा छीन लिया। बाद गुजरात के बादशाह ने आबु पर आक्रमण किया। सागर ने उसको हटा कर गुजरात भी छीन लिया। बाद दिल्ही का बादशाह गौरीशाह चित्तोड़ पर चढ़ आया। फिर चित्तौड़ वालों ने सागर को बुलाया, सागर ने वहाँ आकर आपस में समझौता करवा कर बादशाह से २२ लाख रुपये दंड के लेकर मालवा-गुजरात वापिस दे दिया।

सागर के तीन पुत्र-१. बोहित्थ २. गंगादास ३. जयसिंह आबु का राज बोहित्थ को मिला वि. सं. ११९७ में जिनदत्तसूरि ने बोहित्थ को उपदेश दिया। बोहित्थ ने एक श्रीकर्ण नामक पुत्र को राज के लिये छोड़ दिया। शेष पुत्रों के साथ आप जैन बन गया, जिसका बोत्थरा गौत्र स्थापन किया। इतना ही क्यों पर जिनदत्तसूरि ने तो यहाँ तक कह दिया कि तुम खरतरों को मानोगे तब तक तुम्हारा उदय होगा इत्यादि।

कसौटी-बोहित्थ का समय वि. सं. ११९७ का है। तब इसके पिता सागर का समय ११७० का होगा। चित्तौड़ का राणा रत्नसिंह सागर को अपनी मदद में बुलाता है, अब पहला तो चित्तौड़ के राणा रत्नसिंह का समय को देखना है कि वह सागर के समय चित्तौड़ पर राज करता था या किसी अन्य गति में था।

चित्तौड़ राणाओ के इतिहास में रत्नसिंह नाम के दो राजा हुए (१) वि. सं. १३५९ (दरीबे का शिलालेख) दूसरा वि. सं. १५८४ में तख्त निशीन हुआ, जब सागर का समय वि. सं. ११७० का कहा जाता है समझ में नहीं आता है कि ११७० में राणा सागर हुआ और १३५९ में रत्नसिंह हुआ तो रत्नसिंह सागर की मदद के लिये किस भव में बुलाया होगा? अब वि. सं. ११७० के आसपास चित्तौड़ के राणों की वंशावली भी देख लीजिये।

चित्तोड़ के राणा

बैरिसिंह वि. सं. ११४३
विजयसिंह वि. सं. ११६४
अरिसिंह वि. सं. ११८४
चौड़सिंह वि. सं. ११९५

आबु का सागर के समय चित्तौड़ पर कोई रत्नसिंह नाम का राणा हुआ ही नहीं है, यतिजी ने यह एक बिना शिर पैर की गप्प ही मारी है।

आगे चल कर सागर का पिता सावंतसिंह देवड़ा का जालौर पर राज होना यतिजी ने लिखा है इसमें सत्यता कितनी है?

सावंतसिंह सागर का पिता होने से उसका समय वि. सं. ११५० के आसपास का होना चाहिये क्योंकि सागर का समय वि. सं. ११७० का है। यतिजी का लिखा हुआ वि. सं. ११५० में सावंतसिंह देवड़ा तो क्या पर देवडा शाखा प्रार्दुभाव तक भी नहीं हुआ था, वास्तव में देवडा शाखा विक्रम की तेरहवीं शताब्दी

में चौहान देवराज से निकली है जब यतिजी वि. सं. ११५० के आस पास जालौर पर सावंतसिंह देवडा का राज बतलाते हैं यह भी एक सफेद गप्प ही है।

अब वि. सं. ११५० के आस पास जालौर पर किसका राज था इसका निर्णय के लिये जालौर का किल्ला में तोपखाना के पास भीत में एक शिलालेख लगा हुआ है, उसमें जालौर के राजाओं की नामावली इस प्रकार दी है।

जालौर के पँवार राजा

चन्दन
देवराज
अप्राजित
विजय
धारा वर्ष
विशल देव (११७४)

विशलदेव का उत्तराधिकारी पँवार कुन्तपाल वि. सं. १२३६ तक जालौर पर राज किया बाद नाडोल का चौहान कीर्तिपाल ने पँवारों से जालौर का राज छीन कर अपना अधिकार जमा लिया। सभ्य समाज समझ सकते हैं कि विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में तेरहवीं शताब्दी तक जालौर पर पँवारों का राज रहा था जिसका प्रमाण वहाँ का शिलालेख दे रहा है फिर यतिजी ने यह अनर्गल गप्प क्यों मारी है?

अब आगे चल कर आबु की यात्रा कीजिये कि आबु पर चौहानों का राज किस समय से हुआ? जो यतिजी ने वि. सं. ११७० के आसपास राजा सागर देवड़ा का राज होना लिखा है। हम यहां पहला तो आबु के पँवार राजाओं की वंशावली जो शिलालेखों के आधार पर स्थिर हुई और पं. गौरीशंकरजी ओझा ने सिरोही राज का इतिहास में लिखी है बतला देते हैं।

आबु के पँवार राजा

धुधक वि. सं. १०७८
।
पूर्णपाल वि. सं. ११०२
।
कान्हादेव वि. सं. ११२३
।
ध्रूवभट
।
रामदेव
।

इस आबु नरेशों में किसी स्थान पर देवड़ा सागर की गन्ध तक भी नहीं मिलती है, अतएव यतिजी का लिखना एक उड़ती गप्प है कि ''वि. सं. ११७० के आसपास आबु पर पँवार भीम का राज था और उसके पुत्र न होने से अपनी पुत्री का पुत्र सागर देवड़ा को आबु का राज दे दिया था।''

अब आबु पर चौहानों का राज कब से हुआ? पं. गौरीशंकरजी ओझा सिरोही राज के इतिहास में लिखते हैं कि नाडोल का

विक्रम वि. सं. १२०१
।
यशोधवल
।
धारावष

कीर्तिपाल चौहान वि. सं. १२३६ में जालौर पर अपना अधिकार जमाया।

जिसका वंशवृक्ष

कीर्तिपाल
।
संग्रामसिंह

उदयसिंह
(जालौर पर)

मानसिंह
(सिरोही गया)
।
प्रतापसिंह
।
विजल
।
महाराव लुंभा
(आबु का राजा हुआ)

इस खुर्शीनामा से स्पष्ट सिद्ध होता है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में सिरोही के चौहान आबु के पँवारों से आबु का राज छीन कर अपना अधिकार जमाया था जिसको यतिजी ने बारहवीं शताब्दी लिख मारी है। बलीहारी है यतियों के गप्प पुराण की-

अब सागर राणा और मालवा का बादशाह का समय का अवलोकन कीजिये। यतिजी ने सागर का समय वि. सं. ११७० के आसपास का लिखा है और ''चित्तौड़ पर मालवा का बादशाह चढ़ आया तब चित्तौड़ का राणा अपनी मदद के लिये आबु से सागर देवड़ा को बुलाया और सागर ने बादशाह को पराजय कर उससे मालवा छीन लिया।''

यह भी एक उड़ती गप्प ही है क्योंकि न तो उस समय चित्तौड़ पर राणा रत्नसिंह का राज था और न मालवा में किसी बादशाह का राज ही था। वि. सं.

१३५६ तक मालवा में पँवार राजा जयसिंह का राज था (देखो भारत का प्राचीन राजवंश)

इसी प्रकार सागर देवड़ा के साथ गुजरात के बादशाह की कथा घड़ निकाली है। गुजरात में वि. सं. १३५८ तक बाघला वंश के राजा करण का राज था। बाद में बादशाह के अधिकार में गुजरात चलाया गया। (देखो पाटण का इतिहास)

इसी भांति सागर देवड़ा के साथ दिल्ही बादशाह का अघटित सम्बन्ध जोड़ दिया है। सागर का समय वि. सं. ११७० के आसपास का है। तब दिल्ही पर वि. सं. १२४९ तक हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान का राज था। फिर समझ में नहीं आता है कि यतिजी ऐसी असम्बन्धिक बातें लिख सभ्य समाज में हाँसी के पात्र क्यों बनते हैं ? क्या इस बीसवीं शताब्दी के बोत्थरा बच्छावत इतने अज्ञात हैं कि यतिजी के इस प्रकार की गप्पों पर विश्वास कर अपने प्रतिबोधक कोरंटगच्छाचार्यों को भूल कर कृतघ्नी बन जाय ?

''खरतर लोग कहा करते हैं कि हमारी वंशावलियों की बहिंयों बीकानेर में कर्मचन्द वच्छावत ने कुँवा में डाल कर नष्ट कर डाली इत्यादि।''

शायद इसका कारण यह ही तो न होगा कि उपरोक्त खरतरों की लिखी हुई बोथरों की उत्पत्ति कर्मचन्द ने पढ़ी हो और उनको वे कल्पित गप्पें मालुम हुई हो तथा वह समझ गया हो कि हमारे प्रतिबोधक आचार्य कोरंटगच्छ के हैं, केवल अधिक परिचय के कारण हम खरतर गच्छ की क्रिया करने के लिये ही खरतरों ने हम लोगों की झूठ मूट ही खरतर बनाने को मिथ्या कल्पना कर डाली हैं, अतएव खरतरों की सब की वंशावलियों कुँवा में डाल कर अपनी संतान को सदा के लिये सुखी बनाइ हो ! खैर कुछ भी हो पर खरतरों की उपरोक्त लिखी हुई बोत्थरों की उत्पत्ति तो बिलकुल कल्पित है, इस विषय में ''जैन जाति निर्णय'' नामक किताब को देखनी चाहिये कि जिस विस्तार से समालोचना की गई है।

वास्तव में राणो सागर महाराणा प्रताप का लघुभाई था और इसका समय विक्रम की सतरहवीं शताब्दी का है और सावंतसिंह देवड़ा विक्रम की अठारहवीं शताब्दी में हुआ है। खरतरों ने शिशोदा और देवड़ा को बाप बेटा बना कर यह ढांचा खडा किया है और यह कल्पित ढांचा खड़ा करते समय यतियों को यह भान नहीं था कि इसकी समालोचना करने वाला भी कोई मिलेगा।

खैर ! इस समय खरतरगच्छ की सात पट्टावलियां मेरे पास मौजूद हैं। जिसमें किसी भी पट्टावलि में यह नहीं लिखा है कि जिनदत्तसूरि ने बोत्थरा जाति बनाई थी। पर उन पट्टावलियों से तो उलटा यही सिद्ध होता है कि दादाजी के

पूर्व बोत्थरा जाति विद्यमान थी। जैसे खरतरगच्छीय क्षमा कल्याणजी ने वि. सं. १८३० में खरतरगच्छ पट्टावली लिखी है, उसमें लिखा है कि–

'तथा अणहिल्लपत्तने बोहित्थरा गौत्रीय श्रावकेभ्यो जयति हुण वर कापरुक्ख' इति स्तोत्र दत्तम्

अर्थात् जिनदत्तसूरि ने अणहिल पट्टन में बोत्थरा को स्तोत्र दिया, इससे यही ज्ञात होता है कि जिनदत्तसूरि के पूर्व पाटण में बोत्थरा विद्यमान थे। अतएव बोत्थरा कोरंटगच्छीय आचार्य नन्नप्रभसूरि प्रतिबोधित कोरंटगच्छ के श्रावक हैं। क्रिया के विषय में जहां जिसका अधिक परिचय था वहां उन्हींकी क्रिया करने लग गये थे पर बोत्थरों का मूलगच्छ तो कोरंटगच्छ ही है।

९. चोपड़ा–वि. सं. ८८५ में आचार्य देवगुप्तसूरि ने कनौज के राठोड़ अडकमल को उपदेश देकर जैन बनाया। कुकुम गणधर धूपिया इस जाति की शाखाए हैं।

''खरतर यति रामलालजी चोपड़ा जाति को जिनदत्तसूरि और श्रीपालजी वि. सं. ११५२ में जिनवल्लभसूरि ने मंडौर का नानुदेव प्रतिहार–इन्दा शाखा को प्रतिबोध कर जैन बनाया लिखा है।''

कसौटी–अव्वल तो प्रतिहारों में उस समय इन्दा शाखा का जन्म तक भी नहीं हुआ था। देखिये प्रतिहारों का इतिहास बतला रहा है कि विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में नाहडराव (नागभट्ट) प्रसिद्ध प्रतिहार हुआ। उसकी पांचवीं पिढ़ी में राव आम यक हुआ, उसके १२ पुत्रों से इन्दा नाम का पुत्र की सन्तान इन्दा कहलाई थी, अतएव वि. सं. ११५२ में इन्दा शाखा ही नहीं थी, दूसरा मंडोर के राजाओं में उस समय नानुदेव नाम का कोई राजा ही नहीं हुआ। प्रतिहारों की वँशावली इस बात को साबित करती है, जैसे कि–

मंडोर के प्रतिहार

राव रघुराज सं. ११०३
।
सेज्हाराज
।
संबरराज
।
भुपतिराज
।

इसमें ११०३ से १२१२ तक कोई भी नानुदेव राजा नहीं हुआ है। खरतरों को इतिहास की क्या परवाह है। उनको तो किसी न किसी गप्प गोला चला कर ओसवालों की प्रायः सब जातियों को खरतर बनाना है पर क्या करें बिचारे जमाना ही सत्य का एवं इतिहास का आ गया कि खरतरों की गप्पे आकाश में उडती फिरती हैं–

जैसे पाटण के बोत्थरों को स्तोत्र देकर दादाजी ने तथा आपके अनुयायियों ने बोत्थरों को

अखेराज
।
नाहड़राव
(वि. सं. १२१२)

अपने भक्त समझा हैं वैसे ही मेडता के चोपड़ों को ''उपसग्गहरं पास'' नामक स्तोत्र देकर अपने पक्ष में बना लिया हों इस बात का उल्लेख खरतर. क्षमाकल्याणजी ने अपनी पट्टावलियों में भी किया हैं। बस! खरतरों ने इस प्रकार यंत्र-स्तोत्र देकर भद्रिक लोगों को कृतघ्नी बनाये हैं, वास्तव में चोपड़ा उपकेशगच्छीय श्रावक हैं।

१०. छाजेड़ - वि. सं. ९४२ में आचार्य सिद्धसूरि ने शिवगढ़ के राठोड़राव कजल को उपदेश देकर जैन बनाये, कजल के पुत्र धवल और धवल के पुत्र छजू हुआ, छजूने शिवगढ़ में भगवान् पार्श्वनाथ का विशाल मन्दिर बनाया। बाद शत्रुंजयादि तीर्थों का संघ निकाला, जिसमें सोना की कटोरियों में एक एक मोहर रख लेण दी इत्यादि शुभ क्षेत्र में करोड़ों रुपये खर्च किये, उस छजू की सन्तान छाजेड़ कहलाई।

''खरतर यति रामलालजी महा. मुक्ता. पृ. ६८ पर लिखते हैं कि वि. सं. १२१५ में जिनचन्द्रसूरि ने धांधल शाखा के राठोड रामदेव के पुत्र काजल को ऐसा वास चूर्ण दिया कि उसने अपने मकान के देवी मन्दिर के तथा जिनमन्दिर के छाजों पर वह वासचूर्ण डालते ही सब छाजे सोने के हो गये इस लिये वे छाजेड़ कहलाये इत्यादि।''

कसौटी-वासचूर्ण देने वालों में इतनी उदारता न होगी या काजल का हृदय संकीर्ण होगा? यदि वह वासचूर्ण सब मन्दिर पर डाल देता तो कलिकाल का भरतेश्वर ही बन जाता!! ऐसा चमत्कारी चूर्ण देने वालों की मौजूदगी में मुसलमानों ने सैकड़ों मन्दिर एवं हजारों मूर्तियों को तोड़ डाले, यह एक आश्चर्य की बात है, खैर आगे चल कर राठोड़ों में धांधल शाखा को देखिये जिनचन्द्रसूरि के समय (वि. सं. १२१५) में विद्यमान थी या खरतरों ने गप्प ही मारी है? राठोड़ों का इतिहास डंका की चोट कहता है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में राठोड़ राव आसस्थानजी के पुत्र धांधल से राठोड़ों में धांधल शाखा का जन्म हुआ तब वि. सं. १२१५ में जिनचन्द्रसूरि ने किसको उपदेश दिया यह गप्प नहीं तो क्या गप्प के बच्चे हैं?

११. बाफना-इनका मूल गौत्र बाप्पनाग है और इसके प्रतिबोधक वीरात ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि हैं। नाहाट जांघड़ा वेताला दफ्तरी बालिया पटवा वगैरह बप्पनाग गौत्र की शाखाए हैं।

''खरतर. यति रामलालजी मा. मु. पृ. ३४ पर लिखते है कि धारानगरी के राजा पृथ्वीधर पँवार की सोलहवीं पीढ़ि पर जवन और सच्चू नाम के दो नर हुए, वे धारा से निकल

जालौर फतेह कर वहाँ राज करने लगे। जिनवल्लभसूरि ने इनको विजययंत्र दिया था। जिनदत्तसूरिने इनको उपदेश देकर जैन बनाये। बाफना गोत्र स्थापन किया तथा पूर्व रत्नप्रभसूरि द्वारा स्थापित बाफना गौत्र भी इनमें मिल गया इत्यादि।''

कसौटी-इस घटना का समय जिनवल्लभसूरि और जिनदत्तसूरि से संबन्ध रखता हैं। अतएव वि. सं. ११७० के आसपास का समझा जा सकता है। उस समय धारा या जालौर पर कोई जवन सच्चू नामक व्यक्ति का अस्तित्व था या नहीं इस के लिये हम यहाँ दोनों स्थानों की वंशावलियों का उल्लेख कर देते हैं।

जालौर के पँवार राजा	**धारा के पँवार राजा**
चन्दन राजा	नर वर्मा (वि. सं. ११६४)
।	।
देवराज	यशोवर्मा (वि. सं. ११९२)
।	।
अप्राजित	जयवर्मा
।	।
विजल	लक्षणवर्मा (वि. सं. ६२००)
।	।
धारावर्ष	हरिचन्द्र (वि. सं. १२३६)
विशालदेव (वि. सं. ११७४)	
(जालोर तोपखाना का शिलालेख)	('पँवारों का इतिहास' से)
कुंतपाल (वि. सं. १२३६)	

जालौर और धारा के राजाओं में जवन सच्चू की गन्ध तक भी नहीं मिलती है फिर समझ में नहीं आता है कि यतिजी ने यह गप्प क्यों हांक दी होगी ?

आचार्य रत्नप्रभसूरि ने बाफना पहला बनाया था तो यतिजी लिखते ही हैं, फिर दादाजी ने बाफना गौत्र क्यों स्थापित किया और जवन सच्चू के साथ बाफनों का कोई खास तौर पर सम्बन्ध भी नहीं पाया जाता है।

वि. सं. १८९१ में जैसलमेर के पटवों (बाफनों) ने शत्रुंजय का संघ निकाला, उस समय वासक्षेप देने का खरतरों ने व्यर्थ ही झगड़ा खड़ा किया, जिसका इन्साफ वहाँ के रावल राजा गजसिंह ने दिया कि बाफना उपकेशगच्छ के ही श्रावक हैं। वासक्षेप देने का अधिकार उपकेशगच्छ वालों का ही है, विस्तार से देखो जैन जाति निर्णय नामक किताब।

१२.राखेचा-वि. सं. ८७८ में आचार्य देवगुप्तसूरि ने कालेरा का भाटीराव

राखेचा को प्रतिबोध देकर जैन बनाया। उसकी संतान राखेचा कहलाई पुंगलिया वगैरह इस जाति की शाखा है-

''ख. य. रा. म. मु. पृष्ठ ४२ पर लिखा है कि वि. सं. ११८७ में जिनदत्तसूरि ने जैसलमेर के भाटी जैतसी के पुत्र कल्हण का कुष्ट रोग मिटाकर जैन बनाकर राखेचा गौत्र स्थापन किया।''

कसौटी-खुद जैसलमेर ही वि. सं. १२१२ में भाटी जैसल ने आबाद किया तो फिर ११७८ में जैसलमेर का भाटी को जिनदत्तसूरि ने कैसे प्रतिबोध दिया होगा ? वाह रे यतियों तुमने गप्प मारने की सीमा भी नहीं रखी।

१२. पोकरणा यह मोरख गौत्र की शाखा है और इनके प्रतिबोधक वीरन् ७० वर्षे आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि हैं।

''खर. य. रा. म. मु. पृष्ठ ८३ पर लिखा है कि जिनदत्तसूरि का एक शिष्य पुष्कर के तलाब में डूबता हुआ एक पुरुष और एक विधवा औरत को बचा कर उनको जैन बनाया और पौकरणा जाति स्थापना की।''

कसौटी-जिनदत्तसूरि का देहान्त वि. सं. १२११ में हुआ। उस समय पूर्व की यह घटना होगी। तब पुष्कर का तलाब वि. सं. १२१२ में प्रतिहार नाहाड़राव ने खुदाया। बाद कई अर्सा से गोहों पैदा हुई होगी इस दशा में जिनदत्तसूरि के शिष्य ने स्त्री पुरुष को गोहों से कैसे बचाया होगा यह भी एक गप्प ही है।

१४. कोचर-यह डिड् गौत्र की शाखा है और विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में मंडीर के डिडू गोत्रीय मेहपालजी का पुत्र कौचर था, उसने राव सूजाजी की अध्यक्षता में रह कर फलौदी शहर को आबाद किया। कोचरजी की सन्तान कौचर कहलाई, इसके मूल गौत्र डिडू है और इनके प्रतिबोधक वीरान् ७० वर्षे आचार्य रत्नप्रभसूरि ही थे।

''ख. य. रा. म. मु. पृ. ८३ पर इधर उधर की असम्बंधित बातें लिख कर कौचरों को पहले उपकेशगच्छीय फिर तपागच्छीय और बाद खरतरे लिखा है, इतना ही नहीं बल्कि कई ऐसी अघटित बातें लिख कर इतिहास का खून भी कर डाला है।''

कसौटी-इस जाति के लिये देखो ''जैन जाति निर्णय'' नामक पुस्तक वहाँ विस्तार से उल्लेख किया है। और कोचरों का उपकेशगच्छ है।

१५. चोरड़िया-यह आदित्यनाग गौत्र की शाखा हैं। आदित्यनाग गौत्र आचार्य रत्नप्रभसूरि स्थापित महाजन वंश की अठारह शाखा में एक है।

ख. य. रा. म. मु. पृष्ठ २३ पर लिखा है कि पूर्व देश में अंदेरी नगरी में राठोड़ राजा खरहत्य राज करता था। उस समय यवन लोग काबली मुल्क लुट रहे थे। राजा खरहत्थ अपने चार पुत्रों को लेकर वहाँ गया। यवनों को भगा कर वापिस आया पर उनके चार पुत्र मुर्च्छित

हो गये। जिनदत्तसूरि ने उन पुत्रों को अच्छा कर जैन बनाये। इत्यादि।

कसौटी-अव्वल तो चंदेरी पूर्व में नहीं पर बुन्देलखंड में थी[१], दूसरा चंदेरी में राज राठौड़ों का नहीं पर चेदी वंशियों का होना इतिहास स्पष्ट बतला रहा हैं। तीसरा उस समय भारत पर यवनों का आक्रमण हो रहा था जिसका बचाव करना तो एक विकट समीक्षा बन चुकी थी। तब खरहत्थ अपने चार पुत्रों को लेकर काबली मुल्क का रक्षण करने को जाय यह बिलकुल ही असंभव बात है और काबली मुल्क को लूटने वाले यवन भी कोई गाडरियों नहीं थी कि चार लड़का उनको भगा दें। भले यतिजी को पूछा जाय कि खरहत्थ के चार पुत्र यवनों को भगा दिया तो वे स्वयं मुर्च्छित कैसे हो गये और मुर्च्छित हो गये तो यवनों को कैसे भगा दिया ? यदि कहा जाय कि यवनों को भगाने के बाद मुर्च्छित हुए तो इसका कारण क्या ? कारण अपनी स्वस्थ्यावस्था में यवनों को भगाया हो तो फिर उनको मुर्च्छित किसने किया ? वाह वाह यतिजी यदि ऐसी गप्प नहीं लिख कर किसी थली के एवं पुराणा जमाना के मोथों को या भोली-भाली विधवाओं को एकान्त में बैठकर ऐसी बातें सुनाते तो इसकी कोड़ी दो कोड़ी की कीमत अवश्य हो सकती।

खरतरों ने हाल ही में चोरड़ियों के विषय में एक ट्रक्ट लिखा है, जिसमें विक्रम की चौदहवीं शताब्दी के दो शिलालेख 'जो चोरड़ियों के बनाई मूर्तियों की किसी खरतराचार्यों ने प्रतिष्ठा करवाई है' मुद्रित करवा कर दावा किया कि चोरडिया खरतरगच्छ के हैं।

चोरडिया जाति इतनी विशाल संख्या में एवं विशाल क्षेत्र में फैली हुई थी कि जहाँ जिस गच्छ के आचार्यों का अधिक परिचय था उन्हों के द्वारा अपने बनाये मन्दिर की प्रतिष्ठा करवा लेते थे, केवल खतरत ही क्यों पर चोरड़ियों के बनाये मन्दिरों की प्रतिष्ठा अन्य भी कई गच्छवालों ने करवाई है तो क्या वे सब गच्छवाले यह कह सकेगा कि हमारे गच्छ के आचार्यों ने प्रतिष्ठा करवाई वह जाति ही हमारे गच्छ की हो चुकी ? नहीं कदापि नहीं। 'हम चोरड़िया खरतर नहीं है' नामक ट्रक्ट में चोरड़िया जाति के जो चार शिलालेख दिये हैं वे प्रतिष्ठा के लिये नहीं पर उन शिलालेखों में चोरड़ियों का मूल गौत्र आदित्यनाग लिखा है। मेरा खास अभिप्राय खरतरों को भान करने का था कि चोरड़ियों का मूल गौत्र आदित्यनाग हैं न की राजपूतों से जैन होते ही चोरड़िया कहलाये जैसे खरतरों ने लिखा है।

---

१. **हाल में खरतरों ने नयी शोध से खाच तान कर चन्देरी को पूर्व में होना बतलाया है पर इसमें कोई भी प्रमाण नहीं और न वहां राठौड़ों का राजा ही साबित होता है।**

जैसे चोरड़ियों को अजैनों से जैन बनते ही चोरड़िया जाति का रुप दिया है वैसे गुलेच्छा पारख वगैरह को भी दे दिया है परन्तु इन जातियों के नाम संस्करण एक समय में नहीं किन्तु पृथक् पृथक् समय में हुए हैं, इन सबका मूल गौत्र आदित्यनाग है, अतएव खरतरों की गप्पों पर कई भी विश्वास न करें।

१६. संचेती-यह सुंचिंति गौत्र की शाखा है। इनके प्रतिबोधक वीरात् ७० वर्ष आचार्य रत्नप्रभसूरि हुए हैं।

ख. य. रा. म. मु. पृ. १४ पर लिखते हैं कि वि. सं. १०२६ में वर्धमानसूरि ने दिल्ही के सोनीगरा चौहान राजा के पुत्र वोहिथ के सांप का विष उतार जैन बनाया संचेती गौत्र स्थापित किया।

कसौटी-अव्वल तो दिल्ही पर उस समय चौहानों का राज ही नहीं था, दूसरा चौहानों में उस समय सोनीगरा शाखा भी नहीं थी। इतिहास कहता है कि नाडोल का राव कीर्तिपाल वि. सं. १२३६ में जालौर का राज अपने अधिकार में कर वहाँ की सोनीगरी पहाड़ी पर किल्ला बनाना आरम्भ किया, उसके बाद आपके उत्तराधिकारी संग्रामसिंह ने उस किल्ला को पूरा करवाया, जब से जालौर के चौहान सौनीगरा कहलाया। जब चौहानों में सोनीगरा शाखा ही १२३६ के बाद में पैदा हुई तो १०२६ में दिल्ही पर सोनीगरों का राज लिख मारना यह बिलकुल मिथ्या गप्प नहीं तो और क्या है।

इनके अलावा भी खरतरों ने जितनी जातियों को खरतर होना लिखा है वह सब के सब कल्पित गप्पें लिख कर बिचारे भद्रिक लोगों को बड़ा भारी धोखा दिया है। इसके लिये 'जैन जाति निर्णय' देखना चाहिये।

प्यारे खरतरों ! न तो पूर्वोक्त जातियों एवं ओसवालों के लाटाओं के गाढ़े तुम्हारे वहाँ उतरेगा और न किसी दूसरों के वहाँ। जिस जिस जातियों के जैसे-जैसे संस्कार जम गये हैं वह उसी प्रकार बरत रही हैं। कई लिखे पढ़े लोग निर्णय कर असत्य का त्याग कर सत्य स्वीकार कर रहे हैं। इस हालत में इस प्रकार गप्पें लिखकर प्राचीन इतिहास का खून करने में तुमको क्या लाभ है ? स्मरण में रहे अब अन्ध विश्वास का जमाना नहीं रहा है। यदि तुम्हारे अन्दर थोड़ा भी सत्यता का अंश हो तो मैंने जो नमूना के तौर पर कतिपय जातियों का बयान ऊपर लिखा है उसमें से एक भी जाति की अपने लिखी उत्पत्ति को प्रमाणिक प्रमाणों द्वारा सत्य कर बतलावे वरना अपनी भूल को सुधार लें।

अन्त में मैं इतना ही कह कर मेरे लेख को समाप्त कर देना चाहता हूँ कि मैंने यह लेख खण्डन मण्डन की नीति से नहीं लिखा पर इतिहास को सुरक्षित

एवं व्यवस्थित रखने की गरज से ही लिखा है और इसमें भी कारणभूत तो हमारे खरतर भाई ही हैं। यदि वे इस प्रकार भविष्य में भी प्रेरणा करते रहेंगे तो मुझे भी सेवा करने का सौभाग्य मिलता रहेगा। अस्तु। आशा है कि विद्वद् समाज इस से अवश्य लाभ उठावेंगा।

नोट–मुझे इस समय खबर मिली है कि यतिजी ने 'महाजन वंश मुक्तावली' को कुछ सुधार के साथ द्वितीयावृत्ति छपवाई हैं, यदि पुस्तक मिल गई तो उसको देख कर आवश्यकता हुई तो जैनजाति निर्णय को द्वितीयावृत्ति शीघ्र ही प्रकाशित करवाई जायेगी।

१-२-३८ **जैन जाति निर्णय की सहायता से**

इति खरतरों का गप्पपुराण
समाप्तम्